❀ ॐ अर्हनमः ❀

संशोधित, परिवर्तित

जैन-जगती

(सार्थ)

लेखक

कुं० दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविन्द'

धामनिया (मेवाड)

राजस्थान

द्वितीय संस्करण वि० सं० २००६

अर्थ-प्रस्तावक

ओसवाल-ज्ञातीय भंडारी गोत्रीय

श्रीमान् शाह हजारीमलजी भ्रातृ लालचन्द्रजी

सुपुत्र ज्ञानराज, सुमेरमल, विजयराज

निवासी, बागरा (मारवाड)

राजस्थान

सह

आर्थिक भेंट रु० ५०१)

प्रकाशक

— श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन —

धामनिया (मेवाड़)

प्राप्तिस्थान—
दौलतसिंह लोढा 'अरविन्द' बी ए
सुमेरपुर (मारवाड़)
राजस्थान

प्रथम संस्करण — १०००
१९९९

द्वितीय संस्करण — १०००
२००६

मूल्य ५)

मुद्रक—
सत्यपाल शर्मा
कान्ति प्रेस, आगरा

श्रीमद् सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय

व्याख्यानवाचस्पति जैनाचार्य्य

पूज्यपाद भट्टारक

श्रीमद् विजय यतीन्द्र सूरीश्वरजी

महाराज

गुरुदेव !

गुरुदेव ! कोई शक्ति हो, बिन शक्ति बन सकती नहीं,
यह 'जैन-जगती' आज मुझसे, जो बना रहती नहीं।
गुरु ! आप आशीर्वाद इसको शुचि बना कर दीजिये,
इसके अयन के शूल सब औ कर दया हर लीजिये।

'अरविंद'

स्वर्गी नामावली

जैन-आगमों का प्रकाशन् अर्थाभाव के कारण गतिरुद्ध नहीं हो इस शुभ आशय को लेकर निम्नोक्त सज्जनों ने श्री जैन आगमी-प्रकाशन-कोष में अमूल्य भावों के साथ अर्थ-सहायता दी है लेखक चिरऋणी है।

५ १) श्री राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय खुडाला (मारवाड़)
२५१) शाह केसरीमलजी हुकमाजी बागरा (")
२५१) शाह प्रतापमलजी सिरेमलजी मूथा (")
१५१) शाह अमृतमलजी हीराजी बाकरा (")
१५१) शाह स्वरूपचन्दजी छगनाजी " (")

द्वितीय संस्करण के

अग्रिम ग्राहकों की शुभनामावली

१०५) श्री थराद जैन युवक संघ, अहमदाबाद
२५) ,, शाह हजारीमल जवानमल, बाकली.
२५) ,, हीराचन्द्र किस्तूरचन्द्रजी, पादरली
२०) ,, जवाहरमल जी हुक्मा जी, राणी गाव.
२०) ,, सुरतिग जी खूमा जी, कवराढा
१०) ,, नवलाजी नगा जी, वाकली.
१०) ,, देवीचन्द्र जी लूवा जी, बीशलपुर.
१०) ,, तिलोक चन्द्र जी किस्तूर जी, आहोर.
१०) ,, मगजी दीपा जी आहोर

विभिन्न-विभिन्न ग्रामो, पुरो में एक एक प्रति के अनेक सज्जन अग्रिम ग्राहक वने है लेखक उन सव का भी अत्यन्त अभारी है कि जिनकी सहानुभूति प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन के सहायक कारणो में से एक कारण है। ऐसे नगरो में गुन्दौज, पादरली, चामुंडेरी स्वरूपगज, बीशलपुर अधिक स्मरणीय है।

समाज-सुधार एवं साहित्य प्रेम की भावनाओं से प्रेरित होकर जैन जगती के प्रथम संस्करण की अधिक से अधिक प्रतियाँ खरीद कर उसके प्रचार में रस लेने वाले बागरा नगर के श्रीमन्त सज्जनों की

स्वर्ण नामावली

नाम		प्रतियाँ
शाह धनेचन्द्रजी हजारीमलजी		७५
जवाहरमल लालचन्द्रजी		५०
" नवरत्नमल मेघराजजी		५
" खूमाजी नरसिंहजी		५
" प्रेमचन्द मालाजी		३०
जेठमल खूमाजी		३०
" ताराचन्द्र गम्भमलजी		२५
" लालचन्द्र हंसराजजी	—	२५
" भबूतचन्द छोगाजी	—	२५
" चुन्नीलाल जयरूपजी		२५
मीसाजी जेठमलजी		१६
" मनराजी बसराजजी	—	१६
" स्वरूपचन्द्रजी छगाजी	—	१२

पूजनीया माता

श्रीमती

हगामबाई की

पुण्य-स्मृति में

विषय—सूची

अतीत खण्ड

वर्तमान खण्ड

भविष्यत खण्ड

———

दो शब्द

कला की ओर से काव्य की परख मुझ में नहीं। फिर भी श्री दौलतसिंहजी 'अरविंद' का आदेश शेष रहा कि मैं उनकी पुस्तक पर 'दो शब्द' दूँ। सुयोग की बात मेरे लिये यह है कि प्रस्तुत काव्य केवल या शुद्ध काव्य नहीं है। वह एक वर्ग-विशेष के प्रति सम्बोधन है। जैन परम्परा में से प्राण एवं प्रेरणा पाने वाले समाज के हित के निमित्त वह रचा गया है। इसमें उसकी उपयोगिता सीमित होती है। पर तात्कालिक भी हो जाती है। परिणाम की दृष्टि से यह अच्छा ही है।

पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहिले में जैनों के अतीत की महिमामय अवतारणा है। दूसरे में वर्तमान दुर्दशा है। अन्त में भविष्य की ओर से उद्बोधन है। तीनों में चोट है और स्वर स्पष्ट है।

निस्संदेह वर्तमान के अभाव की क्षति-पूर्ति में लेखक ने अतीत को कुछ अतिरिक्त महिमा से मंडित देखा है। पर कवि सुधारक के लिये यह स्वाभाविक है। ऐतिहासिक यथार्थ पर उसे न जांचना होगा। उसके अक्षर और विगत पर न अटक कर उसके प्रभाव को ग्रहण करना यथेष्ट है। जैनों में अपनी परम्परा का गौरव तो चाहिये। वह आत्मगौरव वर्तमान के प्रति हमें तत्पर और भविष्य के प्रति प्रबुद्ध बनावे। अन्यथा इतिहास के नाम पर दावा बन कर वह दर्प और ढोंग हो जायगा जो थोथी वस्तु है। वह तो कषाय है, साम्प्रदायिकता है, और मेरा अनुमान है कि लेखक के निकट भी वह इष्ट नहीं है।

पुस्तक की मूल भावना है कि जैनों में बढ़ता हुआ भेदभाव नष्ट हो। बेशक पृथग्भाव ह्रास का और सम या समन्वय भाव विकास का द्योतक है। अनेकान्त यदि कुछ है तो एकता का प्रतिपादन है। एकांत वृत्ति अनैक्य बढ़ाती है। यदि जैनों में फूट है तो यह झूठ है कि वे अनेकान्तवादी हैं। अनेकान्त जिसकी नीति हो वह वर्ग फूट फट नहीं सकता। अनेकान्त अहिंसा का बौद्धिक पर्याय है। द्वैतवृत्ति दिगंबर और श्वेताम्बर के रूप में जैन परम्परा के दो भाग करके ही नहीं रुक सकती। वह तो समाज-शरीर के खण्ड-खण्ड करेगी। वह हिंसा की एकान्त वृत्ति ही तो है। सब इतिहास में सदा विनाश की यही प्रक्रिया रही है। अपने बीच का अभेद जब भूल जाय और भेद पाने लगजाय तब समझ जाना चाहिए कि मृत्यु का निमंत्रण मिल गया है।

मैं नहीं जानता कि जैन आपस में मिलेंगे। यह जानता हूँ कि नहीं मिलेंगे तो मरेंगे। यह पुस्तक उनमें मेल चाहती है। अतः पढ़ी जायगी तो उन्हें सजीव समाज के रूप में मरने से बचने में मदद देगी। अच्छी यह कि उसे अपने वर्ग के भीतर वैसे इतर वर्गों के प्रति मेल की ही प्रेरणा उससे प्राप्त की जाय।

मैं लेखक के परिश्रम और सद्भावना के लिए उनका अभिनंदन करता हूँ।

दरियागंज दिल्ली
११-८-४७

जैनेन्द्रकुमार

जैन-जगती और लेखक

मैं न कवि हूँ, न काव्यकला का पारखी, इसलिये जैन-जगती को कविता की मानी हुई कसौटियों पर कस कर उसका मूल्यॉंकन करना मेरे अधिकार मे वाहर की वात है। पर अगर हृदय की रागात्मक वृत्तियों का कविता के साथ कोई सम्बन्ध है तो मैं कहूँगा कि 'जैन-जगती' में मुझे लेखक की हार्दिकता का काफी परिचय मिला है।

पुस्तक के नाम, शैली, छद और विषय-प्रतिपादन से यह तो स्पष्ट ही है कि भारत के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरणजी गुप्त ी सुन्दर कृति 'भारत-भारती' से लेखक को पर्याप्त प्रेरणा मिली । लेखक ने जेन समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्यत का ो चित्र अ कित किया है, उसमें कुछ ही स्थन है, जहाँ मैं लेखक ी मनोभावना का समर्थन नहीं कर सकता। पर ऐसे स्थल हुत ही कम हैं। लेखक जिसके प्रति और जो कुछ कहना चाहता है, उसमें वह काफी सफल हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। अगाध निद्रा में सुप्त पडे हुए जैन-समाज को जागृत करने का, उसको नव चैतन्योदय का नव संदेश देने का, और जीवन के नये आदर्शों की प्रेरणा देने का लेखक का ध्येय उच्च है, इसमें मत-वैभिन्य की जरा भी गु जायश नहीं है। जिस तपिश से लेखक का हृदय जल रहा है, उसी को अनुभव करने के लिये 'जैन-जगती' में उसने सारे जैन-युवकों को आह्वान दिया है। उसका यह आह्वान सच्चा है, सजीव है और अभिनन्दनीय है। यह आग पूरी तरह सुलगी नहीं है, लेखक का ध्येय उसको प्रज्वलित करने का है जिससे समाज की प्रगति के मार्ग में रोड़े

जमी हुई रूढ़ियाँ और अज्ञान भस्मसात् हो जाय और नव प्रकाश रश्मियों से जीवन आभासमान हो उठे।

लेखक ने जैनियों के केवल धार्मिक पतन पर ही नहीं सामाजिक व्यापारिक सांस्कृतिक राजनैतिक और शिक्षा तथा स्वास्थ्य विषयक पतन पर भी दृष्टिपात किया है। इस बारे में मुझे इतना तो कहना है कि जैन-समाज के पतन के कारणों का उल्लेख करते समय लेखक उन मूल बातों पर नहीं गया है, जिनसे जैन-समाज का ही नहीं सारे भारतीय समाज का पतन हुआ है। भविष्यत खण्ड में सुधार के उपाय बताते समय भी लेखक की विचार धारा विशाल नहीं बन पाई है। तथापि कई स्थलों पर भावों का स्फुरण बहुत सुन्दर हुआ है। ऐसे स्थल हृदय को छूते हैं और पाठकगण लेखक द्वारा अंकित चित्र में अपने को पा भी लेते हैं।

आशा है लेखक की जैन-जगती द्वारा जैन-समाज में नवो-न्मिषित जागृति और जीवन का प्रवाह बह सकेगा जिससे लेखक का ध्येय और समाज का कल्याण दोनों चरितार्थ होंगे।

४ कामर्शियल बिल्डिंग
कलकत्ता
१०—७—४२

भँवरमल सिंघी

जैन-जगती

'जैन-जगती' वास्तव में जैन जगत का त्रिकाल-दर्शी दर्पण है। सुकवि ने प्रसिद्ध 'भारत-भारती' की शैली पर जैन समाज को ठीक कसौटी पर कसा है। कई उक्तियाँ रूढि चुस्त साधुओं और श्रावकों को चौंकाने वाली हैं। कहीं कहीं शब्दों के अत्यंत कम प्रचलित पर्यायवाची रूप आने से साधारण श्रेणी के पाठकों को सहसा रुकना पड़ेगा, किन्तु जो लोग तनिक धीरज से काम लेकर आगे बढ़ेंगे, वे इस पुस्तक में रसामृत के अलौकिक आनंद का आस्वादन करेंगे।

'अरविंद' कवि की यह प्रथम कृति समाज की एक अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति करती है, इसके अतिरिक्त मुझे कवि के अन्य सार्वजनिक विषयों के बड़े छोटे कई पद्य-ग्रंथों को (अप्रकाशित रूप में) पढ़ने और सुनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ है। इस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यदि जनता ने कवि की कृतियों को अपनाया तो 'अरविंद' के रूप में एक लोक-सेवी कवि का हमें विशेष लाभ प्राप्त होगा।

जैन जगती' जागृति करने के लिये सजीवनी वटी है। फैले हुये आडम्बर एवं पाखण्ड को नेस्तनाबूद करने के लिये बम्ब का गोला है। समाज के सब पहलुओं को निर्भीकता पूर्वक छूआ गया है। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।

ज्ञान-भंडार जोधपुर
ता० ०० १३-१६ } श्रीनाथ मोदी 'हिन्दी प्रचारक'

निवेदन

'जैन-जगती' न काव्य है और न कवि की कृति सो पाठक इसे इस दृष्टि से न देखें। यह है समाज के एक सेवक का समाज को सम्बोधन और समाज के भूत, भविष्यत और वर्तमान का चित्रण। मैं अपने को धन्य समझूँगा अगर यह अपनायी जायगी और इससे कुछ लाभ उठाया जायगा।

आचार्य श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरिजी व उनके सुशिष्य काव्य-प्रेमी मुनिराज श्री विद्याविजयजी का मैं अपार आभारी हूँ जिनकी एकमात्र कृपा से मैं यह कर सका हूँ।

अगर महाकवि पं० अयोध्यासिंहजी 'हरिऔध' की अनुकंपा न होती तो 'जगती' में जो कुछ भी सरसता आ सकी है न आ पाती। मैं 'हरिऔधजी' का अति आभारी हूँ।

'जगती' कुछ विलम्ब से निकली है। इसका हेतु यह है कि इसके साथ-साथ रसलता व 'कुल-प्रताप' ये दो काव्य लिखे गये जिससे समय अधिक लग गया। इस विलंब के लिए मैं क्षमा का अधिकारी हूँ।

सहृदय पाठकों से मुझे प्रोत्साहन व शिक्षण मिलेगा ऐसी आशा है।

बागरा (मारवाड़) } विनीत
चै० शु० १६-६६ } दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद'

॥ ॐ अर्हन्नमः ॥

जैन जगती

अतीत खण्ड

—:००:—

मङ्गलाचरण

हे शारदे! उर वीन पर तू कमल-हस्त पसार दे,
क्षत तार जो हों, डार दे नव, आज वीन सवार दे।
सोये जगे, खोये मिले, मृत जी उठे वह राग गा,
हो हित अहित का ज्ञान जिससे आज मा! वह भाग गा ॥१॥

हे सरस्वती माते। (मेरे) वीणा रूपी हृदय पर तू
ना कमल सदृश सुकोमल कर डाल दे। मेरी वीणा (हृदय)
जो तार जीर्ण क्षीर्ण हो गये हैं, उनके स्थान पर नवीन तार
त दे और वीणा को आज सुधार दे। हे माते! ऐसा राग
कि जिसको श्रवण कर (मोहमाया की) निद्रा में सोये
। जग जायँ, (अमित्र बने हुये) परस्पर द्वेष-भाव रखने
ले परस्पर प्रेम-पूर्वक गले मिले और मुर्दों में प्राण आ
ाय। हे माते! आज उस अंश को गाना, जिसको श्रवण कर
मको अपने हित अहित का ज्ञान हो जाय।

लेखनी

पारस विनिर्मित लेखनी ! मुक्ता-मसी में बोर दूँ
मम हंस उर पर चित्र दे उर लोहनिर्मित खोल दूँ !
आसीन हो उस हंस पर वह मातु वीणाधारिणी
नत हार करता वह रहे स्वरहार वह वागेश्वरी ।।२।।

हे पारस की बनी हुई लेखनी ! (निर्मल) मुक्ताओं की स्याही में बोर दूँ और मेरा लोह का बना हुआ हृदय खोल दूँ तू उस पर श्वेत हंस चित्रित कर दे और उस श्वेत हंस पर वीणाधारिणी माता सरस्वती का चित्र ऐसा प्रतिष्ठित कर दे। हंस नृत्य करता रहे और माता सरस्वती वीणा पर गाती रहे।

उपक्रमणिका

किसका रहा वैभव बताओ एक सा सब काल में
जो था कभी उन्नत वही बिगड़ा हुआ है हाल में।
इस दुर्दिवस में यह कथा है लेखनी ! लिखनी तुझे,
पापान्ध जब हम हो गये वह पथ है करना तुझे ।।३।।

इतिहास बतलाता है कि संसार में आज तक किसी का भी समय सदा एक सा कभी नहीं रहा है। यह भारतवर्ष जो कभी उन्नत था आज बुरी तरह पतित है। हे लेखनी ! इस पतन काल में इस पतनावस्था का वर्णन आज तुझ को करना है। हम भारतवासियों का हृदय पत्थर सदृश ऐसा अब हो गया है कि भारतवर्ष को इतना पद दलित होता हुआ देखकर

भी वह द्रवित नहीं होता है; तुझ को आज इसे कमल के सदृश कोमल करना है।

जाना नहीं था यह किसी ने यह दशा बन जायगी।
रम्भा सरीखी आर्य-जगती श्वान घर बन जायगी।
पूर्वज चले थे देव मे जिस पर मराली चाल मे,
उस पर चलेंगे आज पशु-से हम शृगाली चाल मे॥४॥

आज तक किसी ने यह कल्पना भी नहीं की थी कि भारत-भूमि की यह पतित अवस्था हो जायगी, रम्भा के समान सुन्दर आर्य जगती कुत्तो का घर बन जायगी, जिस भारतभूमि पर पूर्वज देवताओं के सदृश हंस की चाल मे चले थे हम उस भूमि पर पशु समान शृगाल की चाल मे चलेंगे।

हो क्या गया इस भाँति तुझको हे दुखे! हे मात रे!
हा! चन्द्र सा आनन कहाँ वह! क्षीणतम यह गात रे!
अभिराम सुषमा हो गई जो लुप्त पतझड़ काल में—
उद्यान में देखी गई फूली हुई मधुकाल में!!!॥५॥

हे दुखिया भारत माते! ऐसा तुझको क्या हो गया! कहाँ तो चन्द्रमा के समान तेरा वह प्रभापूर्ण मुख और कहाँ यह क्षीणतम वदन! वनलक्ष्मी की सुन्दरता पतझड में विलीन होती है, लेकिन बसन्त काल में हम उसको पुनः उपवनों में जगमग करती देखते हैं।

पर हाय! तेरे रूप का तो दूसरा ही हाल है,
मधुकाल अगणित जा चुके, बदला न कुछ भी चाल है।

पगली बना तू किस्य पतना ! काल अभिमुख गामिनी
क्या अन्त तेरा आ लगा है ? अस्थिपिंजरवाहिनी ? ॥६॥

परन्तु हे भारतभूमि ! तेरी दशा कुछ दूसरी ही प्रकार की है। अनेकों बसन्त आये और चले गये, फिर भी तेरी पतनावस्था के एक पात को भी परिवर्तित नहीं करते। हे कृशवदने ! तू पागल है अथवा काल के मुँह में ग्रसन के लिए अग्रसर हो रही है ? हे अस्थि पिंजरवाहिनी ! क्या तेरा काल आ गया है ?

चिन्ता नहीं है आज जो तू पद-दलित है हो गई।
पर हे भारती ! हाय तेरी क्या दशा यह हो गई !
टूटे हुए भी हार फिर न सूत्र में पोये गए।
तेरे सदा को सूत्र मुक्ता मात ! क्या खो गए ? ॥७॥

हे भारत माते ! तेरी यह पतनावस्था देख कर दुःख नहीं होता लेकिन हाय ! तेरा यह पतन कम हुआ ? एक बार टूटे हुए हार फिर सूत्रों में पोये गये हैं, लेकिन तेरे तो सूत्र और माला के मोती दोनों ही सदा के लिए खो गये प्रतीत होते हैं।

चिंता नहीं है इस पतन से और अधिक बढ़ जाय तो
हम हों समुन्नत भाव यह हर व्यक्ति में जग जाय तो।
तमलोक का सीमान्त ही प्रारम्भ पुण्यालोक का
हम हैं पुरुष पुरुषार्थ ही उन्मूल करता शोक का ॥८॥

नहीं इस पतन से कोई चिंता है और नहीं है अगर अधिक भी बढ़ जाय तो। चिंता केवल यह है कि प्रत्येक भारतवासी में यह भावनायें भर जाय कि हम सब भारतवासी समुन्नत हों।

उन्नति और अवनति तो अपने २ क्रम से होती ही रहती हैं। जहाँ अंधकार का अन्त है वहाँ प्रकाश का प्रारम्भ समझना चाहिए। हम पुरुष कहलाते हैं, पुरुषार्थ (करना) हमारा धर्म (स्वभाव) है। पुरुषार्थ दुःख एवं शोक का नाश करता है।

नभ में चढ़े का क्या पतन अनिवार्य्य है होता नहीं ?
जो ले चुका है जन्म क्या मरना उसे होता नहीं ?
यह विश्व वर्तनशील है—हम जानते सिद्धान्त हैं,
बनकर अनेकों भ्रष्ट होते—मिल रहे दृष्टान्त हैं॥ ९॥

जो आकाश में ऊपर उड़ता है वह नीचे भी उतरता ही है, जो जन्म लेता है वह मरता ही है। संसार परिवर्तनशील है, यह हम भलि प्रकार जानते हैं। ऐसे अनेकों उदाहरण उपलब्ध हैं कि जो यह बतलाते हैं कि अनेको बने और बिगड़े।

जग का विधाता सूर्य है, भलि भाति जग है जानता,
सूर्यास्त होता देख कर क्या शोक जग है मानता ?
डूबा हुआ है आज जो वह कल निकल कर आयगा,
डूबे हुए वह पद्म को फिर से हरा कर जायगा॥ १०॥

सूर्य ही जगत के जीवन का पोषण और शोषण करता है। दिन-रात, सर्दी, गर्मी, वर्षा का होना, वृक्ष, लता, वनस्पति, और कृषि का फलना और उत्पन्न होना यह सब सूर्य के ताप पर निर्भर है, परन्तु सूर्य को अस्त होता देख कर कोई दुःख नहीं करता है। आज अस्त हुआ सूर्य कल निकल आयगा और मुर्झित कमल खिल उठेगा।

वर्तमान युग में विज्ञान की आश्चर्यकारक उन्नति पर जो सन्तोष किया जा रहा है, इतनी विज्ञान की उन्नति तो हमारे उस सम्पादित ज्ञान का एक क्षुद्र अंश है। हमारा राज्य जिस समय स्वर्ग तक था, उस समय नक्षत्र, ग्रह और तारकों पर, इस समूचे आकाश पर हमारा शासन था—यह बात अभी के लिए बहुत दूर की है।

हे आर्य! जागो आज तुम, दुर्दैव डटकर अड़ गया।
पद में पतित होकर हमारा देश भारत पड़ गया।
चालीस कोटि वीर हो, दुर्दैव से जम कर लड़ो
हो बात केवल एक ही—बस मार दो या मर पड़ो॥१४॥

हे भारतवासियो! अब तुम जागो। दुर्भाग्य तुम्हारे से बलपूर्वक अड़ा हुआ है। भारतवर्ष पतित होकर चरणों में पड़ा हुआ है। तुम भारत के चालीस करोड़ वीर हो, दुर्भाग्य का सामना डट कर करो। या तो दुर्भाग्य को मार कर भगा दो या तुम स्वयं उससे लड़ते २ मर जाओ—यह एक मात्र प्रतिज्ञा रक्खो।

भारत नरक सा आज है जो था कभी अपवर्ग सा।
है देख लो मृत-से निवासी, देश है मृतवर्ग-सा।
हर एक का हर एक में खोया हुआ विश्वास है।
यह एक दम परतन्त्र है, यह एक दम हत-आश है॥१५॥

यह भारतवर्ष कभी स्वर्ग के समान सुखी था, आज यह नरक के समान यातनायें सह रहा है। देख लीजिये, भारतवासी
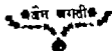
मुदा हैं और भारतवर्ष भी मुदाओं का घर है। एक भारतवासी अन्य भारतवासी का कुछ भी विश्वास नहीं करता है। भारतवर्ष परतंत्र है पूर्ण भिखारी है।

> पूर्वज हमारे कौन थे ? यह बैठ कर सोचो सभी। -
> यह प्रश्न जीवन-मंत्र है मिलकर सभी सोचो अभी।
> भूल हुए हैं आज हम निज वंश के अभिमान को
> विज्ञान को मु विज्ञान को सद्ज्ञान को सम्मान को ॥१६॥

हे बन्धुओं ! हमारे पूर्वज कौन थे ? इस विषय पर हम सभी अभी बैठ कर विचार करें क्योंकि हमारा जीवनस्वास्थ्य इसी विषय पर निर्भर है। दुःख है आज हम हमारे वंश का गौरव सब विज्ञान मान और आगमनिगमज्ञान को विस्मृत कर चुके हैं।

आर्य-भूमि

> हिम शैल माला कोटसी जिसके चतुर्दिक छा रही
> जिसके त्रिदिक जलराशि ऊर्मिल पद्मपद्म कर रही।
> हिमराज बलसंवर कहो क्या विश्व में कम ख्यात हैं ?
> जिसके सुयश के गान भर भर हो रहे दिन-रात हैं ॥१७॥

आर्यभूमि भारतवर्ष के चारों ओर हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ हैं। तीन ओर महासागर की लहरें टकराती हैं। पर्वताधिराज हिमालय की कीर्ति क्या संसार में कम है ? इस हिमालय पर्वत के गौरव को प्रत्येक जनपद जानता है।

इन गिरिवरों से निकल लाखों निम्नगायें बह रहीं।
जो देव भारत को हमारे देव-उपवन कर रहीं॥
फिर रत्नगर्भा भारती के क्यों न नर नररत्न हों।
स्वर्गीय जीवन के यहाँ उपकरण जब उत्पन्न हों॥ १६॥

इन हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों से असंख्य नद नाले, नदियाँ निकल कर स्वर्ग सदृश्य भारतभूमि को नंदनवन बना रही हैं। जब जीवन के उत्तम प्रकार के पोषण के सामान यहाँ उत्पन्न होते हों तब फिर यहाँ के मनुज क्यों नहीं नर रत्न होंगे ?

विद्या-कला-कौशल सभी का यह प्रथम गुरुराज है,
इसके सहारे विश्व के होते रहे जग काज हैं।
जो स्वर्ग भी गुण गा रहा हो कौनसा आश्चर्य है,
बस आर्यजगती, आर्यजगती, आर्यजगती आर्य है॥ १६॥

यह भारत भूमि ही प्रथम संसार का गुरु है जिसने सर्व-प्रथम संसार को विद्या, कला कौशल सिखाया। आज तक संसार के बड़े बड़े कार्य इसी के सहयोग-बल पर होते रहे हैं। स्वर्ग में देवतागण अगर इसकी कीर्ति का व्याख्यान करते हैं तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ? आर्यावर्त तो आर्यावर्त ही है-श्रेष्ठ है।

आर्यावर्त-महात्म्य

जब अन्य जनपद के निवासी थे दिगम्बर घूमते,
घनघोर जङ्गल में विचरते, फूल-पल्लव चूमते।

भगवान् ऋषभदेव आदिजिनेश्वर, विमलवाहन कुलकर, रामचन्द्र और रावण का जन्म देवासुर-संग्राम, समुद्र-मथन, लङ्का-दहन, श्रुति और शास्त्रों की रचना, यम नियमों का निर्माण-कार्य आदि अनेक महत्व पूर्ण कार्य हो कर असंख्य वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् ये अन्य देश उस समय जाग्रत हुए जब भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात हमारे आर्य-धर्म के जैन, वैदिक और बौद्धमतों में परस्पर कलह उत्पन्न हुआ।

उत्कीर्ण होकर मत-मतान्तर विश्व भर में छा गये,
जो सो रहे थे जग गये, दानव मनुजता पा गये।
कानन अगम सब कट गये, हर ठौर उपवन हो गये;
आखेट कर जो पेट भरते, थे कृपक वे हो गये॥ २७॥

जैन, बौद्ध और वेदमत फैलकर सर्व जगती में प्रसरित हो गये। जहाँ इनका प्रचार हुआ वहाँ के निवासी जाग्रत और सभ्य बन गये, घनेजङ्गल काट डाले गये और वहाँ उपवन लग गये। इस प्रकार जो मनुष्य शिकार कर के ही उदर भरते थे इन धर्मों के प्रचार से कृषि करना सीख गये।

ये कर्म हैं उस काल के सब जब कि गिरने हम लगे,
थे आप गिरते जा रहे पर सोचने क्यों हम लगे।
जिस वेग से ऊँचे चढे थे शत गुणे गिर कर पड़े;
विद्या कला-कौशल सभी के चक्र उल्टे चल पड़े॥ २८॥

अन्य देशों को जाग्रत करना, सभ्य बनाना, मनुष्यता

शिल्पशाला आदि कर्म हमारे उस समय के हैं जब कि हम गिर रहे थे। हमारी अवनति हो रही थी परन्तु हम इसका विचार ही क्यों करने लगे? जिस उत्साह एवं शीघ्रता से हमारी उन्नति हुई थी उससे सौ गुणी शीघ्रता से हमारी अवनति हुई और विद्या-कला-कौशल का उपयोग जो कल्याण के लिये था, संहार के लिये हो चला।

> मिट जाय चाहे मेदनी—व कर्म मिट सकते नहीं
> वे तब मिटेंगे रवि चन्द्र जब नष्ट हो सकते नहीं।
> कल्पान्त काले रूप में भी भूप उनको कर दिया।
> जब लोह को पारस छुआ कर हेम हमने कर दिया ॥ २४ ॥

यह पृथ्वी नष्ट भ्रष्ट हो जाय लेकिन हमारे पूर्वजों के वे महान कृत्य कभी भी नष्ट नहीं हो सकते। वे तब नष्ट होंगे जब सूर्य चन्द्र उदित ही नहीं होंगे अर्थात् प्रलय होने पर। हम तीन जगत पाले भी रहे थे फिर भी अन्य नरों को हमने सशक्त बनाया लोह से हमें कंचन बनाया।

> था योग-जगती यह चाहे कर्म-जगती नाम था
> अपवर्ग से बढ़ कर यहाँ स्वर्गत्व सुख अभिराम था।
> हम कर चुके थे स्वर्ग विस्मृत स्वर्ग इसको मानते
> इसको पिता माता इसे निज गेह इसको जानते ॥ २५ ॥

इस कर्मभूमि भारत में बिना श्रम किये ही अमन की प्राप्ति होती थी। स्वर्ग से भी बढ़कर यहाँ सुख था। अन्य स्वर्ग जब जाने इसको ही स्वर्ग समझते थे और माता पिता
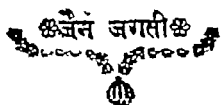
के सदृश इसका मान करते थे और इसको अपना घर समझते थे।

हर ठौर जम्बू द्वीप+में थे कल्प-तरुवर फल रहे,
पुरुपार्थ विन प्रारब्ध ये स्वादिष्ट मधुरम फल रहे।
सब थे चराचर प्रेम भीगे, प्रेममय सर्वस्व था,
वाय्वाग्नि जल थे प्रेममय, यह प्रेममय सब विश्व था॥२६॥

सर्वत्र जम्बूद्वीप में बारह माह फल देने वाले वृक्ष थे। विना परिश्रम किये सर्व प्रकार के उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति। अचर, चर, जल, अग्नि, वायु आदि संसार की सर्व जीव-अजीव वस्तुओं में मनोहर, प्रेमभरा व्यवहार था।

अमृत भरे कंचन कलश से हाय! विप क्यों भलकता,
चेतन हमारे प्राण से जड़भाव किदृश छलकता।
क्या भाग्य दिनकर छिप गया! क्या सृष्टि का विश्राम है।
केली-सदन यमराज का अब देश भारत धाम है॥ २७॥

अमृत से पूर्ण स्वर्णघट समान भारतवर्ष से, ज्ञात नहीं होता विप क्यों बह रहा है। हम भारतवासियों की चेतन आत्माओं से अज्ञानता के भाव कैसे प्रकट हो रहे हैं। क्या हमारा भाग्य रूपी सूर्य अस्त हो गया? क्या संसार

+१ भरतक्षेत्र २ हेमवत ३ हरिवास ४ ऐरण्यवत ५ ऐरवतयुगल क्षेत्र ६ रम्यक्युगलक्षेत्र ७ महाविदेह क्षेत्र, ये सात क्षेत्र मिलकर जम्बूद्वीप कहलाते हैं।

जगती हमारी काल-उर में गप्प यों हो जायगी।
फिर यत्न कितने भी करो, मिलने न फिर तो पायगी !
पुरुपार्थ में ही अर्थ है हे बन्धुओ ! यदि ख्योल हो,
टोहे खडे अखिलेश है, यदि ईश में विश्वास हो ॥ ३० ॥

अगर हम नहीं चेतन होंगे तो यह आर्य्य-भूमि काल के गहरे उदर में बैठ जायगी। फिर लाखों प्रयत्न करने पर भी हम इसको बाहर नहीं निकाल सकेंगे। हे बन्धुओ ! पुरुपार्थ में ही फल की प्राप्ति रही हुई है। अगर साहस है और ईश्वर में विश्वास है तो ईश्वर हमारी सहायता करने के लिये एक दम खडे हैं।

दिनकर हमारा खो गया ! अब रात्रि का विश्राम है।
करवाल लेकर काल अब फिरता यहाँ उद्दाम है।
हे नाथ ! आँखों देखते हो, मौन क्यों हो ले रहे ?
क्या पापियों को पाप का विभु ! भोगने फल दे रहे ॥३१॥

हमारा सूर्य्य अस्त हो चुका है और घोर रात्रि का प्रसार है। यमराज निडर होकर सर्वत्र परिभ्रमण कर रहा है। हे परमेश्वर ! आप यह सब देखते हुए भी चुप क्यों हो रहे हैं ? क्या आप इसी लिये तो चुप नहीं है कि हम पापियों को अपने कृत पापों का फल भोगना ही चाहिये।

हमारे-पूर्वज

मैं उन असीमाधार की सीमा कहूँ, कब तक, कहो ?
क्या कर सके खाली जलधि को घन भला अब तक, कहो ?

मैं रश्मि हूँ वे रश्मिमाली, व उदधि, घटधाम मैं
संगीत वे, सारंग-पानी क्या करूँ गुणगान मैं ॥१२॥

उन अगण्य अतीत महापुरुषों का मैं कब तक वर्णन कर सकूँ। बादल आज तक समुद्र का पानी उलीचते रहे परन्तु क्या-क्या व समुद्र को खाली कर सके? मैं प्रकाश की एक क्षुद्र किरण हूँ व पूर्वज सूर्य हैं व महासागर हैं और मैं एक घट बासा व संगीत के पारावार हैं और मेरे हाथ में एक वीणा ऐसे उन महान् का कीर्तन करने में मैं कैसे सफल हो सकता हूँ?

हैं गान उनके गूँजते अब भी गगन अवपार में
पवमान कानन अगम में औ फूट कर जलधार में।
पिक शुक कोका सारिका हैं गान उनके गा रहे
देखो जहाँ हम हैं वहीं संचार उनका पा रहे ॥१३॥

जल अग्नि वायु पृथ्वी आकाश सर्वत्र उनके गीत गाये जा रहे हैं। कोयल मोर मैना आदि पक्षी जो कलरव करते हैं उन्हीं दयालु पूर्वजों का गान गाते हैं। जिस ओर दृष्टिपात करें हम उनके प्रभाव का अनुभव करते हैं।

अपमान होगा हाय! उनका जो उन्हें मैं नर कहूँ
तब सुर कहूँ? सुरनाथ या? फिर और क्या उनको कहूँ?
उनके रहे सेवक सभी! सुर, इन्द्र रवि शशि असुर थे
वे अचल योगी पतित पावन सिद्ध तारण-तरण थे ॥१४॥

ऐसे महान पूर्वजों को अगर मैं मनुष्य कहता हूँ तो यह तो

उनका अपमान होगा । उन्हें देव कहूँ ? इन्द्र कहूँ या इनसे भी कोई ऊपर कहूँ । देवता, राक्षस, इन्द्र, सूर्य चन्द्र तो उनके सेवक थे । वे पूर्वज महाव्रती, योगी, पतितों के स्वामी, सिद्ध और भवसागर से पार उतारने वाले, उतरने वाले सफल तैराक थे ।

धर्मार्क सरसिजप्राण थे, वे धर्म पंकज-भृंग थे,
वे धर्म सरवर-मीन थे, सोपान मेरुशृंग थे ।
वे सर्व वर्त्ती भाव थे, वे मोक्षवर्त्ती जीव थे ।
चरित्र की दृढ नींव थे, वे ज्ञान दर्शन सींव थे ॥३५॥

उनके हृदय-कमल धर्म रूपी सूर्य के प्रकाश को पाकर खिलते थे । धर्म रूपी कमल के वे भ्रमर थे । धर्म रूपी सरोवर की वे मछली थे मोक्षप्रेमी प्राणी थे । ज्ञान-दर्शन और चरित्र की वे परम चरम नींव-सींव थे ।

वे शांति-संयम पूर्ण थे, दाक्षिण्य में रण-शूर थे;
वे धीर थे, गंभीर थे, सद्धर्ममद में चूर थे ।
निर्लेप थे, निष्पाप थे, कामारि थे, शिवराज थे;
वे कर्म-पशुदल काटने में वर निडर पशुराज थे ॥ ३६ ॥

वे पूर्वज परम शान्त, पूर्ण संयमी, दानवीर, धीर, गम्भीर और परम धर्मात्मा थे । न उनको मोह था और न वे कोई पाप ही करते थे । वे शीलव्रतधारी भगवान् महादेव थे । कर्मरूपी पशुओं के लिए वे सिंह थे ।

अजेय जागती

थी शारदा स्वच्छ रागाती चरण चपला चूमती
जिनके घरों में सिद्धियाँ थीं सेविका सी घूमती।
था ऐसा एसा कौन जो वह प्राप्त उनको था नहीं
पर शोक के पीछे उन्हें मरना पड़ा यों था नहीं ॥ १७॥

उन पूर्वजों के घरों में सरस्वती लक्ष्मी और सिद्धियाँ सेविकाओं का कार्य करती थीं। उन्हें सब प्रकार के वैभव प्राप्त थे। ऐसा कोई वैभव नहीं था जो उन्हें अप्राप्य था। फिर भी वे वैभव के इतने प्यासे न थे जितने आज हम वैभव के पीछे मर रहे हैं।

वे चक्रवर्ती भूप थे षट्खण्ड लोकाधीप थे
भू वह्नि जल नभ वायु पर उनके रणगमन दीप थे।
था कौन ऐसा कर्म जिसको वे नहीं थे कर सके?
था कौन ऐसा सुर मनुज जिसको न वश वे कर सके?॥१८॥

वे सार्वभौम सम्राट थे। चारों ही चक्रों में सब लोकों में उनका साम्राज्य था। पृथ्वी अग्नि जल आकाश वायु सर्वत्र उनका प्रभाव था। ऐसा कोई कर्म ही नहीं था जो उनके लिए असंभव और असाध्य रहा हो। उन्होंने समस्त लोक और लोकों के निवासी पुरुष और देवों को वश किया था।

करते नहीं थे कर्म ऐसा कि किसी को कष्ट हो
सब एक घर के मीत थे, फिर क्यों किसी से रुष्ट हो।

आचार में, व्यवहार में, सन्मार्ग में सब एक थे;
मृगराज, गौ, मृग, गज, अजा जल घाट पीते एक थे॥३९॥

वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे कि जिससे किसी अन्य प्राणी को कुछ भी कष्ट हो। उनमें ऐसा मनमुटाव हो भी तो कैसे, सब अपने को एक ही स्थल से अनुप्राणित मानते थे। सब के आचार, व्यवहार एक थे। सत्य मार्ग में सब एक थे। गौ, बकरी, सिंह, हिरण, हाथी सब परस्पर प्रेम पूर्वक एक ही स्थान पर पानी पीते थे।

साहित्य उनने जो लिखा वह क्या लिखेगी शारदा !
आसीन थी उन पूर्वजों के मुख कमल पर शारदा।
उन ज्ञानगरिमागार के जो गान गायक गा रहे,
मृतलोक से सुरलोक में वे हैं बुलाये जा रहे ॥४०॥

जैसा साहित्य उन पूर्वजों ने रचा है स्वयं सरस्वती भी वैसे साहित्य की रचना नहीं कर सकती। उन पूर्वजों की जिह्वाओं में सरस्वती का निवास था। जो सगीतक उन ज्ञान और गौरव के भडार पूर्वजों का कीर्तन करते हैं, वे देवलोक में निमन्त्रित किये जा रहे हैं। अर्थात् मृत्यु के पश्चात् उनको स्वर्ग की प्राप्ति होती है

कृतकाल में कलिकाल का वे स्वप्न खलु थे देखते,
सर्वज्ञ थे, त्रयकालदर्शी, क्यों न थे वे-पेखते ?
वे प्रलय तक के हाल सब, लिखवा गये औ लिख गये;
कौशल-कला-विज्ञान के भडार-पूरे-भर गये ॥४१॥
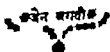
वे हमारे पूर्वज भूत, भविष्यत् वर्तमान को देखने वाले थे, सब जानने वाले थे। कलयुग की कल्पना उन्होंने सत्युग में ही करली थी। इसी तरह वे न सृष्टि के अन्त समय तक का पूरा वर्णन ग्रन्थों में कर गये। ज्योतिष कला एवं विज्ञान पर अनेकों ग्रन्थ लिख कर साहित्य भंडार भर गये।

हम देखते हैं ठीक वह है जिस तरह ऋषि कह रहे
हैं आज वर्तमान उनके शास्त्र अनुसार कर रहे।
विश्वास फिर भी कथन में होता नहीं उनके हमें।
हा! क्या करें? वह अंश क्यों देता नहीं करने हमें ॥८२॥

कलियुग का उन्होंने जैसा वर्णन अपने ग्रन्थों में लिखा है ठीक ग्रन्थों व शास्त्रों के अनुसार आज सब कलियुग की घटनायें चल रही हैं। फिर भ हमको उनके ग्रन्थों की प्रमाणिकता एवं सत्यता पर श्रद्धा नहीं जमती। इसमें हमारा दोष नहीं। इस कलियुग का स्वभाव ही ऐसा है। पूर्वजों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न ही नहीं होती फिर जमे कहाँ से?

है कौन ऐसा मनुजवर जो साम्य उनका कर सके?
वह ज्ञान तप व्यवहार में जो होड़ उनकी कर सके?
क्या जगमगाती ज्योतिमानी साम्य रवि का कर सकी?
हो क्या गया यदि कीट पर विस्तर शिखर भी चढ़ सकी ॥८३॥

हमारे पूर्वजों की समता करने वाला अन्य जातियों में कोई पुरुष नहीं हुआ। बल में, ज्ञान में तपस्या में और मानव व्यवहार में उनकी बराबरी करने वाला कौन है? दीपक की

लौ चाहे जितनी जगमग करें, लेकिन क्या वह सूर्य की समता कर सकती है ? पतगों के हृदय पर अपना अधिकार जमा लेने मात्र से वह सूर्य से बढ कर है यह नहीं कहा जा सकता।

इन तीर्थ धर्मावास की दृढ नीव वे हैं रख गये,
आगम, निगम, श्रुति, यम, नियम विस्तारपूर्वक रच गये।
साहित्य जितना है रचा उपलब्ध उतना हो नहीं,
अवशिष्ट हित भी हम कहीं शायद अधूरे हों नहीं। ॥४४॥

हमारा जीवन सुखी एव चरित्रवान हो, इस दृष्टि से वे आदर्श तीर्थों की दृढ स्थापना कर गये, शास्त्र, निगम, श्रुतियों की रचना कर गये और सर्व प्रकार के ग्रन्थों में नियमोपनियम, यम लिख गये। आज चाहे उनका लिखा हुआ साहित्य पूरा न प्राप्त होता हो, लेकिन जितना प्राप्त है, उसके लिये भी हम पर्याप्त सभवतः नहीं हैं।

उन पूर्वजों की शीलसीमा कौन कवि पति गा सका ?
गुण गान सागरकूल का भी दृश भर नहिं पा सका।
वे थे विरति, रतिवान हम, निर्धूम वे, हम धूम हैं,
वे योग थे, हम रोग हैं, वे थे सुमन, हम सूम हैं ॥४५॥

ऐसा कौन कवीश्वर हुआ है अथवा है जो इन पूर्वजों का महत्व पूर्ण सख्या में आँक रखा हो। उनके कीर्तन के सागर में स्नान करना अथवा उसको पार करना तो दूर रहा ऐसा कौन है जो उनके कीर्तन सागर का तट भी भली भाँति निहार सका

प्रथम योगी हैं, प्रथम वेभवपति हैं, देव एव दानवों के प्रथम अधीश्वर हैं, जगत् के प्रथम मार्ग दर्शक है, विधि विवान अर्थात् शास्त्र, कला कौशल, सभ्यता, व्यवहार, भूमिकर्म, असिकर्म, मसिकर्म की स्थापना और शिक्षण करने वाले हैं। हमारे साहित्य से पता लगता है कि उनको हुये अनत वर्ष हो चुके हैं। इतनी प्राचीन हमारी सभ्यता है—तात्पर्य यह है।

क्या आयु, सयम, शील में इनका कहीं उपमान है?
किसको मिला आध्यात्म में इनके बराबर मान है ?
हैं कौन विभुवर अजित, 'अर' से विश्वजेता हो गये ?
क्या 'शान्ति', 'सभवनाथ'से जग के विजेता हो गये ॥४८॥

आयु में जितेन्द्रीयता में, शील व्रत में भगवान् ऋषभ देव, की समता करने वाला कोई नहीं हुआ है। किसने इनके बराबर आत्मशक्ति की चरमता प्राप्त की है ? भगवान अरनाथ और अजितनाथ, शातिनाथ, सभवनाथ ये सब चक्रवर्ती सम्राट थे। सारे विश्व को इन्होंने जय किया था। विश्व का ऐसा जय किसने किया है ?

'द्वादश' हमारे चक्रपाणी[१] धर्मध्वज लहरा गये,
नवदेव[२], 'नवप्रतिवासुमुर[३]' कौशल महा दिखला गये
उस मोक्षवेता भूप का वप भारतको नाम था,
जिस पर पड़ा इस देश का भारत अन-वद्य नाम था ॥४९॥

धर्म का प्रचार एव सम्पूर्ण विश्व को जय करने वाले १२ चक्रवर्ती सम्राट, नव बलदेव, नव वासुदेव, नवप्रति वासुदेव

वासुदेव

सं०	नाम	माता	पिता	नगर	आयु	शरीर मान	गति
१	त्रिपृष्ट	मृगावती	प्रजापति	पोतनपुर	८४००००० वर्ष	८० धनुष	७ पृथ्वी लोक
२	द्विपृष्ट	पद्मादेवी	ब्रह्मराजा	द्वारका	७२००००० ,,	७० ,,	६ ,,
३	स्वयभू	पृथ्वी देवी	भद्रराजा	,,	६०००००० ,,	६० ,,	६ ,,
४	पुरुषोत्तम	सीता देवी	सोमराजा	,,	३०००००० ,,	५० ,,	६ ,,
५	पुरुषसिंह	अमृता देवी	शिवराजा	अश्वपुर	१०००००० ,,	४५ ,,	६ ,,
६	पुरुषपुंडरीक	लक्ष्मी देवी	महाशिर	चक्रपुरी	६५००० ,,	२९ ,,	६ ,,
७	दत्तनामा	शेषवती	अग्निसिंह	कासीनगर	५५००० ,,	२६ ,,	५ ,,
८	लक्ष्मण	सुमित्रा	दशरथ	अयोध्या	१२००० ,,	१६ ,,	४ ,,
९	श्रीकृष्ण	देवकी	वसुदेव	मथुरा	१००० ,,	१० ,,	३ ,,

अद्भुत् कर्मवीर हो चुके हैं। राजर्षि भरत चक्रवर्ती को कौन नहीं जानता। आर्यावर्त का नाम भारत वर्ष इसी भरत चक्रवर्ती के नाम के पीछे पड़ा है।

अरिहत जिन पर पष्ट-अष्टादश हमारे हो गये,
तप, तेज, वल, शुचि, शील की वे सीम अतिम हो गये।
किन्नर, सुरासुर, मनुज के वे लोकलोकाधीप थे,
निरपेक्ष थे, निर्लेप थे, परमात्म चक्राधीप थे॥ ५०॥

हमारे २४ चौबीस तीर्थंकर हो चुके हैं। तप, तेज, बल, द्धता, मत की वे अन्तिम सीमा थे। देवता, राक्षस, मनुष्य, न्नर, लोक और अलोकों के वे अधीश्वर थे। उन्हें किसी के ल, सहाय की अपेक्षा नहीं थी। वे स्वतत्र थे निर्मोह थे, हात्मा थे और सुदर्शनचक्र के धारण करने वाले महापराक्रमी रूप थे।

सब राजकुल उत्पन्न थे, सब सार्वभौमिक भूप थे;
नरराज थे, नररूप में अखिलेश के सब रूप थे।
साम्राज्य इनका सुखद था, दुख, शोक, चिन्ता थी नहीं,
मिथ्या-अहिंसामय कहीं भी ठौर मिलती थी नहीं॥ ५१॥

ये चौबीस ही तीर्थंकर राजाओं के पुत्र थे, चक्रवर्ती सम्राट पुरुषोत्तम थे, मनुष्य के रूप में ईश्वर थे। इनका राज्यकाल दायी था कोई शोक, चिन्ता, सताप नहीं था। इनके राज्य में ऐसा कोई स्थान नहीं था जहाँ हिंसा और त्याचरण का लेश मात्र भी भाव था।

१२	वासुपूज्य	वसुपूज्य	जया	चम्पा	महिष	रक्त	७० धनुष	७२ लाख वर्ष
१३	विमलनाथ	कृतवर्मा	श्यामा	कांपिल्यपुर	सूकर	स्वर्ण	६० ,,	६० ,,
१४	अनन्तनाथ	सिंहसेन	सुयशा	अयोध्या	श्येन	,,	५० ,,	३० ,,
१५	धर्मनाथ	भानु	सुव्रता	रत्नपुर	वज्र	,,	४५ ,,	१० ,,
१६	शान्तिनाथ	विश्वसेन	अचिरा	हस्तिनापुर	मृग	,,	४० ,,	१ ,,
१७	कुंथुनाथ	सुरराजा	श्रीदेवी	,,	मेष	,,	३५ ,,	९५००० वर्ष
१८	अरनाथ	सुदर्शन	देवी	,,	नदा।स्त	,,	३० ,,	८४००० ,,
१९	मल्लिनाथ	कुम्भ राज	प्रभावती	मिथिला	कुम्भ	नील	२५ ,,	५५००० ,,
२०	मुनिसुव्रत	सुमित्र	पद्मावती	राजगृह	कच्छप	कृष्ण	२० ,,	३०००० ,,
२१	नमिनाथ	विजय	वप्रा	मिथिला	नीलकमल	स्वर्ण	१५ ,,	१०००० ,,
२२	नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवा	शौरीपुर	शंख	कृष्ण	१० ,,	१००० ,,
२३	पार्श्वनाथ	अश्वसेन	वामा	[illegible]	सर्प	नील	९ हाथ	१०० ,,
२४	महावीर	सिद्धार्थ	त्रिशला	क्षत्रियकुण्ड	सिंह	स्वर्ण	७ ,,	७२ ,,

१२	वासुपूज्य	वसुपूज्य	जया	चम्पा	महिष	रक्त	७० धनुष	७२ लाख वर्ष
१३	विमलनाथ	कृतवर्मा	श्यामा	कांपिल्यपुर	सूकर	स्वर्ण	६० ,,	[illegible]० ,,
१४	अनन्तनाथ	सिंहसेन	सुयशा	अयोध्या	श्येन	,,	५० ,,	३० ,,
१५	धर्मनाथ	भानू	सुव्रता	रत्नपुर	वज्र	,,	४५ ,,	१० ,,
१६	शान्तिनाथ	विश्वसेन	अचिरा	हस्तिनापुर	मृग	,,	४० ,,	१ ,,
१७	कुन्थुनाथ	सुरराजा	श्रीदेवी	,,	मेष	,,	३५ ,,	६५००० वर्ष
१८	अरनाथ	सुदर्शन	देवी	,,	नन्दावर्त्त	,,	३० ,,	८४,००० ,,
१९	मल्लिनाथ	कुम्भ नृप	प्रभावती	मिथिला	कुम्भ	नील	२५ ,,	५५००० ,,
२०	मुनिसुव्रत	सुमित्र	पद्मावती	राजगृह	कच्छप	कृष्ण	२० ,,	३०००० ,,
२१	नमिनाथ	विजय	वप्रा	मिथिला	नीलकमल	स्वर्ण	१५ ,,	१०००० ,,
२२	नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवा	शौरीपुर	शंख	कृष्ण	१० ,,	१००० ,,
२३	पार्श्वनाथ	अश्वसेन	वामा	बनारस	सर्प	नील	९ हाथ	१०० ,,
२४	महावीर	सिद्धार्थ	त्रिशला	क्षत्रीकुण्ड	सिंह	स्वर्ण	७ ,,	७२ ,,

बलराम, लक्ष्मण, भरत, अर्जुन, भीम भ्राता हो गये।
न्यायी, युधिष्ठिर, राम से भी ज्येष्ठ भ्राता होगये।
है कौन ऐसा देश जो उपमान इनका दे सके?
रथ धर्म के सद् तेज से क्या बात जो भू छू सके? ॥५८॥

एक नहीं, अनेक महापुरुष हो चुके हैं। श्री कृष्ण के भाई [बल]राम, रामचन्द्र का भाई लक्ष्मण, भरत और भरत चक्रवर्ती [अ]र्जुन और भीम जैसे आदर्शभ्राता, रामचन्द्र और युधिष्ठिर [जै]से न्यायशील ज्येष्ठबन्धु हो चुके हैं। ऐसा कौन जनपद है जो [इ]नकी बराबरी का एक भी पुरुष दिखला सकता हो। युधिष्ठिर [का] धर्म तेज के प्रताप से सकट भूमि से एक बालिश्त ऊपर [ही] उठा हुआ रहता था।

दे दान कंचन का प्रथम जलपान करना चाहिये
आये हुये का द्वार पर सत्कार करना चाहिये।
नृपकर्ण राजर्षी बली से वीर दानी मर गये,
पर प्राण रहते याचकों की तृप्ति पूरी कर गये ॥५६॥

राजा कर्ण प्रतिदिन कंचन का दान देकर जल पान करता था। राजा बली के द्वार से कोई याचक निराश नहीं लौटता था। मरते समय तक भी इन महा दानवीर श्रेष्ठ पुरुषों ने याचकों की अभिलाषायें पूर्ण की।

गोपाल, यदुपति, नंदनदन, गोपवल्लभ कृष्ण वा,
राधारमण, मोहन, मधुसुदन, द्वारका पति विष्णु वा,
गिरिधर, मुरारी, चक्रपाणी, एक के सब नाम हैं,
मुरलीपति वासुदेव के बस कर्म भी अभिराम हैं ॥६०॥

भी बराबर नहीं हुआ तो आप स्वयं ही तुलापर चढ़ गये। ऐसे महापुरुषों की कहानियें इस्लोक में घर घर कही जाती हैं।

हरिश्चन्द्र ने था आयु में मिथ्या कभी बोला नहीं
चण्डाल के घर बिक गये पर सत्यव्रत छोड़ा नहीं।
धर्मार्थ तजते प्राण अथवा निमिष था जिनको नहीं;
ऐसे मनुज कोई बताये मिल सकें यदि जो कहीं ॥१४॥

सत्यव्रती महाराजा हरिश्चन्द्र ने कभी असत्य नहीं बोला चण्डाल के घर बिक गये पत्नी पुत्र से अलग हो गये परन्तु सत्य को नहीं छोड़ा। धर्म के लिये प्राणों का विसर्जन करना इन महापुरुषों के लिये साधारण खेल था। कोई भी सज्जन ऐसे महाव्रती पुरुष बतलाये कि ऐसे महापुरुष किस समय में हुये हैं ?

नरसिंह थे नरमेध थे नरदीप थे नरनाथ थे,
भूनाथ थे सुरनाथ थे रघुकुलमणि रघुनाथ थे
वनवास चलकर चार दश का त्याग राज्य किसने किया ?
आज्ञा पिता की मान भी वन में शिविर किसने लिया ॥१५॥

रघुवंश में मणी के समान रामचन्द्र पुरुषों में सिंह के समान थे। पुरुषोत्तम मनुष्यों में ईश्वर मनुष्यों के स्वामी पूर्णकाम होते के भी स्वामी थे। ऐसा कौन संसार के चक्रवर्ती व महा पुरुष हुआ है जिसने इनके समान पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष वन में वास किया हो।

सुकुमार नेमिनाथ[1] का बल, आत्मबल भूले नहीं,
अन्यत्र ऐसे वीर बालक आज तक जन्मे नहीं ॥६१॥

रामचन्द्र के पुत्र लव और कुश, अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के समान यहाँ के वीर बालक थे। देवता और इन्द्र भी जिनको महाभयंकर रण करते हुये देख कर आश्चर्यान्वित हो जाते थे। भगवान् नेमिनाथ का शारीरिक बल और आध्यात्मिक बल कैसे भुला जा सकता है? ऐसे बालक कहाँ पैदा हुये हैं?

गणितज्ञ कितने हैं यहाँ? हाँ सामने आकर खड़े,
गिनिये दयाकर 'वीर'[2] में कितने कड़े संकट पड़े?

१—भगवान् नेमिनाथ—ये समुद्रविजय के पुत्र और श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। ये २२ वें तीर्थंकर थे। जब आप अश्वारूढ़ होकर उग्रसेन की पुत्री राजीमती से पाणी-पीड़न करने के लिये श्वसुर-गृह को तोरण-वध हित जा रहे थे कि आपने बीच में से ही अश्व को पशु-गृह में अगणित पशुओं को बंधी देखकर और यह जानकर कि इन्हीं पशुओं के आमिष का बरातियों को भोजन दिया जायगा, मोड़ दिया और आप सीधे गिरनार पर्वत पर चढ़ गये और संसार छोड़ कर दीक्षा ग्रहण कर ली। ऐसे उदाहरण संसार में बहुत कम हैं। विशेष वर्णन के लिये देखो त्रि० श० पु० चरित्र भाग ८ वाँ।

२—भगवान महावीर—ये हमारे अन्तिम तीर्थंकर हैं। जितने उपसर्ग भगवान वीर ने सहन किये, उतने संसार में शायद ही किसी महात्मा ने सहन किये हों। चण्ड कौशिक सर्प ने इन्हें कायोत्सर्ग में काटा, कायोत्सर्ग में ही आप के कानों में ग्वालों ने तीक्ष्ण कीलें ठोंके;

भगवान् श्री कृष्ण के जितने भी नाम हैं वे मनगढ़ंत या इच्छा से रखे हुये नहीं हैं। प्रत्येक नाम किसी घटना, रहस्य या मर्म को लिए हुए हैं। गौओं के पालक होने से गोपाल, पशुकुल में श्रेष्ठ होने से पशुपति नंद अहीर को पिता कहलाने अतः नंदनंदन ग्वालबालों के सखा होने से गोपवल्लभ राधा के स्वामी होने से राधारमण, भक्तजनों को प्रिय एवं मनोहर होने से मोहन, मधु नाम के राक्षस का संहार करने से मधुसूदन, द्वारका के अधीश्वर होने से द्वारकापति, भगवान् विष्णु के समान संसार में दुष्टों का दमन करनेसे विष्णु, पर्वत को धारण कर द्वारका वासियों की इन्द्रप्रकोप से रक्षा करने से गिरिधर, मुर नाम के दैत्य का संहार करने से मुरारी, सुदर्शन चक्र के धारी होने से चक्रधारी कहलाये। मुरली को सदा धारण करने वाले और पृथ्वी के देवता स्वरूप श्री कृष्ण के कर्म बड़े ही अद्भुत थे।

लवकुश[1] तथा अभिमन्यु से वे वीर वर बालक कहाँ
रणशौर्य तथा विक्रम चकित थे देव सुरपालक यहाँ

---

१ लवकुश—ये भगवान रामचन्द्र के पुत्र थे। अश्वमेध-यज्ञ के अवसर पर स्वयं रामचन्द्र को पराजय करके जो इन दोनों बालकों ने शौर्य दिखाया था सर्वत्र प्रसिद्ध है।

२—अभिमन्यु—यह अर्जुन का पुत्र था। इसके पराक्रम को और मनुष्य ऐसा है जो नहीं जानता है। कुरुक्षेत्र के महासमर में इस षोडश वर्षीय कुमार ने सप्त महारथियों के भी दाँत खट्टे कर दिये थे। किन्तु अन्त में यह अधर्म नीति से मारा गया था।

क्रौंच पक्षी की रक्षा की, अर्णिका पुत्र को नाविक ने बहते प्रवाह में फेंक दिया, खन्दक ऋषि की त्वचा उतारी गई। परन्तु, धन्य है इन महापुरुषों को कि अपने पीड़कों के प्रति किंचित मात्र दुर्भाव न भर कर प्राणों का विसर्जन किया। बतलाइये, इतने बड़े बड़े कष्ट संसार में किसने सहे और फिर इतना कौन शान्त रहा ?

हम क्या सुदर्शन श्रेष्ठि की कुछ शीलसीमा कह सके ?
उस शूल के मधु पुष्प क्या होये बिना थे रह सके ?
वे पुंश्चली के गेह में चौमास भर भी रह गये,
हैं कौन ऐसे जो कि यों पड़ कर अनल में बच गये ? ॥६५॥

चंपापति दधि वाहन की राणी अभया की कामेच्छा शान्त न करने से उस दुष्टा ने प्रपंच रच कर निरपराध सुदर्शन श्रेष्ठि को शूली पर चढ़वा दिया, परन्तु शील के प्रताप से शूली पुष्पासन बन गया। नवे नन्द के मंत्री शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र ने सन्यास लेकर कोसा गणिका के घर में चतुर्मास किया और शुद्ध चरित्र का परिचय दिया। वेश्या के यहाँ यों रह कर बतलाये, कौन पुरुष शीलशाली रह सकता है ?

हम क्या कहें ? जग कह रहा, थे देव भी हम-से नहीं,
इस शील दुर्गम वर्त्म में सुर भी न थे हम-से कहीं।
परमेष्ठि[1] मंगलमंत्र को नर कौन नहिं है जानता ?
तीर्थंकरों को वीतभव अरिहंत जग है मानता ॥६६॥

---

[1] नमो ऽरिहंताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण, नमो

और हमारे मनों के सच्चे देवता थे। संसार में वे महापुरुष अद्भुत हो गये हैं।

हे बन्धुओ ! उन पूर्वजों का मान करना सीख लो,
गुण, भाव उनका देखकर अनुकार करना सीख लो।
वे धर्म की, शिवकर्म की थीं ज्योतिधर प्रतिमूर्तियें,
उनके उरों में थीं अहिंसा की तरंगित उर्मियें ॥ ६६ ॥

हे भ्राताओ ! हमारे ऐसे पुरुषोत्तम पूर्वजों का मान करना सीखो और उनके आदर्श चरित्रों को देखकर अपना जीवन आदर्श बनाओ। वे महापुरुष धर्म और सच्चे कर्म की प्रभा-] मूर्तियें थीं। उन पूर्वजों की आत्माओं में अहिंसा की तरंगें हिलोरें लेतीं थीं।

कैसे प्रसारक धर्म के वे धर्म केतन हो गये ?
किनमें ? कहाँ तुम ढूँढते ? वे रत्न तुम में हो गये।
वे त्याग के, वैराग्य के, आदर्श अनुपम रख गये,
जग से सर्वत्र ही निस्सार जग में सार के कण रख गये ॥७०॥

वे तुम्हारे में ही धर्म के वर महापुरुष धर्म के अद्भुत प्रचारक हो गये। फिर तुम इन महापुरुषों को कहाँ और किन रूपों में शोध रहे हो। वे त्याग और वैराग्य के अद्वितीय आदर्श रख कर इस सारहीन जगत को सारमय बना गये।

कौत्रिम्य उनमें आज का सा नाम को भी था नहीं,
दुष्भाव यों रिपु-बन्धु-का उनके उरों में था नहीं।
आध्यात्मसर के ये सभी नित पद्म रहते थे खिले,
सब के लिये उनके हृदय के द्वार रहते थे खुले ॥७१॥

एक समय था देवतागण भी हमारी समता नहीं कर सकते थे। शील के पालन करने में वे हमारे बराबर कभी भी नहीं थे। नमस्कार मंत्र को कौन नहीं जानता? संसार चौबीस ही तीर्थंकरों को उन्हें अरिहंत और वीतराग कह कर मान करता है।

गुणगान उनका आज तक कोई नहीं है पा सका
थककर धर्मातिशय बस कहकर कविवर पा सका।
अरिहंत थे वे सिद्ध थे आचार्य थे वे धर्म के
थे महा महोपाध्याय थे मुनिवर्य थे मनमर्म के ॥५७॥

इन हमारे महापुरुषों का वर्णन जो तीर्थंकर थे सिद्ध थे आचार्य थे, उपाध्याय थे एवं साधु थे आज तक कोई महाकवि पूरा नहीं कर सका। सभी ने थक कर अंत में उन्हें धर्मातिशय अर्थात् अनन्त गुणधारी कह कर वर्णनों को समाप्त किया।

हम गर्व जितना भी करें उतना ही हम पर योग्य है
हम ही नहीं हैं कह रहे सब कह रहे जग विज्ञ हैं।
वे मन वचन औ कर्म से हर भाँति पावन हो गये
मन के धनी मनदेव सच्चे व अनन्यक हो गये ॥५८॥

इन महापुरुषों पर हम जितना भी घमंड करें उतना ही योग्य कहा जायगा। हम ही उनकी महत्ता नहीं करते संसार के सब विद्वज्जन उनकी मुक्त कंठ से स्तुति करते हैं। ये मन वचन और कर्म तीनों से पवित्र थे वे अपने मन के रक्षक थे

उपाध्यायेभ्यः नमो लोए सव्वसाहूणं एसो पंच नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवई मंगलम्।

अपवर्ग से वे पुरुपवर क्या लौट कर फिर आयेंगे,
उजड़े हुये क्या देश को आवाद फिर कर जायेंगे ॥७३॥

सिद्ध भगवान के अष्ट गुण होते हैं। वे अष्ट दुष्कर्मों का क्षय करके मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं। ऐसे हमारे सिद्ध पुरुषोत्तम क्या मोक्ष से फिर आवेंगे और इस पतित हुये भारतवर्ष को फिर से उन्नत बना जावेंगे।

आचार्य—

पचेन्द्रियें थीं हाथ में, त्रय गुप्तिमय व्यवहार थे,
क्रोधादि के सब थे विजेता, शीलयुत आचार थे।
व्यवहार, पचाचार उनके, समिति उनकी देखलो,
छत्तीसगुण उनकी क्रियामें वर्तके तुम देखलो ॥ ७४ ॥

आचार्य महाराज के छत्तीसगुण होते हैं। पचेन्द्रियों का [ ] करना, तीन गुप्ति (मन वचन, काया) का धारण करना [ ] प्रकार के ब्रह्मचर्य का पालन करना, चार कषाय (काम, [ ]ध, लोभ, मोह) को जीतना, पच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, [ ]त दान, शील अपरिग्रह), पच आचार और पच समितियों [ ] यथार्थ पालन करना। वे आचार्य इन छत्तीस गुणों के [ ]थार्थ धारक होते थे।

[ ]पाध्याय-साधु—

गंभीरता, दृढता, मधुरता, निष्कपटता, शौर्यता,
शुचि शीलता, मृदुता सदयता,सत्यता ध्रुव धैर्यता।
कहाँ तक गिनाऊँ आपको मैं साधुजन आदर्शता,
कैसे भरूँ मैं वर्ण में अर्णव बतादो तुम पता ॥ ७५ ॥

इन पूज्य महापुरुषों में कुछ भी दिखावा, जैसा आज हम रखते हैं नहीं था। उनकी आत्मायें शत्रु एवं मित्र के भेद नहीं समझती थीं। वे सभी एक ही आध्यात्मसरोवर की आत्मायें रूपी कमल थे। जो सर्वदा प्रफुल्लित रहते थे। उनके हृदय रंक राव सभी का स्वागत करने के लिये अति तथा खुले हुए ही थे।

अरिहंत—

> जिनराज जहाँ उनका हुआ सुख-शान्ति रस बरसा गया
> योजन सवासौ प्रांत में दुख भूख भय से सब बचा।
> इस पार लोकालोक के गुरु, इन्द्र उनको पूजते
> पैंतीस गुणयुत वचन में अरिहंत के स्वर गूंजते ॥२॥

जिस स्थान पर तीर्थंकर भगवान का पदार्पण होता था, उस स्थान के सवासौ योजन में दुष्काल महामारी आदि सर्व आधि व्याधि नष्ट हो जाती थी। सर्वत्र सुख शान्ति और आनन्द छाने लग जाता था चौदह राजलोकों के इन्द्र और देवता उनकी सेवा में प्रस्तुत रहते थे और समवशरण के समय जब भगवान देशना देते तो उनकी वाणी में पैंतीस गुण होते और वह मनुष्य राक्षस पशु पक्षी सब जीवों को अपनी भाषा में सुनाई पड़ती थी।

सिद्ध—

> ये आठ कर्मों का भयंकर काट बन्ध भाग गये
> ये अष्टगुणधारी हमारे मोक्षपद पर थे बसे।

थे आर्य समिताचार्य जिनका नाम अब भी ख्यात है।
जिनको अचल, सर, नद नहीं होते न बाधक ज्ञात हैं ॥७७॥

आचार्यवर्ग में स्वयंप्रभसुरि एवं रत्नप्रभसूरि बड़े तेजस्वी आचार्य हो गये हैं। श्री माल पुर एवं उपकेशपुर (ओसिया) उनकी महानता का प्रमाण दे रहे हैं वज्रस्वामी के मामा समिताचार्य का प्रताप इतना तीव्र था कि जिस मार्ग में उनका विचरण होता, उस मार्ग के जल पूर्ण सरोवर, नदियें, नद और अगम्य पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे।

श्री वज्रसेनाचार्य[1], मुनिवर रत्न[2], कोविद चन्द्र से।
आदर्श थे मुनिवर यहाँ राजर्षि प्रसन्न चन्द्र से ॥

आपने लाखों हिंसकों को अहिंसक बनाया था। मरुप्रान्त के अन्तरगत आया हुआ श्रीमालपुर एक समय परमहिंसक था आप श्री ने ही उस समस्त नगर को तथा वहाँ के राजा जयसेन को जैन बनाया था। श्रीमाल (एक जैन ज्ञाति) श्रीमालपुर से ही जैन बने थे। प्राग्वट वंश को भी आपने जैन बनाया था, जो अब जैन पोरवाल जाति के नाम से विद्यमान है।

रत्नप्रभसूरि—आपने मरुधर प्रान्त अन्तर्गत आई हुई ओसिया नगरी के निवासियों को जिसका पूर्व नाम उपकेशपुर था जैन बनाया था। तभी से ओसिया नगरी के निवासी ओसवाल कहलाते हैं।

१—वज्रसेनाचार्य—ये परम तेजस्वी आचार्य थे। इनके समय में बारह वर्ष का भयङ्कर दुष्काल पड़ा था। आपने सोपा-

थे आर्य समिताचार्य जिनका नाम अब भी ख्यात है।
जिनको अचल, सर, नद नहीं होते न बाधक-ज्ञात है ॥७७॥

आचार्यवर्ग में स्वयंप्रभसुरि एवं रत्नप्रभसूरि बड़े तेजस्वी आचार्य हो गये हैं। श्री माल पुर एव उपकेशपुर (ओसिया) उनकी महानता का प्रमाण दे रहे हैं वज्रस्वामी के मामा समिताचार्य का प्रताप इतना तीव्र था कि जिस मार्ग में उनका विचरण होता, उस मार्ग के जल पूर्ण सरोवर, नदियें, नद और अगम्य पर्वत भी उन्हें मार्ग दे देते थे।

श्री वज्रसेनाचार्य[1], मुनिवर रत्न[2], कोविद चन्द्र से।
आदर्श थे मुनिवर यहाँ राजर्षि प्रसन्न चन्द्र से॥

आपने लाखा हिंसकों को अहिंसक बनाया था। मल्प्रान्त के अन्तरगत आया हुआ श्रीमालपुर एक समय परमहिंसक था आप श्री ने ही उस समस्त नगर को तथा वहाँ के राजा जयसेन को जैन बनाया था। श्रीमाल (एक जैन जाति) श्रीमालपुर से ही जैन बने थे। प्राग्वट वंश को भी आपने जैन बनाया था, जो अब जैन पोरवाल जाति के नाम से विद्यमान है।

रत्नप्रभसूरि—आपने मरुधर प्रान्त अन्तर्गत आई हुई ओसिया नगरी के निवासियों को जिसका पूर्व नाम उपकेशपुर था जैन बनाया था। तभी से ओसिया नगरी के निवासी ओसवाल कहलाते हैं।

१—वज्रसेनाचार्य—ये परम तेजस्वी आचार्य थे। इनके समय में बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा था। आपने सोपा-

गर्दभिल्ल ने कामातुर होकर साध्वी सरस्वती को अन्तःपुर में डाला। साध्वी सरस्वती के भाई कालिकाचार्य ने जब यह घटना सुनी तो उन्होंने तुरत साधुवस्त्र त्याग कर मलेच्छों की एक विशाल सेना लेकर गर्दभिल्ल पर आक्रमण कर दिया। गर्दभिल्ल परास्त हुआ और उस साध्वी को मुक्त किया।

जिन काल इन्द्राचार्य, तिलकाचार्य, द्रोणाचार्य थे,
श्री मल्लवाद्याचार्य सूराचार्य, वीराचार्य थे,
मुनिवर जिनेश्वर, जीवदेवाचार्य, दुर्गाचार्य थे,
उसकाल भारत आर्य था, इसके निवासी आर्य थे ॥८०॥

वह समय सचमुच पावन था, भारतवर्ष सचमुच आर्यावर्त्त था और भारतवासी भी सचमुच आर्य थे जिस समय 'योग-विधि' नामक अद्भुत ग्रंथ के कर्ता इन्द्राचार्य, 'आवश्यक लघुवृत्ति' के कर्त्ता एवं दशवैकालिक सूत्र के टीकाकार तिलकाचार्य, ओघनियुक्ति के टीकाकार द्रोणाचार्य, 'जैन, रामायण' के कर्ता एव भृगुकच्छ मे बौद्ध विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाले आचार्य मल्लवादी, महाराज भोज की विद्वद्मण्डली को दर्शनशास्त्र में परास्त करने वाले सूराचार्य, सिद्धराज जयसिंह की राजसभा में बौद्धाचार्यों को परास्त करनेवाले वीराचार्य, 'पचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, लीलावती, कथारत्नकोष आदि अनेक ग्रंथों के कर्ता जिनेश्वर-सूरि, अपार रिद्धि सिद्धि को त्याग कर संन्यास लेने वाले दुर्गा-चार्य और अनेक विद्याओं के भंडार श्री जीव देवाचार्य (जिन्होंने देहत्याग करते समय अपने शिष्यों को अपना शिर

श्रीमान देवोचार्य[1] के, श्री अभयदेवाचार्य[2] के,
वेतालवादी[3] शान्ति मुनि के, खप्पभट्टाचार्य[4] के—
वर्णन गुणार्णव का करूँ कैसे भला मैं वर्ण में!
पर भान पा सकते नहीं आदित्य का क्या किरण में? ॥८२॥

इन वर्णों में इन महान् तेजस्वी आचार्यों के गुणों के महासागर को मैं किस प्रकार वर्णों में अर्थात् शब्दों में प्रकट कर सकता हूँ? फिर भी जिस प्रकार किरणों क दर्शन पर सूर्य का पता लग जाता है, उसी प्रकार मेरे इन अति साधारण शब्दों से उनका परिचय समझा जा सकता है।

१—मानदेवाचार्य—ये परमहंस थे। एक समय तक्षशाला नगरी में भयंकर उपद्रव प्रारम्भ हो गया। आप उस समय नादोलपुर में विराजमान थे। आपने नादोलपुर मे 'शान्ति-स्तोत्र' बनाया और उसे तक्षशीला को भेजा। ज्योंहि वहाँ 'शान्ति-स्तोत्र' का पाठ किया गया कि एक दम सारा उपद्रव शान्त हो गया।

२—अभयदेवाचार्य—इस नाम के छः प्रसिद्ध आचार्य हो चुके हैं। इन छः में भी अधिक प्रभावक जिनेश्वरसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि हैं। आपने ग्यारह अंगों की टीकायें लिखी हैं। आप नागार्जुन के समकालीन थे।

३—शान्तिसूरि—ये आचार्य धनपाल और सूराचार्य के समकालीन हैं। आपने भी राजा भोज के विद्वद्गणों को निष्प्रभ कर दिया था। अतएव राजा भोज ने आपको 'वादी वेताल' की उपाधि प्रदान की थी।

४—खप्पभट्टाचार्य—इन्होंने मथुरा के राजा आम को जैन-धर्मी

श्रीलाल, वेणीचन्द्र, शिवजी, धर्म दासाचार्य से,
श्रीरत्नचन्द्राचार्य, जयजी, अमरसिंहाचार्य से ।
विश्रुत तपस्वी पूज्य थे दमी, कुरागी थे नहीं
वाचाल भोजक, द्वेषसेवी साधु थे सब थे नहीं ॥८४॥

उक्त सर्व आचार्य परम तपस्वी एव शान्त प्रकृति थे। उनके हृदयों में न राग था और न चमत्कार या पाण्डित्य प्रदर्शन की भावनाय। वे न वाकवादी थे, न भोजनप्रिय और न द्वेषी थे।

'प्रभावक चरित्र' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा है।

अप्पय्याचार्य—ये संस्कृत के प्रख्यात पण्डित थे। इन्होंने 'कुवलयानन्दकारिका' नामक अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा है।

हेमचन्द्राचार्य—सौराष्ट्र पति कुमारपाल के गुरु थे। ये संस्कृत, प्राकृत व मागधी के अगाध विद्वान थे। साढ़े तीन करोड़ से ऊपर श्लोकों की इन्होंने रचना की थी। इन्होंने सभी प्रकार के ग्रंथ लिखे हैं।

अमितगति—इन्होंने 'सुभाषित रत्न सन्दोह', धर्मपरीक्षा आदि अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

पात्रकेसरि—ये आचार्य महाशक्तिशाली वादी थे। इनको 'त्रिलक्षण सिद्धान्त' के खण्डनकर्ता कहते हैं।

पूज्य श्रीलालजी—ये बीसवीं शताब्दी में प्रतापी, वैराग्यवंत एवं कठिन आचार पालने वाले आचार्य हो गये हैं।

पूज्य वेणीचन्द्रजी—ये परम शान्त एवं महातपस्वी आचार्य थे।

४

(।।।)

र्याचार्यों के निकट त्याग धर्म था, इन्द्रियों एवं इच्छाओं
मरण रखना ही कर्म था, शील सदाचार का पालन करना
का मार्ग था, संसार का कल्याण करने के लिये अनेकों
हन करते हुये भी वे भ्रमण करते रहते थे। पथ भ्रष्ट हुये
ते हुये व्यक्तियों को सदुपदेश देकर पुनः पथ पर लाते

उनके यशस्वी तेज से आलोकयुत हम आज हैं,
उनके दया से विश्व में हम मान पाते आज हैं।
हम गर्वयुत हैं कह रहे ऐसे न जग में साधु हैं,
पूर्वज हमारे हैं श्रमण, पूर्वज हमारे साधु हैं ॥८६॥

। पूर्वाचार्यों के गौरवशाली प्रताप के कारण ही आज हमारी
ार में इतनी ख्यादि है, इतना मान है। हमको यह कहते
अभिमान होता है कि ऐसे संन्यासी संसार में किसी अन्य
पद में नहीं हुये। हमारे पूर्वज अद्वितीय परिश्रमी एवं महान्
दर्श साधु हैं।

आदर्श स्त्रियाँ

कैसी यहाँ की नारियाँ थीं-सहज ही अनुमान है,
नर-रत्न जब इनको कहो, अनमोल नर की खान है।
ज्यों चन्द्र के विस्तार से होती अधिक है चन्द्रिका,
नर-चन्द्र की जगव्योम में प्रसरित हुई हैं चन्द्रिका॥८७॥

अब यह समझना कि यहाँ की स्त्रियाँ किस श्रेणी की थी अति
सरल है। इन पूर्वजों को जब नररत्न कहते हैं तो यहाँ की स्त्रियाँ
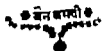
प्रत्यक्ष मानों देवियाँ थीं; ऋद्धियाँ मूर्त्तवत थीं,
आनन्द घर घर हो रहा था, चाह नहिं थी स्वर्ग की।
सुरलोक की सम्प्राप्ति में अपमान हम थे मानते
जब मोक्षपद के योग्य थे तब क्यों नहीं वे मानते ॥८२॥

भारतीय स्त्रियाँ साक्षात् भूतलोक में स्वर्ग की देवियाँ और ऋद्धियाँ थीं। इसके साथ ही भारत वर्ष स्वर्ग से बढ़कर आनंददायी था। घर-घर आनन्द छा रहा था। किसी को भी स्वर्ग की प्राप्ति की चिन्ता न थी। वरन् स्वर्ग की प्राप्ति पर तो वे अपमान का अनुभव करते थे। बात भी सत्य है—जब हम मोक्ष प्राप्ति के योग्य थे तब फिर ऐसा अनुभव नहीं करते।

तब चालनी से भी सुभद्रा सींचती जल है अहो!
बढ़ती अनल को भी शिवा उपशम करती है अहो!
कटते हुए भी हाथ जिनके फिर यथावत हो रहे,
इन शीलमाया भारतियों के गान घर घर हो रहे ॥८३॥

सुभद्रा—अपने शील के प्रभाव से इसने चलनी से कुएँ में से पानी निकाल कर बढ़ते हुये अग्नि-प्रवाह को छिड़क कर शान्त किया था। यह चम्पापुरी—निवासी श्रेष्ठि-पुत्र बुद्धदास की स्त्री थी।

शिवा—चण्डप्रद्योत की रानी और चेटक राजपति की पुत्री थी। इसने नगरी में लगती हुई प्रबल अग्नि को अपने शील के प्रभाव से शमन की थी।

कलावती—शंख नृपति की रानी थी। एक समय राजा

ने मिथ्या शंका से कलावती के दोनों हाथ कटवा दिये। लेकिन अवसर आये शील के प्रभाव से कलावती के दोनों हाथ पूर्ववत हो गये।

सौंपा जिसे निज भाग्य पर अरि के करों में तात ने;
रथवान के कर में तजा मरकर तथा फिर मात ने।
रथवान, गणिका, श्रीमती को भूल हम सकते नहीं
कैसे सहे हा! वासुमति ने कष्ट—कह सकते नहीं ॥६४॥

वासुमति का अपर नाम चंदनबाला है। यह राजा दधिवाहन की पुत्री थी। आजन्म ब्रह्मचारिणी थी और भगवान महावीर की सुयोग्या शिष्या थी। भगवान् का कठिन अभिग्रह चंदनबाला के ही हाथ पूर्ण हुआ था। इसने जीवन में जितने संकट सहन किये उतने दुःख शायद ही किसी अन्य सती ने सहन किये होंगे। एक रथवान इसे और इसकी माता धारिणी को पकड़ कर जंगल की ओर भागा। माता ने विपिन में ही जिह्वा खींचकर प्राण-त्याग किया। गणिकाने इसे क्रय करी, श्रेष्ठि स्त्री ने इसे बंदी बनायी। लेकिन अंत में इसके सब उपसर्ग शमन हो गये।

तन के सिवा सर्वस्व को जो द्यूत में थे खो चुके,
तजवेष सारे राजसी अवधूत जो थे हो चुके,।
होकर दुखी जिसने प्रियाको घोर वन में था तजा
करती उसे सम्पन्न है फिर भीम नृप की आत्मजा ॥ ६५ ॥

राजानल द्यूत क्रीडा में सर्वस्व हार चुके थे। अतिरिक्त

जब अञ्जना, पद्मावती के तप सुभग थे लग रहे,
था स्वर्ण भूमि देश यह, थे भाग्य इसके जग रहे ॥८७॥

भारत वर्ष इन उन युगों में सचमुच स्वर्ग के समान था और महा भाग्यशाली, जिन जिन युगों में इन महा पतिव्रता साध्वी स्त्रियों ने भारत भूमि को अलंकृत किया था।

धारिणी—इस नाम की अनेक वराङ्गनायें हो गई हैं। यहाँ हमारा अर्थ चम्पानरेश दधिवाहन की शीलवती रानी धारिणी से है जो चन्दन वाला वसुमति की माता थी। इसने अपने शील की रक्षा करने के लिये अनेक प्रयत्न किये थे, अन्त में कोई उपाय न चलता देखकर यह जिह्वा खींच कर पञ्चत्वगति को प्राप्त हुई थी।

मदनरेखा—यह राजा युगबाहु की पतिपरायणा रानी थी। युगबाहु को इसके देवर मणिरथ ने मार डाला था और इसे उसकी प्रिया बनने के लिये अनेक प्रलोभन व सङ्कट दिये थे। अन्त में यह प्रासाद छोड़कर भाग निकली थी और दीक्षा ग्रहण कर चारित्र पालने लगी थी।

नर्मदा—यह महेश्वरदत्त की पतिव्रता स्त्री थी। इसने आचार्य सुहस्ति के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

सुलसा—यह परमहंसा महिला थी। इसके बत्तीस पुत्रों का मरण एक साथ हुआ था, लेकिन यह उनके मरण पर तनिक भी शोकातुर नहीं हुई थी। और अपने पति को धर्म का प्रतिबोध देकर उसे इसने शोक-सागर में डूबने से उबारा। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-व्रत का पालन किया।

तुम विश्व पर भी नारियों के कष्ट पहिले तोल दो
राजीमती के कष्ट का फिर तोल मुँह से बोल दो।
देखो स्वयं वर छोड़ कर आया हुआ है जा रहा
यह ज्ञान माया का अहो है द्वन्द्व कैसा आ रहा। ॥ ६८॥

राजीमती का पाणिग्रहण कुमार नेमिनाथ के साथ होना निश्चित हुआ था। लेकिन कुमार नेमिनाथ जो दीन पशुओं को जो वध किये जाने को पशुगृह में बन्द किये गये थे उनका स्वर श्रवण कर तोरण पर से लौट गये थे। तब रथनेमी ने जो नेमिनाथ के अनुज थे राजीमती से विवाह करना चाहा। राजीमती ने रथनेमी को दृढ़ता के साथ बोध दिया और वश में कर लिया। किसी पतिपरायणा कन्या का वर तोरण पर आकर लौट जाय और अन्य द्वितीय कोई उसके साथ विवाह करने

सुसीमा—यह भी कृष्ण वासुदेव की पतिपरायणा रानी थी। इसके शील की परीक्षा देवों ने अनेक प्रकार से की लेकिन यह परीक्षा में सदा खरी उतरी। अन्त में इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-धर्म का पालन किया।

अंजना—यह हनुमान की माता और पवनकुमार की पतिव्रता रानी थी। अंजना की कथा भारत भर में प्रसिद्ध है।

पद्मावती—यह चम्पा के राजा चेटक की पुत्री चम्पानरेश दधिवाहन की पतिपरायणा रानी और करकंडु की माता थी। इसने भी दीक्षा लेकर चारित्र-धर्म ग्रहण किया था।

का प्रस्ताव करे—इस दु:ख के बराबर तोल कर बतलाइये क्या संसार भर की स्त्रियों का दुःख हो सकता है ?

इस ठौर पर ये प्रश्न कैसे हो रहे हैं—देखिये।
उत्तर जयन्ती को स्वय विभु दे रहे हैं—लेखिये।
इन भूतदत्ता, यज्ञदत्ता का स्मरण बल देखिये,
इन सप्त बहिनों के लिये उपमान जग में लेखिये ॥९९॥

जयन्ती शतानिक नरेश की सहोदरा थी। यह प्रखर पंडिता था। अनेक विद्वान इसके प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर नहीं दे सके थे। इसने भगवान महावीर से अनेक प्रश्न किये और अंत में इसने चारित्र ग्रहण किया। भूतदत्ता, यज्ञदत्ता नाम की सात सहोदरायें थीं। ये नंद सम्राट के महामात्य शकटाल की पुत्रियाँ थीं। भारत भर में ये अपनी स्मरण शक्ति के लिये अद्वितीया थीं।

ये लक्ष्मियाँ थीं, देवियाँ थीं, ऋद्धियाँ थीं, सिद्धियाँ,
तन, मन, वचन औ कर्म से करती रहीं नितवृद्धियाँ।
ये थीं सुधा, गृह था सदा देवामृता कर, सुख भरा,
ऋतुराज का साम्राज्य था, सब भाँति हर्षित थी धरा॥१००॥

भारतीय स्त्रियाँ दाक्षिण्य में लक्ष्मी के समान उदार, दीन दुखियों पर देवियों के समान सहृदया, ऋद्धियो के सदृश सम्पन्न करने वाली, सिद्धियों के सदृश मनोकामना पूर्ण करने वाली, तन, मन, वचन और कर्म से सदा अभिवृद्धि करने वाली थीं। ये अमृत थीं, इनका घर अमृत से

जो जग रहे हैं आज वे आज सा ही जानते,
रागादि से वे हैं तथा सकोच करते मानते।
कुछ वीर संवत् पूर्व के हैं चिह्न* हमको मिल रहे,
जिनसे हमारे काल का अनुमान जन हैं कर रहे॥१०७॥

जिन देशों में आज जाग्रति हो रही है, उन देशों के निवासी यही समझ रहे हैं कि वे ही सर्व प्रथम जाग्रत होने वाले हैं, उनसे पूर्व किसी जनपद के निवासी जाग्रत ही नहीं हुये। इस प्रकार मानना उनकी अज्ञानता को प्रकट करता है या वे जान बूझ कर, रागादि कारणों से किसी प्रदेश की अति-प्राचीन सभ्यता को नहीं मान रहे हैं। भगवान् महावीर के पूर्व के कुछ चिह्न मिले हैं, जिनसे अब कुछ विद्वान हमारी सभ्यता के आदिकाल का निर्णय करने की चेष्टायें कर रहे हैं।

---

* मथुरा के कंकाली टीलो की खुदाई में अनेक स्तूप, मूर्तियें और शिलालेख निकले हैं। जिनसे हमारी प्राचीनता अधिक सिद्ध होती है।

वी० स्मिथ लिखते हैं—
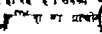
The original erection of the stupa in brick in the time of Paraswanath, the predecessor of mahavir would fall a date not later than 600 B C.

V. Smith
Mutra Antiquities

अभी हाल में जो मोहन जाडोरा की खुदाई हुई है, उसमें एक ध्यानस्थ मूर्ति मिली है। उसे सब विज्ञजन ५००० वर्ष से भी प्राचीन

हम सार्वभौमिक देश को जो छोड़ती देरी करे,
नृप, सुर, पुरदर किस तरह सेवा हमारी कर ? ॥१०९॥

हमारी क्या जाति, क्या वधु, क्या धन वैभव क्या शक्ति सर्व से उचित ढंग का सम्बन्ध था अर्थात इनमें ममत्व व राग हमारा हो और वह अन्य जाति और अन्य व्यक्तियों को दुखदायी, पीड़क हो सो रूप नहीं था। अगर हम इस महान वैभव में आसक्त रहते और अवसर आये उसका त्याग करने में विलम्ब करते तो महाराजा, देवता औरइन्द्र हमारी किस प्रकार सेवा में तत्पर रहते ?

हमने हमारे राज्य में किस को बताओ दुख दिया,
क्रिमि कीट का भी जानते हो मनुजवत रक्षण किया।
क्या दण्ड से भी है कभी जग शान्ति स्थापित हो सकी,
जलती अनल जलधार बिन उपशाम किससे होसकी ? ॥११०॥

कोई बतलावे अगर हमने किसी को हमारे राज्यकाल में दुःख दिया हो। कीडे और मकोड़ों तक का हमने मनुष्यों के समान रक्षण-पोषण किया। दण्ड एवं शक्तिभय से संसार में कभी भी विश्वव्यापी शान्ति स्थापित नहीं हो सकी है—यह इतिहास को पढ कर देखलो। जलती हुई प्रचण्ड अग्नि को तो शीतल जल की धारा ही शान्त कर सकती है।

धन-द्रव्य-नारी अपहरण उस काल में होते न थे।
सम्भव कहो, कैसे कहें, जब पुष्प हम छूते न थे।
त्रियच, मनुज, जड आदि में सब प्रेम युत व्यवहार था।
सब प्रेम के ही रूप थे, सब प्रेममय संसार था ॥१११॥

५

हमारे राज्यकाल में लूट चोरी और हिंसा का अपराध नहीं होता था। जब बिना स्वामी की आज्ञा के और अकारण एक पुष्प तक के छूने में पाप समझते थे तब भला लूट, चोरी और जीवापहरण जैसे अति निन्दनीय कर्म हमसे कैसे हो सकते थे। जड़, जीव, नग, मृग, मनुज, कृमि कीट सब में सर्व प्रकार प्रेम का व्यवहार था। प्रत्येक जड़ वस्तु और प्रत्येक जीवित प्रेम का ही रूप समझा जाता था। समस्त संसार प्रेम के पारावार में निमग्न था।

> हम काल को तो स्वप्न में भी दुःखकर थे मानते
> इसलिये अमर पद जन्म की बस अर्गला थे जानते।
> बस था यह शिवधाम ज्यों हम खोल कर यह अर्गला
> जीवन मरण अभिराम हैं होवे हमें क्यों भय भला ॥११२॥

यमराज हमको क्या डरावे हम यमराज का साधारण प्राप्त के सदृश मात्र करते थे। इन्द्रलोक मुक्ति एवं पुनर्जन्म की मृत्यु एक अर्गला है जिसे खोल कर हम अपनी इच्छानुसार इनमें प्रवेश करते थे। मृत्यु से हमको भय क्यों होवे ? जीवन और और मृत्यु दोनों ही सुन्दर हैं।

> यह बन गया याचक हमारे द्वार पर जो आगया
> अब अधिक था हम क्या कहें वह द्रव्य चाहा पा गया।
> हम गिर गये थे पर गिरे को हम उठाते नित रहे
> निर्जीव को जीवित हमारे भाव बस नित रहे ॥११३॥

जो भी भिक्षुक हमारे द्वार पर आगया, वह मुँहमाँगा ले

गया और सदा के लिये उसका दारिद्र्य विनष्ट हो गया। हम गिरते हुये भी अन्य पतित पुरुषों को उठा रहे थे। मुर्दों में प्राण एवं शक्ति पैदा कर रहे थे।

थे व्यञ्जनों को छोड़ कर उपवास हम जब कर रहे,
थे अन्य जन पर उस समय भी मांस भक्षण कर रहे।
तप, दान, विद्या, ज्ञान गुण हमने सिखाये हैं उन्हें,
पशु से बदल कर सभ्यतर हमने बनाये हैं उन्हें ॥११४॥

मधुर मधुर भोजनों में हम उदासीन होते आ रहे थे और उपवास, व्रतादि क्रियायें कर रहे थे उस समय भी संसार के अन्य देशों में स्त्री, पुरुष मांस भक्षण कर के ही उदर भरते थे। हम ही सर्व प्रथम सभ्य हैं, जिन्होंने उन जंगली पशुओं के मांस पर उदर भरने वालों को ज्ञान और गुण सिखाये, विद्या पढ़ाई, तपस्या और दान की महिमा बतलाई पशु जीवन से मुक्त कर उन्हें सभ्य पुरुष बनाये।

हम दूसरों का देख कर दुख शान्त रहते थे नहीं,
दुख मूल से हम काट कर विश्राम लेते थे कहीं।
उनके दुखों को दुख भला हम क्यों न अपना मानते,
'आत्मस्य आत्मा बन्धु है' जब थे भला यह जानते ॥११५॥

अन्य पुरुष को दुखी देख कर हम अशान्त हो उठते थे और जब तक उसका दुःख निवारण नहीं कर देते तब तक चैन नहीं लेते थे। दूसरों के दुःखों को हम अपना ही दुःख भला

क्यों नहीं समझते जब हम यह सिद्धान्त भली प्रकार जानते थे कि आत्मा आत्मा का बन्धु है।

सब भाँति से हम थे समुन्नत गर्व पर कुछ था नहीं
छोटे बड़े के भेद का दुर्भाव मन में था नहीं।
अपपंक में लिपटे हुये को थे उठाते गोद में
सबको हम रख रहे थे दीन को आमोद में ॥ ११६ ॥

इस प्रकार के वैभव हमारे पास थे, परन्तु किंचित भी अभिमान हमको नहीं था। राव और रंक सभी के साथ हमारा व्यवहार समान था। पापी को भी हम हृदय से लगाकर अपनाते थे और उन्हें सद्मार्ग में प्रेरित करते थे। दीन एवं असहायों को हम प्रसन्नतापूर्वक सम्बल दान देकर सुखी बनाते थे।

हम शील सरवरमग्न थे तप-दान-संयमवान थे;
सद्भावरत्नाकर थे त्रयलोक के आधार थे।
उपकार, नमोंकार में हमको न आलस था कहीं
बस ध्येय दलितोद्धार के अतिरिक्त दूजा था नहीं ॥११७॥

जिस प्रकार मछली पानी के अभाव में जीवित नहीं रह सकती उसी प्रकार हम शील रहित होकर जीवित नहीं रह सकते थे अर्थात् हमारा जीवन शीलव्रत पर ही आश्रित था। तपस्या दान एवं इन्द्रियों का संवरण करना हमारा स्वभाव था। सद्भाव रूपी समुद्र के हम भ्रमर थे तीनों लोकों का जीवन हमारे पर ही एक मात्र आश्रित था। परोपकार एवं

धर्म सम्बन्धी हर उद्धार कार्य में हम निमिषभर का भी विलंब नहीं करते थे। दीन, हीन, असहायों का उद्धार करना ही हमारे जीवन का एक मात्र लक्ष्य था।

सिद्धान्त रचना हैं दयामय शील, समता से भरी
आचार में, व्यवहार में व्यवहृत जिन्हें हमने करी।
प्रतिकूल यदि कुछ हो गया था—कौन किसको दण्ड दे,
अभियुक्त अपने आपको अपराध का खुद दण्ड दे ॥११८॥

हमारा प्रत्येक सिद्धान्त दया, शील एवं सम्यक्त्व के भावों से परिपूर्ण है। जिनका हमने आचार में और व्यवहार में प्रयोग किया है। यदि किसी पुरुष से अतिचार, अनाचार, दुर्व्यवहार हो गया तो वह स्वयं ही अपने आप प्रायश्चित करता था, दण्ड लेता था। दण्ड देने वाले अन्य किसी व्यक्ति की आवश्यकता ही नहीं थी।

आलोचना करते सदा थे भोर में निशिचार की
करते सदा फिर साँझ को दिन में किये व्यापार की
थे माह की औ पक्ष की भी कर रहे आलोचना,
वर्षान्त पर करते तथा सांवत्सरिक आलोचना ॥ ११९ ॥

रात्रि में किये गये कर्मों का विचार प्रातःकाल और दिन भर में किये गये कर्मों का विचार प्रतिदिन सायंकाल को करते थे। फिर १५ दिनों के और एक माह के कर्मों की आलोचना करते थे और वर्ष के अन्त पर सारे वर्ष भर में किये गये कर्मों की पर्यालोचना करते थे। इस प्रकार कृत कर्मों का विचार,

ये गर्व इतना कर रहे हैं 'रेडियो' नभयान पर,
यह तो बतादे—ज्ञान इनका है मिला किस स्थान पर।
है 'शब्द' रूपी, यह कहो किसने तुम्हें पहिले कहा ?
सुरयान यदि होते नहीं, नभयान क्या बनते यहाँ ॥१२२॥

आज ये लोग एक रेडियो जैसी वस्तु तैयार कर अपनी विज्ञानोन्नति का ढिंढोरा जग में पीट रहे हैं। परन्तु कृपा करके यह तो बतावें कि इनको ये भाव कहाँ से प्राप्त हुये। 'शब्द' रूपी है, शब्द का आकार होता है, वह ग्रहण किया जा सकता है, यह पहिले संसार के समक्ष किसने सिद्ध करके रक्खा ? हमारे ग्रन्थों में अगर देवविमानों की चर्चायें नहीं होतीं तो क्या इनमें वायुविमान बनाने की भावनायें उत्पन्न होतीं ?

हम भवन पर बैठे हुये जग बदरवत थे देखते,
है क्या, कहाँ पर हो रहा ? सब मुकुरवत थे पेखते।
तन-मन-वचन में, कर्म में सब के हमारा वास था;
अज्ञेय हो, ऐसा न कोई दीखता नर वास था ॥१२३॥

हम अपने घरों में बैठे हुये भी संसार को हस्ततली में रक्खे हुये आमलफल की भाँति भलिभाँति अवलोक रहे थे। किस स्थान पर क्या हो रहा है दर्पण सदृश हमको दिखाई देता था। संसार के सब प्राणियों के तन, मन, वचन हमारे प्रभाव से अन्वित थे। ऐसा कोई प्रदेश नहीं था, जिसकी हलचल हमसे अज्ञात हो।

पूर्व भव को देख कर थे पद हमारे पड़ रहे,
हम जानते थे मोक्ष में कितने चरण हैं घट रहे।

हम हाय ! वैसी आज हैं प्रति दिवस पीछे हट रहे;
आया प्रलय की घड़ गई या आत्म गौरव मर गये ॥१२४॥

पूर्व भव को इस कर इस आगामी भव को और वर्तमान भव को अधिक आदर्श, पुण्यशाली बनाने का सतत् प्रयत्न कर रहे थे और हमको यह अच्छी प्रकार विदित था कि अब मोक्ष की प्राप्ति में कितना अन्तर रह गया है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हम इस समय में वैसा अपने को दिखाने का मिथ्या भ्रम कर रहे हैं और प्रति दिन पीछे हटते चले जा रहे हैं। हे भगवान् ! ये महामारियों के लक्षण हैं या दुर्भाग्य अधिकाधिक घना होता जा रहा है।

क्या नाथ ! नरसंहार हित विज्ञान निर्मापित हुआ ?
पश्चिम दिशा में दक्षिण इस रूप में विकसित हुआ ?
आकाश ग्रह ग्रहलोक के सब तत्त्व हमको ज्ञात थे
फिर भी कभी यों हीन पर करते न हम उत्पात थे ॥१२५॥

हे भगवान् ! क्या मनुष्यों के सर्वनाश के लिये ही विज्ञान की सृष्टि हुई है ? आप देखिये यूरोपादि पाश्चात्य प्रदेशों में विज्ञान के बल पर सर्वनाश साधन बनाया जा रहा है। आकाश ग्रह तारे और तीनों लोकों के सब तत्त्व हमको विदित थे परन्तु हमने तो कभी भी हीन दीन प्राणियों पर उनका दुरुपयोग नहीं किया।

शिव शान्ति जग में हो नहीं सकती कभी संहार से
क्या भूप कोई बन सका है शान्ति अत्याचार से ?

वर्त्तन अहिंसा वाद का जब विश्वभर में होयगा,
तब अभिलषित शिव शान्तिका साम्राज्य विकशित होयगा॥१२६॥

ससार में विश्वव्यापी शाति सहार करके न हो स्थापित, हो सकती है और न ऐसा कोई हमारे समक्ष दृष्टान्त ही है कि किसी सम्राट ने सहार एव अत्याचार करते हुये साम्राज्य में शान्ति स्थापित की हो। शिव एव कल्याणकारी शान्ति का प्रसार तो उस समय होगा जब ससार में अहिंसा वाद का प्रचार एव अनुशीलन एकमत एव एक प्रकार का होगा।

क्रिमि कीट तक भी बस हमारे राज्य में स्वच्छन्द थे;
पशुपूर्ण कालीरात्रि में निश्चित थे, निष्फन्द थे।
हम ईश नियमों की कभी अवहेलना करते न थे,
हम स्वार्थवस पर अर्थ का यों अपहरण करते न थे॥१२७॥

हमारे राजत्वकाल में कीडे, मकोडे तक पूर्ण सुखी एव निरापाय थे। अमावश्या के घोर अन्धकार में भी पशुनिडर होकर और निर्बन्ध होकर फिरते रहते थे। ईश्वरीय नियमों की हम कभी अवहेलना नहीं करते थे। अपने स्वार्थ सपादन्न के लिये हम दूसरो के स्वार्थपर कुठाराघात कभी भी नहीं करते थे।

कृषिकर्म को करते हुये थे भरण-पोषण कर रहे,
हम उदर-पोषण इस तरह ससार भर का कर रहे।
पर आज तो गोमास ही अधिकाश का आधार है,
शुभ्राशु के पश्चात् क्या छाता सदा तमभार है?॥ १२८॥

कृषि करना हमारा प्रमुख कर्म था। कृषि करके हम अपना
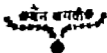
और संसार के सब प्रदेशों का पथ भर रहे थे। परन्तु आज के प्रमुख प्रदेशों का मुख्य भोजन और स्वयं भारत भूमि के भी कितने ही मनुष्य का भोजन गोमांस ही है। क्या वस्तुतः प्रकाश के पश्चात् घोर तिमिर का ही प्रादुर्भाव होता है?

आस्ट्रेलिया और एशिया यूरोप अरबिस्तान को
दुनिया नयी औ अमरीका ईराक औ ईरान को*,
हम पूर्व तुम से भी चुके इतिहास पूरा खोलकर।
तुमने नया है क्या किया दुनिया नयी को खोजकर ?॥१८॥

हे नये नये प्रदेशों की शोध करने का दम्भ भरने वालो! तुम्हारे से बहुत पहिले हमने आस्ट्रेलिया एशिया यूरोप अरब अमरीका अमेरीका ईराक ईरान आदि प्रदेशों मे संबंध स्थापित कर लिये थे। अमेरीका की शोध कर तुमने क्या कौन सा नवीन काम कर डाला?

जो तुम पुरातन सभ्य कुल भी नेत्र भर तक देख लो
संबंध कैसे थे हमारे तुम परस्पर देखलो।
हम भूप थे अर्थी प्रजा थे प्रेम बंधन सम रहे।
हो बहन भाई धर्म के ज्यों रस परस्पर पग रहे॥१९॥

* अगस्त सन् १९१४ को प्रकाशित हुए 'बम्बई समाचार' में एक पुरातत्त्ववेत्ता ने लिखा है कि अमेरिका और मंगोलिया में एक समय जैनियों की बड़ी आबादी थी। आज इन दोनों देशों में भूगर्भ से ऐसी जैन-मूर्तियों के अवशेष उपलब्ध होते हैं कि जिनसे इस बात की पुष्टि होती है। देखिये 'मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास' [illegible]।

अगर आप प्राचीन ग्रन्थों का कुछ भी अवलोकन करें तो आपको हमारे और इन देशों के निवासियों के बीच क्या संबंध थे का पता लग जायगा। राजा प्रजा का संबंध होने पर भी हम परस्पर ऐसे पावन प्रेम बंधनों में बंधे थे कि मानो धर्म के भाई भाई हों। परस्पर में आनंद की ज्योति जगमगा रही थी।

सम्पन्न होकर भी नहीं हम भोग में आसक्त थे;
हम दान जीवन दे रहे थे, आप जीवन-मुक्त थे।
जीवन-मरण के तत्त्व सारे थे करामलवत हुये,
सत्कर्म करने में तभी हम इस तरह उन्नत हुये ॥१३१॥

वैभवपति होकर भी हम महात्यागी थे। संसार को हम असार समझते थे और इस मानव जीवन से विरक्त हो चुके थे, फिर भी अन्य देशवासियों का जीवन सरस और उनके लिये संसार को स सार बना रहे थे। जीवन और मृत्यु के सर्व भेद हमको भली भाँति ज्ञात थे। इसीलए पुण्य कर्म करने में हम आगे बढे हुए थे।

हम आदि करके कर्म को थे मध्य में नहि छोड़ते,
सागर हमारा क्या करे! हम शुष्क करके छोड़ते।
हम पर्वतों को तोड़ कर समतल धरातल धरा कर डालते,
भू, अनल, नभ, वायु जल आदेश भलिविध पालते ॥१३२॥

हम किसी भी कार्य को उसका प्रारम्भ करके मध्य में अड़चन एवं विपदाओं से घबरा कर नहीं छोड़ देते थे। स्वयं

सागर एवं महापर्वत व इनके समान भयंकर संकट हमारे बाधक बन कर अपना अस्तित्व ही खो बैठते थे। अर्थात् पृथ्वी अग्नि, नभ पवन और जल हमारे पूर्ण अनुवर्ती थे।

परमाणु हित ही थे हमारे कर्म सारे हो रहे
जो निम्नता पर इस तरह म थे नहीं हम मर रहे।
यूरोप के जन दर्प को उन्नत कहे हैं जा रहे
संस्कार शिक्षा पूर्व इसके थे कहाँ से पा रहे ॥११३॥

हमारा प्रत्येक कर्म प्राणीमात्र के लिये कल्याणकारी भावना से पूर्ण होता था। इस प्रकार के रचनात्मक विकास पर हम आत्मबल से प्रयत्न नहीं कर रहे थे। इस युग में जो देश अपने को उन्नत मानता है, उससे यह तो पूछिये कि ये सुसंस्कार और ये सुशिक्षा थे तुमको सर्वप्रथम कहाँ से प्राप्त हुई जिसका एक मात्र परिणाम तुम्हारी यह उन्नति है।

विद्वान थे गुणवान थे तप दान में हम शूर थे
हम नीति नय विद्या कला में तिमिरनाशक सूर थे।
हमने कभी भी समर का पहिले निमन्त्रण नहिं दिया
पर काल ने हमसे अकड़ कर अन्त अपना नहिं किया॥११४॥

हम विद्वान गुणी तपस्वी और दानवीर थे। नीति न्याय विद्या और कला में सूर्य और चन्द्र थे। हमने कभी भी प्रथम रिपु से युद्ध का प्रस्ताव नहीं किया। इतने पर भी अगर कोई भी गर्व में चूर होकर हमसे आ ही भिड़ा तो उसका अस्तित्व

ही सदा के लिये ही मिट गया अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति पर - ‹‹
का फिर कोई भय नहीं रहता है।

पर ये नपुंशक आज हैं निंदा हमारी कर रहे,
बक्काल, बणिया हैं हमें ये वक्रस्वर मे कह रहे।
पर तोष इतने मे नहीं है हाय! इनको हो रहा,
भारत 'अहिंसावाद' से ये कह रहे, है रो रहा ॥१३५॥

ये स्वयं कायर एवं पुरुषत्वहीन पुरुष हमारी निन्दा करते है और हमको अपमान जनक शब्दों से संबोधित करते हैं। अपमान जनक शब्द बोल कर ही ये चुप नहीं रह जाते, ये कहते हैं कि भारतवर्ष का यह पतन अहिंसा वाद मत के प्रचार का कारण है।

गजराज को भी भूँकता कुक्कुर सदा लेखा गया,
ये सब समय के चक्र से सब काल में पेखा गया।
'गान्धी' अहिंसा सत्य पर हैं ज़ोर कितना रख रहे,
अवहेलना से आज इनकी जन कुफल हैं चख रहे ॥१३६॥

यह अनुभव सिद्ध बात है कि समय आता है जब हस्ति सदृश बली पशु को कुत्ता भी भूँक सकता है। हमारे मुख्य सिद्धान्त अहिंसा और सत्य हैं और महात्मा गान्धी जो इस युग में विश्व के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष माने जाते हैं इन दोनों सिद्धान्तों के एक मात्र प्रचार को ही विश्वव्यापि शान्ति के स्थापन होने का परम कारण समझते हैं। जो देश या जो समाज आज सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों का तिरस्कार कर

प्राचीनता को नष्ट जो भी हैं हमारी कर रहे,
वे द्वेष या अज्ञानता से इस तरह हैं कर रहे।
स्वाध्याय औ सद्भाव वे ज्यों ज्यों बढ़ाते जायँगे,
हमको अगाऊ पायँगे, वे गुण हमारे गायँगे ॥१४२॥

इतना होने पर भी जो हमारी सिद्ध प्राचीनता को नष्ट

प० बालगंगाधर तिलक का भी यही मत था कि जैन-धर्म अनादि है। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

"ऋषभ देव जैनधर्म के संस्थापक थे यह सिद्धान्त अपनी भागवत से भी सिद्ध होता है। महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं। वे २४ तीर्थंकरों में से एक प्रचारक थे।" ये वाक्य गोविन्द आप्टे बी० ए० इन्दोर निवासी ने अपने एक व्याख्यान में कहे थे।

"लोगों का भ्रम-पूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेव ने किया था। इस की पुष्टि के प्रमाणों का अभाव नहीं है।" ये वाक्य श्री० वरदान्त मुख्योपाध्याय एम० ए० ने अपने बंगला लेख में लिखे थे, जिसका हिन्दी-अनुवाद नाथूराम प्रेमी ने किया है। जै० जा० महोदय प्र० प्रकरण।

"सबसे पहिले इस भारतवर्ष में "ऋषभदेवजी" नाम के महर्षि उत्पन्न हुए। इनके पश्चात् अजितनाथ से लेकर महावीर तक २३ तीर्थंकर अपने-अपने समय में अज्ञानी जीवों का मोहान्धकार नाश करते थे।" ये वाक्य तुकारामकृष्ण शर्मा लट्टू बी० ए० पी० ऐच० डी० इत्यादि प्रोफेसर क्वींस कालेज बनारस ने 'स्याद्वाद महाविद्यालय

६

अभिमत को मानते हैं। प्राचीन शोध करने वाले भूगर्भ वेत्ता जहाँ जहाँ पृथ्वी के गर्भ में अधिकाधिक पढ कर शोध करेंगे वे छ. ही खण्डों में हर स्थल पर हमारे चिह्न देखेंगे।

हमारे विद्वान—कलाविद्

हम आप मुँह से क्या कहें कितने बड़े विद्वान थे,
पर आज कहना ही पड़ेगा—सब तरह गुणवान थे।
जब हीन हमको देशवासी बन्धु भी कहने लगे,
तब क्यों न हम प्रतिकार में उत्तर जरा देने लगे॥१५४॥

हम सर्व प्रकार से गुणवान थे, यह हमको अपने ही मुख से नहीं कहना चाहिये था, लेकिन जब हमारे देशबन्धु ही हम निर्दोषियों को भारत के पतन का प्रमुख कारण बतला रहे हैं और हमको दीन प्रकट कर रहे हैं ऐसी दशा में आज कुछ तो उत्तर के रूप में कहना ही पड़ेगा।

ये मन्त्रविद्या, तन्त्रविद्या यन्त्रविद्या, भूत वा,
वैक्रिय-असुर-सुर-यक्षविद्या, दुष्ट अन्तर्भूत वा।
ये मृत्यु-जीवन-द्वार विद्या, रस-रसायन पाक भी,
ज्ञात थी, ज्योतिष, ऐन्द्रजालिक, गणित विकला सभी॥१५५॥

जल-वह्नि-बंधन, पवनस्तंभन, चित्र-वर्पण स्वर-कला—
हैं आज प्रथित मिल रही ये इस तरह बहुतर कला।
इन नरकलाओं के सिवा नारीकलायें और थीं,
नारी कला में नारियें सब भाँति से शिरमौर थीं॥१५६॥

विद्वान—

जग में अधिक विद्वान हमसे था नहीं कोई कहीं,
हम ही नहीं हैं कह रहे, है कह रही सारी मही।
पर हाय! हमसे अनुग, अगज क्यों सदा जलते रहे
कलिकाल मदिरापान से मतभ्रष्ट हो बकते रहे ॥१४८॥

सर्व से अधिक विद्वान हम थे, यह बात केवल हम ही नहीं कहते हैं, समस्त संसार कह रहा है। फिर भी हमारे सहवर्ती बन्धु और पश्चात्वर्त्ती बन्धु हमसे सदा विरक्त और जले-भुने ही रहे, इसका क्या कारण है? कलियुग के प्रभाव के कारण वे विमूढ होकर मनपढ़ा बकते रहे हैं।

पुज्यापराजित, नन्दि, नन्दिल, भद्रभुज, श्रुत केवली,
सब थे चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता धुरंधर निर्मली।
श्री आर्य रक्षितसूरि के सुमनेश सेवक थे रहे,
ये योग चारों आज उनका पूर्ण परिचय दे रहे ॥१४६॥

पूज्यपाद अपराजित, नदिमित्र, नंदिल, भद्रबाहुस्वामी, श्रुत केवली थे और अतीत चौदह भवों के ज्ञाता थे। श्रीमद् आर्य रक्षितसूरि जम्बू स्वामी के प्रमुख शिष्य थे। ये आचार्य बड़े तेजस्वी थे। इन्द्र इनका परम भक्त था। इन्होंने ४ प्रसिद्ध योग-शास्त्र लिखे हैं जो इनकी प्रखर विद्वत्ता का परिचय दे रहे हैं।

गणधर हमारे एक दश कैसे प्रखर विद्वान थे,
उनके विनिर्मित देखलो ये ग्रन्थ वे गुणवान थे।
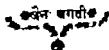
ये ग्रन्थ उमास्वाति ने शतपंच संस्कृत मे लिख
थे पैर्य तक भी सूत्र मुँह से बोलते जनक सके ।।१५।।

इन्द्रभूति अग्निभूति वायुभूति व्यक्त, सौधर्म, मण्डित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतारज और श्रीप्रभास ये ११ भगवान महावीर के गणधर थे। ये सब ही प्रभावक पंडित व विद्वान थे। जैन-धर्म के सब शास्त्र इन ११ गणधरों ने लिपिबद्ध किये हैं।

उमास्वातिआचार्य—ये संस्कृत प्राकृत के अद्वितीय विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत में ५ ग्रन्थ लिखे हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र' इन्हीं का रचा हुआ है। एक बार इन्होंने सरस्वती की पाषाण-मूर्ति से भी अपने श्लोकों का उच्चारण करवाया था।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य का साहित्य विख्यात सिद्ध है।
देवर्द्धिगणि ने शास्त्र विस्तृत सब रच फिर इह दें।
कविराज शेखर धनपति से पाद अब हमको नहीं।
निस्तेज निष्फल हाय! हैं बोलो पतन क्यों हो नहीं ।।१२१।।

कवि राजशेखर—ये आचार्य महाकवि थे। वि० सं० १४०५ में विद्यमान थे। इन्होंने श्रीधरकृत 'न्यायकन्दली' की टीका लिखी है तथा 'प्रबन्धामृतदीर्घिका' नाम का चार हजार श्लोकों का एक ग्रंथ लिखा है।

कुन्दकुन्दाचार्य—ये महान आचार्य विक्रम की प्रथम शती में हुए हैं। इन्होंने 'प्रवचनसार' व पञ्चास्तिकाय, समयसार, नियमसार द्वादशा

किस भाँति सूत्राधार मे श्री पादलिप्ताचार्य ने—
कल्पन किया गज-पृष्ठ का माना जिन्हें आचार्य ने।
शिवकोटि, रामचन्द्र को जब हम ! नहीं तुम जानते ।
सीमा कहाँ दोनों सके ! पद हो पतन की मानते ! ॥१४८॥

जो ऐसे प्रखर विद्वान प्रतापी तेजस्वी, महान आदर्श महाकवियो को पूज्याचार्यों को जब हम नहीं जानते हैं या भूल चुके हैं तो बतलाइये हमारा अध:पतन क्यों नहीं होवे और ऐसे अधोपतन की सीमा भी कहाँ होगी ? हमारे लिये यह कितनी निर्लज्जता की बात है।

नुप्रेक्षा और दर्शनप्राभृतादि प्राकृत ग्रंथ लिखे हैं। ये आचार्य प्रसिद्ध प्रसिद्ध हैं।

देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण—ये विक्रम की छठी शताब्दी में मौजूद थे। ये लोहिताचार्य के शिष्य थे। इनके समय में जैन शास्त्रों का अस्तित्व नाम मात्र को रह गया था। वल्लभीपुर में पुन: इन्होंने समस्त जैन ग्रंथों को पुस्तकबद्ध किया। इनके समय में केवल एक पूर्व का ज्ञान रह गया था।

पादलिप्ताचार्य—ये महाविद्याओं में पारगामी थे। इन्होंने 'लग्न-शोभा, निर्वाणकलिका तथा प्रश्नप्रकाश' नाम का ज्योतिष शास्त्र लिखा है। नागार्जुन ने भी इन्हें अपना गुरु माना था। नागार्जुन आयुर्वेद के धुरन्धर ज्ञाता हो गये हैं। ये जड़ी बूटियों से स्वर्ण बनाते थे। इस का इन्हें बड़ा गर्व था। एक दिन आप पादलिप्ताचार्य जी से मिलने

कविवर दिवाकर ग्रथ कितने कुल मिलाकर लिख गये ?
इतने कि सभव में कोई नहीं हैं लिख गये।
कविभूप, कालीदास, होमर, शेक्सपीयर मान्य हैं,
श्रीमाल, मण्डन, चक्रवर्ती भी न पर अब मान्य हैं ॥१५६॥

ऐसे महान विद्वान एव महाकवियों को कैसे भूला जा सकता है जिन्होंने हठाग्रही बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया, कालीदास जैसे महाकवि की प्रतिभा को भी चकित किया और जिन्होंने ५००-५०० ग्रथ लिखे। ससार के सर्व विद्वानों एव महाकवियों का हम मान करते हैं परन्तु हमारे उल्लिखित नामों के विद्वानों एव महाकवियों की तिरस्कृत, विस्मृत होते कैसे सहन कर सकते हैं।

है। 'तिलक मञ्जरी' जो कादम्बरी के जोड़ का ग्रन्थ है आपने लिखा है।

श्रीमाल—ये प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। आपने भी सस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

मण्डन—ये शक्तिधर सस्कृत एव प्राकृत के प डित थे। इन्होंने अनेक प डितों को शास्त्रार्थ में जीता था। इनकी स्त्री भी बड़ी विदुषी थी। ये माँडू (माण्डवगढ़) के रहने वाले थे।

जयशेखरसूरि—ये आचार्य महेन्द्र प्रभसूरि के शिष्य थे और विक्रम की १५ वीं शती में विद्यमान थे। इन्होंने उपदेश-चिन्तामणि, प्रबोधचिन्तामणि, जैनकुमारसभवमहाकाव्य आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। इनको तत्कालीन साहित्य-ससार ने कवि चक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की थी।

नवरत्न विक्रम नृप के पांडित्य में प्रख्यात हैं
साहित्य रचना आज भी जिनकी अनूठी ख्यात है।
लेकिन दिवाकर सेन की प्रतिभा नहीं वे सह सके,
सम्राट विक्रम जैन फिर होये बिना नहिं रह सके ॥१२४॥

वादीन्द्र वादी हम हरि श्रीपाल परिमल हो चुके
कविवर धनंजय धर्मसागर भी विशारद हो चुके।
ज्योतिष,गणित श्रुति शास्त्र के सब प्रखर पण्डित हुये
उनका सदृश साहित्य पाकर आज हम मण्डित हुये ॥१२५॥

गये लेकिन उन्हें वन्दन नहीं किया। पादलिप्ताचार्य ने अपने मूत्र से एक पत्थर का स्वर्ण-खण्ड बना दिया यह देखकर नागार्जुन को लज्जित हुए और पादलिप्ताचार्य को वन्दन किया।

शिवकोटि—ये प्रसिद्ध समन्तभद्र के शिष्य थे। इन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्र की टीका की है।

धनपाल—धाराधिप नरेश ने इनके प्रखर पाण्डित्य एवं भविष्यवाणी से मुग्ध होकर इनको सरस्वती की उपाधि प्रदान की थी।

सिद्धसेन दिवाकर—ये संस्कृत के बड़े शक्तिधर विद्वान हो चुके हैं। राजा विक्रम के प्रसिद्ध नवरत्न भी इनके आगे निरुत्तर हो गये थे और विक्रम ने जैन-धर्म स्वीकार किया था। इन्होंने कल्याणमन्दिर-स्तोत्र रचकर महाकालेश्वर के लिंग में से भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति प्रकटित की थी।

वादीन्द्र देवसूरि—ये आचार्य पाटणपति राजा सिद्धराज के समय में हुए हैं। राजा ने मुग्ध होकर इन्हें वादीन्द्र की उपाधि प्रदान की।

उक्त सर्व महापुरुष प्रखर विद्वान, महाकवि, अनेक विषयों के धुरंधर ज्ञाता और अनेक विविध विषयों के शास्त्रों के कर्त्ता हो चुके हैं। इनके कल्याण कारी भावों से परिपूर्ण साहित्य को प्राप्त कर आज हम अपना गौरव व शोभा स्थापित कर सके हैं।

'स्याद्वादरत्नाकर', 'प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार' जो समस्त संस्कृत साहित्य में अद्वितीय ग्रन्थ माने जाते हैं। इन्हीं आचार्य के बनाये हुए हैं।

वादी देवसूरि—देवसूरि नाम के एक आचार्य मुगल सम्राट जहाँगीर के समय में भी हो चुके हैं। ये भी बड़े विद्वान आचार्य थे और इन्हें 'वादी' की उपाधि थी।

हेमचन्द्रसूरि—ये प्रसिद्ध आचार्य अभयदेव सूरिजी के शिष्य थे। ये १२ वीं सदी में हुए हैं। इन्हे 'मल्लधारी' की उपाधि राजा सिद्धसेन ने अर्पण की थी। इन्होंने जीव-समास, भवभावना, शतकवृत्ति, उपदेश मालावृत्ति' आदि अनेक अमूल्य ग्रन्थ लिखे हैं।

हरिभद्रसूरि—ये आचार्य भी संस्कृत के अजोड़ विद्वान थे। ये विक्रम की छठी शती में हो गये हैं। इन्होंने कुल मिलाकर १४४४ ग्रन्थ लिखे हैं। जंबूद्वीप-संग्रहणी, दशवैकालिकवृत्ति, ज्ञानचित्रिका, लग्नकुण्डलिका योगदृष्टिसमुच्चय, पंचसूत्र वृत्ति इत्यादि।

एक इसी नाम के आचार्य १२ वीं शताब्दि में भी हो गये हैं। ये भी बड़े शक्तिधर आचार्य थे। इन्हें लोग कलिकालगोतम कहते हैं। इन्होंने भी 'तत्त्वप्रबोधादि' अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

मकरंद कविपति वाग्भट को मूक इस किस विधि सके !
क्या बौद्ध उनके सामने शास्त्रार्थ में थे टिक सके ?
कविभूप कालिदास इस जिस प्रश्न को नहिं कर सके !
उस प्रश्न को धनपाल कविवर सहज हल न कर सके ॥१२३॥

भारवि—यह गाराफु पति राजा विष्णुवर्धन के समय में हुए हैं। ये महाकवि थे और राजा इनका बड़ा सम्मान करता था।

परिमल—ये बड़े भावुक कवि और विद्वान थे।

धनंजय—इस नाम के एक महाकवि विक्रम की ९ वीं शती में हो गये हैं। इन्हें समस्त संस्कृत-साहित्य-संसार जानता है। इनके बनाये हुए अनेक ग्रंथ अति प्रसिद्ध हैं। 'द्विसंधानमहाकाव्य' जिसके प्रत्येक श्लोक से दो-दो कथाओं का अर्थ निकलता है तथा 'धनंजय-नाममाला' आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

वज्रस्वामी—इनकी स्मरण शक्ति बड़ी प्रबल थी। आठ वर्ष की आयु तक इन्होंने अध्ययन से ११ अंगों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। पश्चात् आचार्य सिंहगिरि के पास इन्होंने व्रत ग्रहण किया। ये १० पूर्व के ज्ञाता और वैक्रियलब्धि-धर थे। इनका स्वर्ग-गमन महावीर सं० ५८४ में हुआ।

अकलंक—ये प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ थे। इन्होंने अनेक बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था और जैन-धर्म की अतिशय उन्नति की॥

वाग्भट—ये महाकवि थे। वाग्भटालंकारवृत्ति नेमिनिर्वाण काव्य छन्दानुशासनवृत्ति इनके रचे हुए ग्रन्थ हैं। संस्कृत-साहित्य-गगन में इनका सम्मान महाकवि कालिदास के समतुल्य है।

धनपाल—महाकवि धनपाल महाकवि कालिदास के समकालीन

कविवर दिवाकर ग्रंथ कितने कुल मिलाकर लिख गये?
इतने कि समय में कोई नहीं हैं लिख गये।
कविभूप, कालीदास, होमर, शेक्सपीयर मान्य हैं,
श्रीमाल, मण्डन, चक्रवर्ती भी न पर अब मान्य हैं॥१५६॥

ऐसे महान विद्वान एवं महाकवियों को कैसे भूला जा सकता है जिन्होंने हठाग्रही बौद्धों को शास्त्रार्थ में परास्त किया, कालीदास जैसे महाकवि की प्रतिभा को भी चकित किया और जिन्होंने ५००-५०० ग्रंथ लिखे। संसार के सर्व विद्वानों एवं महाकवियों का हम मान करते हैं परन्तु हमारे उल्लिखित नामों के विद्वानों एवं महाकवियों को तिरस्कृत विस्मृत होते कैसे सहन कर सकते हैं।

है। 'तिलक मञ्जरी' जो कादम्बरी के जोड़ का ग्रन्थ है आपने लिखा है।

श्रीमाल—ये प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। आपने भी संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

मण्डन—ये शक्तिधर संस्कृत एवं प्राकृत के पंडित थे। इन्होंने अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता था। इनकी स्त्री भी बड़ी विदुषी थी। ये मांडू (माण्डवगढ़) के रहने वाले थे।

जयशेखरसूरि—ये आचार्य महेन्द्र प्रभसूरि के शिष्य थे और विक्रम की १५ वीं शती में विद्यमान थे। इन्होंने उपदेश-चिन्तामणि, प्रबोधचिन्तामणि, जैनकुमारसम्भवमहाकाव्य आदि अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे हैं। इनको तत्कालीन साहित्य-संसार ने कवि चक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की थी।

मानन्द है वही आनन्द इनकी रचनाओं में भी निहित है। जटमल भी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। प्रेमलता नामक ग्रन्थ इनका अधिक प्रसिद्ध है। श्रीमान्लोंका शाह ने बत्तीश जैनागमों की प्रतिलिपियाँ करके युगातर उपस्थित कर दिया।

शास्त्रज्ञ आत्माराम, हुक्मीचन्द्र, लवजी हो गये;
पंडित यशोपाध्यायजी शतग्रन्थ कर्ता हो गये।

बादशाह मुहम्मदशाह को विष देकर मार डाला, इससे इनको संसार से घृणा उत्पन्न हो गई और ये नौकरी छोड़कर पाखण्ड एव आडम्बर के विरुद्ध प्रचार करने लगे। जैन यतियों में फैले हुये मिथ्याडम्बर का इन्होंने घोर विरोध किया। बत्तीस जैनागमों की इन्होंने प्रतिलिपियाँ की। स्थानकवासी संप्रदाय के मूल प्रवर्तक ये ही हैं। अलवर में इनका स्वर्गवास हुआ। कहते हैं विरोधियो ने इनको भोजन में विष दे दिया था।

आत्मारामजी—इनके विपय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। ये महान आचार्य अभी हाल में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती के ही समय में हो चुके हैं। आपने अनेक ग्रंथ लिखे हैं और आज आपके नाम से कितनी ही सभाएँ, संस्थाएँ चल रही हैं। इनका विस्तृत जीवन-चरित्र भी निकल चुका है। इनका स्वर्गगमन सं॰१९४॰ में हुआ है।

हुक्मीचन्द्रजी—ये आचार्य स॰ १९१९ में स्वर्गस्थ हुये थे । ये

हमारा साहित्य

साहित्य सरवर है हमारा कमल भावों से भरा,
जिसमें अहिंसा जल तरंगें कर्ती हैं सुन्दरा।
शुचि शील सौरभ से सुगन्धित हो रही है भारती,
सद्ज्ञान परिमलयुक्त है सलिलोर्मि करती आरती ॥१५६॥

हमारा साहित्य रूपी निर्मल सरोवर कमल रूपी सुन्दर भावों से परिपूर्ण है। उसमें अहिंसा रूपी सुन्दर लहरें नर्तन करती रहती हैं। परम पवित्र शील रूपी कमलगंध से सारा भारतवर्ष सुगन्धित हो रहा है और सद्ज्ञान रूपी कमल पराग से युक्त होकर अहिंसा रूपी लहरें सर्वदा सरोवर में अभिवादन करती रहती हैं।

उस आदि प्राकृत में हमारा बद्ध सब साहित्य है
पर आज प्राकृत भाषियों का अस्तमित आदित्य है।
ऐसे न हम विद्वान हैं—अनुवाद रुचिकर कर सकें।
जैसा लिखा है, उस तरह के भाव में फिर रख सकें ॥१६०॥

हमारा अधिकांश प्राचीन मूल साहित्य प्राकृत भाषा में है और आज प्राकृत भाषा विज्ञों का एवं भाषियों का नितांत अभाव-सा है। हम ऐसे विद्वान भी नहीं हैं कि मूल प्राकृत ग्रन्थों का अर्थपरिवर्तन न करते हुए अक्षरशः अनुवाद कर सकें।

'है बहुत कुछ तो मिट गया, अवशिष्ट भी मिट जायगा,
हो जायगा वह नष्ट जो कर में हमारे आयगा! —

हे आदि जिनवर ! आपके ये शास्त्र छिदकर मिट रहे
निष्काम होकर फिर यहां हम हैं परस्पर लड़ रहे ! ॥१६१॥

हमारे मूल साहित्य का अधिकांश भाग तो नष्ट हो चुका है और जो कुछ अंश बचा हुआ है, वह भी हमारी उपेक्षा के कारण नष्ट हो जायगा। हम कृमियों के करों में जो भी बच सकेगा वह नष्ट ही होगा। हे भगवान् आदिनाथ ! आपके ये कल्याणकारी शास्त्र इस प्रकार नष्ट होते जा रहे हैं। हम स्वच्छन्द होकर जीवनयापन कर रहे हैं और परस्पर लड़ रहे हैं।

भण्डार जयसलमेर, पाटण के हमारे देख्य हैं
कृमि, कीट दीमक खा रहे हैं हाय ! यह भी देख्य हैं।
मुद्रित कराऐ आज हम यह भाव भी जगता नहीं !
भवितव्यता कैसी हमारी आज कुछ पड़ता नहीं ॥ १६२॥

जयसलमेर और पाटण के जैन ज्ञान भण्डार अति विपुल हैं। परन्तु दुःख है कि ऐसे महान और साहित्य के समृद्ध भण्डारों की सम्यक् व्यवस्था नहीं है। इन भंडारों में रक्खे हुये हस्तलिखित ग्रन्थों को हम प्रकाशित करावें यह भावना भी उत्पन्न नहीं होती। हे भगवान् ! हमारा भविष्य कैसा है ? कुछ समझ में भी नहीं आता है।

आगम—

हा ! तुच्छ चौदह* पूर्व जो हैं ज्ञान ! कब से हो गये !
हा ! कर्म प्राभृत शास्त्र वे कैसे मनोहर खो गये !

---
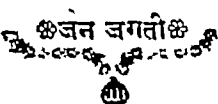
*चौदह पूर्वांग—१ उत्पाद २ अग्रायणीय ३ वीर्यप्रवाद ४ अस्तिनास्ति-

जब नाम उनका देखते हैं, हाय! रो पड़ते विभो!
कैसे मनोहर नाम हैं! सिद्धान्त होंगे क्या प्रभो? ॥१६३॥

जब हम नष्ट हुये चौदह पूर्व ग्रन्थों के नाम पढते हैं तो हमारा हृदय विदीर्ण हो उठता है। प्रत्येक पूर्वग्रंथ का नाम ही जब इतना सारगर्भित है तो उस ग्रन्थ में कैसे अपूर्व सुन्दर सिद्धान्त होंगे।

कितने हमारे शास्त्र थे हा! शेष आधे भी नहीं,
इन अर्ध शास्त्रों में कहे क्यों अंश पूरे भी नहीं।
द्वादशिक वत्सर विभुवर! रुग्ण पर श्रावण हुआ,
अवशिष्ट सब साहित्य का भी अन्त फिर पूरा हुआ ॥१६४॥

हमारा साहित्य इतना समृद्ध एवं विशाल था कि आज सहस्रों ग्रंथ खोकर वह आधा भी नहीं रहा है। मौर्य्य सम्राट चन्द्रगुप्त जैन के समय में १२ वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा और उस दुष्काल में रहा-सहा साहित्य भी नष्टप्रायः हो गया। रोगी का रोग श्रावणमाह में प्रवेश कर जिस प्रकार चरमता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार हमारा क्षीण होता हुआ साहित्य द्वादश वर्षीय दुष्काल को प्राप्त कर चरम विनाश को प्राप्त हो गया।

देवर्षिगणि आगमनिगम हैं नव्य विधि से लिख गये,
परिलुप्त होते जिन वचन को प्रकट फिर से कर गये।

प्रवाद' ५ ज्ञानप्रवाद ६ सत्यप्रवाद ७ आत्मप्रवाद ८ कर्मप्रवाद ९ प्रत्याख्यानप्रवाद १० विद्यानुप्रवाद ११ अवध्य १२ प्राणायु: १३ क्रियाविशाल १४ लोकबिंदुसार।

७

अनुवाद टीका भाष्य फिर पाकर समय अनुकूल पर
नव भव्य इस पर ग्रन्थ फिर विद्वान जन लिखते रहे ॥१६५॥

देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने जो कुछ ग्रन्थ या ग्रंथांश कंठस्थ रह गये थे, उनको लिपिबद्ध किया और इस प्रकार जैन साहित्य को पूर्ण नष्ट होने से बचाया। समय समय पर फिर इन ग्रन्थों पर टीकायें होती रहीं इनका अनुवाद और भाष्य होते रहे और अनेक विद्वानों ने इनका सार चुन-चुनकर अनेक नवीन ग्रन्थों की रचनायें कीं।

विश्रुत पुरातन वेद जिन साहित्य के ही अंश हैं
अब जिस वचन से हो भिन्न वे हो गये अपभ्रंश हैं।
वे भिन्न होकर भी अभी साहित्य हैं पूरा अहो!
जीवन जगाने के लिये हैं आज भी पूरा अहो! ॥१६६॥

जैन साहित्य के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों की रचना भगवान् आदिनाथ के गणधरों ने की थी। कालान्तर में वेदों में परिवर्तन होता चला आता रहा और फल यह हुआ कि आज वे जैन साहित्य से सर्वथा भिन्न प्रकार के प्रतीत होते हैं। इस प्रकार आज हमारा साहित्य भिन्न-भिन्न होता ही रहा फिर भी जो कुछ साहित्यांश अवशिष्ट है जीवन को पावन पवित्र बनाने के लिये तो समर्थ है।

बुधियाँ हमारे दर्शनों को देख विस्मित हो रहीं
इन दर्शनों से ज्ञान की विकसित कलायें हो रहीं
जब पूर्वजों ने दर्शनों में तत्त्व देखा है नया।
अन्यत्र ऐसा आज तक कोई किसी ने नहिं कहा ॥१६७॥

हमारे दर्शन शास्त्रों को पढ़कर आज संसार के विद्वान आश्चर्य करते हैं। इन दर्शन शास्त्रों में जिन तत्त्वों का जिस प्रकार का विवेचन, व्याख्यान है, उन तत्त्वों का वैसा विवेचन-व्याख्यान ससार में अन्य किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलेगा।

सिद्धान्त ऐसे जटिल हैं, हम समझ भी सकते नहीं,
इस हेतु तो इनकी उपेक्षा अज्ञ हम करते नहीं ?
सिद्धान्त जिन सिद्धांत-से पाश्चात्य स्थिर हैं कर रहे,
वे देख लो, हैं जीवशोधन तरु लता में कर रहे ॥१६८॥

हमारे आगमों के सिद्धान्त ऐसे जटिल हैं कि हम उनको सहज समझ नहीं सकते। संभव है हमारी यही अज्ञानता उनके प्रति हमारी अवहेलना का कारण हो। पच्छिम प्रदेशों के विद्वान अब वे सिद्धान्त स्थिर कर रहे हैं जो युगों पूर्व निश्चित कर चुके हैं। वृक्ष और लताओं में वे पहिले प्राण नहीं मानते थे, अब वे इनमें प्राणों का होना सिद्ध कर रहे हैं।

यह मत अहिंसावाद का शिव शान्ति का सन्देश है,
हर ग्रन्थ को तुम देखलो, उसमें यही आदेश है।
हम कह चुके थे ये कभी से पूर्व लक्षों वर्ष ही,
है कर रहा उपदेश फिर भी आज भारत वर्ष ही ॥१६९॥

आप हमारे प्रत्येक ग्रन्थ का, मनन कीजिये। प्रत्येक ग्रन्थ में आपको हर स्थल पर वही आदेश मिलेगा कि विश्व व्यापी शान्ति की स्थापना करने के लिये अहिंसात्मक आचरण व्यवहार का सर्वत्र एक-सा प्रचार होना अनिवार्य है। लाखों

जब पूर्व भी हमने संसार को यही उपदेश दिया आज भी भारतवर्ष के महापुरुष महात्मा गांधी यही उपदेश पुनः संसार को दे रहे हैं।

अंग—

साहित्य कितना उच्च है ? तुम अंग पढ़कर देखलो
आचार का, व्यवहार का सब मर्म इनमें देखलो।
व्रत सत्य संयम शील का उपदेश इनमें है भरा
उपयोगकर्ते ही कद प्रयोग-कथा विवेचन है करा।॥१२७॥

जब आप हमारे अंगशास्त्रों को पढ़ेंगे और उनमें आचार पर, व्यवहार पर तप व्रत संयम शील आदि धर्मतत्त्वों पर जब हमारा विवेचन, व्याख्यान पढ़ेंगे तो आप मंत्रमुग्ध हो जायगे और कहेंगे कि कितना उत्तम जैनों का साहित्य है।

तुम अन्य आचारांग से कुछ खोज कर तो दो बता;
सूत्रोत्तराध्ययन हम इसे बाद में तुमको बता।
अनुयोग नन्दीसूत्र का इतिहास तुमको खोल न
ये मुक्ति-माणिक-रत्न-भृत हैं आपको अनमोल हैं॥१२८॥

सूत्रोत्तराध्ययन की चर्चा को तो अभी छोड़ देते हैं। आप कृपा करके आचारांगसूत्र की समानता का अन्य ग्रन्थ तो

अंग—१ आचार २ सूत्रकृत ३ स्थान ४ समवाय ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति ६ ज्ञाताधर्मकथाः ७ उपासकदशाः ८ अन्तकृद्दशाः ९ अनुत्तरोपपातिकदशाः १० प्रश्नव्याकरणानि ११ विपाकसूत्र १२ दृष्टिवाद (लुप्त हो गया)।

शोध करके बतलाइये। अनुयोग और नन्दीसूत्र को आप पढ़कर और उनमें बताये हुये मार्ग का अनुशरण कर आप मोक्ष के द्वार में प्रवेश कर सकते हैं। ये सर्व सूत्र कल्याणकारी, सुखद एवं सुन्दर भावों से भरे पड़े हैं, हम इनका वाचन आपके लिये निष्शुल्क कर देते हैं।

उपाङ्ग –

सद्भाव कहते हैं किन्हें ? क्या रूप इनका सत्य है ?
तप, दान, ब्रह्माचार क्या हैं ? क्या अहिंसा कृत्य है ?
अपवर्ग, ग्रह, नक्षत्र का यदि विशद वर्णन चाहिये।
तब द्वादशोपांग तुमको आद्यन्त पढ़ने चाहिए ॥१७२॥

आपको हमारे उपांगशास्त्रों में सद्भावों के सत्य स्वरूप पर, तप, दान, शील और अहिंसा पर विस्तृत विवेचनात्मक व्याख्यान और सौरजगत का पूर्ण सुन्दर वर्णन मिलेगा। आपको हमारे १२ उपांग अवश्य पढ़ना ही चाहिये।

पयन्ना—

ये दश पयन्ना ग्रंथ तुमने आज तक देखे नहीं,
जिनराज, त्यागी, सिद्ध के क्या रूप हैं, पेखे नहीं,

उपांग—१ औपपातिक २ राजप्रश्नीय ३ जीवाभिगम ४ प्रज्ञापना ५ सूर्यप्रज्ञाप्ति ६ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ७ चन्द्रप्रज्ञप्ति ८ निरयावलिका ९ कल्पावतंसिका १० पुष्पिका ११ पुष्पिचूलिका १२ वृष्णिदशा।

पयन्ना—१ चतुश्शरण २ आतुरप्रत्याख्यान ३ भक्तपरिज्ञा ४ संस्तार

अनुवाद—

इस ग्रंथ 'गोमठ्सार' के सम ग्रन्थ दूजा है नहीं
अतिरिक्त इसके मोक्षपथ का परम दूजा है नहीं।
श्रुतिवेद गीतामन्त्र के सब सार इसमें भर गये;
सम्पूर्ण मानव धर्म के सिद्धान्त इसमें भर गये ॥१॥

जैन धर्म साहित्य में गोमठ्सार ग्रन्थ एक अमूल्य रत्न है। सर्व धर्म सम्प्रदाय इसका अति मान करते हैं। श्रुति वेद और गीता जिस मानव धर्म का उपदेश करते हैं और मोक्षप्राप्ति का जो साधन बतलाते हैं वे सब बातें इस एक ग्रंथ के पठन-मनन से प्राप्त हो सकती हैं।

नवतत्त्व दर्शाइये जग का एक उत्तम ग्रन्थ है
इस ग्रन्थ में नव तत्त्व जग के बहु गम निमग्न हैं।
यदि सूत्र 'तत्त्वार्थाधिगम' तुमने न देखा हो कभी
तुम मनुज नहीं पर मूढ़ हो विद्वान होकर भी अभी ॥२॥

जैन साहित्य का नवतत्त्व ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है जीव, अजीव आदि नव तत्त्वों का इसमें विशद वर्णन है। वह विद्वान ही एवं मुमुक्षु ही कैसा अगर उसने तत्त्वार्थाधिगम सूत्र का अध्ययन नहीं किया हो। ये दोनों ग्रंथ भारत के दर्शनग्रन्थों में ही नहीं संसार के दर्शनग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान रखते हैं।

जिन राजवाङ्मय कोष में ऐसे अनेकों ग्रन्थ हैं
आत्माभिधायक के ि य बस एक वे दिग्दर्शन हैं।

श्रुतिस्मृत—१ मंत्रीमत २ अनुवादकार मत।

भव भावना, आत्मानुशासन, पुष्पमाला लेखिये,
द्वादशकुलक, निर्वाणकलिका, भावसग्रह देखिये ॥१७६॥

जैन धर्म साहित्य में ऐसे अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, जिनके मनन, अनुशीलन से हम आत्मा का चरम विकाश कर मोक्ष साधन कर सकते हैं।

न्याय—

हम सप्तभगीग्रन्थ का यों कर रहे अभिमान है,
उपहास के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है?
इस लोक के परलोक के सब मर्म इसमें हैं भरे,
यह पार्थमय ससार में आलोक स्वर्गिक है अरे। ॥१८०॥

हम सप्तभगीन्यायग्रन्थ को पाकर गौरव का अनुभव करते हैं। परन्तु ससार ने इसकी अधिकाश में अवहेलना ही की है। इस ग्रन्थ में लोकालोकों का रहस्योद्घाटन किया गया है। इस

भवभावना, पुष्पमाला—ये दोनो ग्रन्थ प्रसिद्ध विद्वान मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि कृत हैं। प्रथम उच्चकोटि का आध्यात्मिक ग्रथ एव द्वितीय धार्मिक व्याख्यानो, उपदेशो का प्रशस्त सग्रह है।

आत्मानुशासन—यह गुण भद्राचार्यकृत एक उत्तम श्रेणी का आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

द्वादशकुलक—यह प्रसिद्ध जिन वल्लभ कृत धार्मिक ग्रथ है।

निर्वाणकलिका—आचाय पादलिप्तसूरिकृत अमूल्य ग्रथ रत्न है।

भावसग्रह—देवसेनभट्टारक कृत यह भारतीय साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

ससार के सब साधुओं का एक सम्मेलन करो;
फिर त्याग किसका है अधिक, निष्पक्ष हो चर्चा करो।
इन छेदसूत्रों से इतर हर ग्रंथ की तुलना करो;
सिद्धान्त जिनका श्रेष्ठ हो, सब जन उन्हें स्वीकृत करें ॥१७५

एक अखिल जगतीय साधु सम्मेलन करके हम निष्पक्ष होकर यह शोधने का प्रयत्न करें कि इनमें वह कौन सा साधु वर्ग है जो त्याग में अन्य सर्व साधुवर्गों से अधिक है और साथ में ही हमारे इन छेदसूत्रों की अन्य साध्वाचार पर लिखे गये ग्रंथों से भी तुलना करें और फिर जिन ग्रंथों के सिद्धान्त अधिक महत्व के घोषित हो इनका पालन करने की सब प्रतिज्ञा करें।

चार मूल व दो चूलिका सूत्र—

चरवार सूत्रों में हमारे तत्त्व सारे आ गये,
जीवन, मरण भेद वर्णित चूलिका में आ गये।
वस सूत्र अगोपाग में कर्त्तव्य वर्णन आ गया,
इनमें विवेचन पूर्ण साङ्गोपाङ्ग जग का आ गया ॥१७६॥

चार मूल सूत्रों में सर्व धर्म तत्त्वों का विशेष परिचय है और चूलिका सूत्रों में जीवन और मृत्यु पर सविस्तार विवेचन व्याख्या है। अग और उपाग सूत्रों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार है। इस प्रकार हमारे ग्रन्थों में चराचर लोक का धार्मिक एव भौतिक दृष्टियों से सर्व प्रकार का वर्णन दिया हुआ है।

चार मूलसूत्र—१ उत्तराध्ययन २ आवश्यक ३ दशवैकालिक—४ पिंडनिर्युक्ति।

ससार के सब साधुओं का एक सम्मेलन करो,
फिर त्याग किसका है अधिक, निष्पक्ष हो चर्चा करो।
इन छेदसूत्रों से इतर हर ग्रंथ की तुलना करो,
सिद्धान्त जिनका श्रेष्ठ हो, सब जन उसे स्वीकृत करें ॥१७५

एक अखिल जगतीय साधु सम्मेलन करके हम निष्पक्ष होकर यह शोधने का प्रयत्न करें कि इनमें वह कौन सा साधु वर्ग है जो त्याग में अन्य सर्व साधुवर्गों से अधिक है और साथ में ही हमारे इन छेदसूत्रों की अन्य साध्वाधार पर लिखे गये ग्रंथों से भी तुलना करें और फिर जिन ग्रंथों के सिद्धान्त अधिक महत्व के घोषित हों उनका पालन करने की सब प्रतिज्ञा करें।

चार मूल व दो चूलिका सूत्र—

चरवार सूत्रों में हमारे तत्त्व सारे आ गये,
जीवन, मरण भेद वर्णित चूलिका में आ गये।
वस सूत्र अंगोपांग में कर्त्तव्य वर्णन आ गया,
इनमें विवेचन पूर्ण साङ्गोपाङ्ग जग का आ गया ॥१७६॥

चार मूल सूत्रों में सर्व धर्म तत्त्वों का विशेष परिचय है और चूलिका सूत्रों में जीवन और मृत्यु पर सविस्तार विवेचन व्याख्या है। अंग और उपांग सूत्रों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार है। इस प्रकार हमारे ग्रन्थों में चराचर लोक का धार्मिक एवं भौतिक दृष्टियों से सर्व प्रकार का वर्णन दिया हुआ है।

चार मूलसूत्र—१ उत्तराध्ययन २ आवश्यक ३ दशवैकालिक ४ पिंडनिर्युक्ति।

भगम ब—
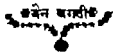
इस ग्रंथ 'गोमठसार' के सम ग्रन्थ दूजा है नहीं
अतिरिक्त इसके मोक्षपद का धरम दूजा है नहीं।
म तिवेद गीताग्रन्थ के सब सार इसमें भर गये
सम्पूर्ण मानव धम के सिद्धान्त इसमें भर गये ॥(१०४)

जैन धम साहित्य में गोमठसार ग्रन्थ एक अमूल्य रत्न है। सब धम सम्प्रदाय इसको अति मान करते हैं। श्रुति धर और गीता जिस मानव धम का उपदेश करते हैं और मोक्षप्राप्ति का जो साधन बतलाते हैं वे सब बातें इस एक ग्रंथ के पठन-मनन से प्राप्त हो सकती हैं।

'नवतत्त्व' रहस्यादिक आग का एक सत्तम ग्रन्थ है
इस ग्रन्थ में नव तत्त्व आग के कह गये निगम्य हैं।
यदि सूत्र 'सत्त्वाधिगम' तुमने न देखा हो कभी
तुम मनुज नहीं अर मूक हो विद्वान होकर भी अभी॥(१०५)

जैन साहित्य का नवतत्त्व ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है आस्रव संवर आदि नव तत्त्वों का इसमें विशद वर्णन है। वह विद्वान ही एवं मुमुक्षु ही कैसा अगर उसने 'सत्त्वाधिगम सूत्र' का अध्ययन नहीं किया हो। ये दोनों ग्रंथ भारत के दर्शनग्रन्थों में ही नहीं संसार के दर्शनग्रन्थों में सर्वोच्च स्थान रखते हैं।

जिन राजवाङ्मय कोष में ऐसे अनेकों ग्रन्थ हैं
आत्माभिलाषक के लिये बस एक वे शिवपंथ हैं। —

दा भूमिकाग्रन्थ—१ नंदीसूत्र २ अनुयोगद्वार सूत्र।

भव भावना, आत्मानुशासन, पुष्पमाला लेखिये,
द्वादशकुलक, निर्वाणकलिका, भावसंग्रह देखिये ॥१७९॥

जैन धर्म साहित्य में ऐसे अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं, जिनके मनन, अनुशीलन से हम आत्मा का चरम विकाश कर मोक्ष साधन कर सकते हैं।

न्याय—

हम सप्तभंगीग्रन्थ का यों कर रहे अभिमान हैं,
उपहास के अतिरिक्त जग ने क्या किया सम्मान है?
इस लोक के परलोक के सब मर्म इसमें हैं भरे,
यह पार्थमय संसार में आलोक स्वर्गिक है अरे। ॥१८०॥

हम सप्तभंगीन्यायग्रन्थ को पाकर गौरव का अनुभव करते हैं। परन्तु संसार ने इसकी अधिकांश में अवहेलना ही की है। इस ग्रन्थ में लोकालोकों का रहस्योद्घाटन किया गया है। इस

भवभावना, पुष्पमाला—ये दोनों ग्रन्थ प्रसिद्ध विद्वान मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि कृत हैं। प्रथम उच्चकोटि का आध्यात्मिक ग्रन्थ एवं द्वितीय धार्मिक उपाख्यानों, उपदेशों का प्रशस्त संग्रह है।

आत्मानुशासन—यह गुण भद्राचार्यकृत एक उत्तम श्रेणी का आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

द्वादशकुलक—यह प्रसिद्ध जिन वल्लभ कृत धार्मिक ग्रंथ है।

निर्वाणकलिका—आचार्य पादलिप्तसूरिकृत अमूल्य ग्रंथ रत्न है।

भावसंग्रह—देवसेनभट्टारक कृत यह भारतीय साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

रचना*पुराणों की कहो कितनी मनोहर गम्य है।
अर्न्तजगत, ससार का लेखा यहाँ पर रम्य है।
इतिहास, आगम, नरचरित इनको सभी हम कह सकें,
सद्‌चित्र इनको भूत भारतवर्ष के हम कह सकें ॥१८३॥

हमारे पुराणों की रचना वडी ही मनोहर एवं सुबोध है। इनमें सासारिक आभ्यतर एव वाह्य तर विषयों का अच्छा वर्णन है। ये पुराण भारतवर्ष के अतीत के विशद चित्र हैं, इतिहास हैं, धार्मिक ग्रथ हैं और महापुरुषों के आदर्श जीवन चरित्र हैं।

चरित्र—

जीवन चरित्रों की कमी भी है न कुछ हमको यहाँ,
हो श्रेष्ठ पुरुषों की कमी इनकी कमी तब हो यहाँ।
जीवन, कथानक, रास मे साहित्यगृह भरपूर हैं,
हमको दिखाने के लिये पथ तिमिर में ये सूर हैं ॥१८४॥

हमारे यहाँ अगर महापुरुषो की कमी हो तो जीवनचरित्रों की भी कमी होवें। हमारे साहित्य भण्डार रासों से, जीवनचरित्रों एक कथाग्रन्थों से भरे पडे हैं। अन्धकारपूर्ण पथ में वे हमको प्रकाश देने वाले सूर्य हैं।

अवकाश तुमको है नही, फिर भी हा ! हो नहीं कभी,
पर मात्र कहने से हमारे तनिक तो पढलो अभी।

---

*पुराण—आदिपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, हरिवशपुराण, उत्तरपुराण, महावीरपुराण, शातिनाथपुराण, चामुण्डरायपुराण, आदि उच्चकोटि के १३ पुराण हैं।

> त्रयषष्ठ शलाका चरित मौलिक अभिधा चिन्तामणि ग्रंथ हैं
> पौराण रामायण महाभारत व गीता ग्रंथ हैं ॥१८२॥

यहाँ तो आप को इस समय ही अवकाश है और नहीं संभवतः फिर कभी मिलेगा लेकिन हमारी प्रार्थना स्वीकार करके आप हमारे त्रयषष्ठ शलाका चरित्र को जरूर पढ़ें। इस एक ही ग्रन्थ में सब पुराणों का, तुलसीकृत रामचरितमानस का, वेदव्यासकृत महाभारत का और कृष्ण की गीता का सम्पूर्ण रहस्य मिल जायगा।

नीति—

> सब नीतियों का मर्म चाहो नीति अर्हन् देखलो
> मनुनीति-सा ही सुलभ इसमें नीति वचन देखलो।
> यही अनमूषा फौजदारी हिन्दवासियों का
> कानून सागर का यही कानून कर का न्याय था ॥१८३॥

श्री हेमचन्द्राचार्यकृत अर्हन्नीति को पढ़िये। इसमें मनुनीति का सा ही वर्णन किया गया है। गुर्जरराजपति सम्राट् कुमारपाल के राज्य का यही प्रमुख विधान ग्रंथ था। न्यायनिर्णय कर कृषी कर ईरशाद आदि सब इसी के विधानों के आधार पर निश्चित किये जाते थे तथा न्यायाधिकरण का भी यही प्रमुख विधानग्रंथ था।

> जिनराज मुनि आचार्य को अब याद कर सकते नहीं
> ऐसी दशा में आत्मचेतन क्या कठिन बनते नहीं ?

धर्माभ्युदय, विक्रान्त कौरव, मैथिली कल्याण-से,
फिर भी यहाँ उपलब्ध हैं नाटक मनोहर प्राण ने ॥१८७॥

जैन कथानक को लेकर नाटक की रचना करना बड़ा कठिन है। क्योंकि तीर्थंकर, आचार्य एवं साधु का स्वरूप पात्र धारण नहीं कर सकते और ऐसी कोई घटना नहीं, जिसमें कहीं भी इन तीनों का या तीनों में से एक का भाव न हो। ऐसे विकट प्रतिबंध होने पर भी उदय प्रभसूरिकृत महाकाव्य और नाटक और विक्रान्त कौरव और मैथिली कल्याण जैसे मनोहर भावमयी नाटक विद्यमान हैं।

चंपू—

नाटक जहाँ हमने लिखे, चंपू लिखे थे साथ में,
साहित्य का यह अंग है, कैसे न रखते हाथ में ?
पुरुदेव, चंपू, यशतिलक' उत्कृष्ट हैं सब भांति से,
जिनवाक्कलन सम्पन्न है साहित्यकी सब जातिसे। ॥१८८॥

चंपू साहित्य अपना एक स्थान रखता है। नाटकों की रचना के साथ ही साथ हमने चंपू भी लिखे। पुरुदेव चंपू एवं सोमदेवकृत यशतिलक चंपू उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। जैन साहित्य सब ही प्रकार के साहित्य ग्रन्थों से अलंकृत एवं भरपूरा है।

व्याकरण—

छोटे-बड़े चालीस लगभग व्याकरण के ग्रन्थ हैं,
'साहित्य वर्णाकीर्ण गिरे के ये सभी हरिपथ हैं।

सम्यकतया सबों भाँति ये साहित्य की नवका रहे
साहित्य सर के पार हमको यान ये पहुँचा रहे ॥

जैन साहित्य में चालीस के लगभग व्याकरण ग्रन्थ होंगे। व्याकरण ग्रंथों का स्थान प्रत्येक साहित्य में प्रमुख होता है। क्योंकि बिना व्याकरण का ज्ञान हुए कभी भी सत्य अर्थ समझ में आ ही नहीं सकता अतः व्याकरण ग्रन्थ साहित्य पर्वत के सोपान हैं साहित्य सरोवर से पार कराने वाले ये जलयान हैं।

यह शाकटायन व्याकरण सबसे अधिक प्राचीन है
श्री हेमचन्द्राचार्यकृत व्याकरण किसका हीन है।
व्युत्पत्ति से हर शब्द की उत्पत्ति हमने है करी
संस्कृतसुता है मातृभाषा आदि प्राकृत है खरी ॥१८॥

हमारा शाकटायन व्याकरण एक प्राचीनतम व्याकरण है और हेमचन्द्राचार्य का व्याकरण भी अद्वितीय है। हमारे यहाँ शब्दों की उत्पत्ति एक विशेष उत्पत्ति विधि से की गई है। हमारी प्राकृत भाषा निश्चय से संस्कृत भाषा की माता है।

शाकटायनव्याकरण—महर्षि शाकटायन वैयाकरण शिरोमणि हैं जो पाणिनि से भी पूर्व हो चुके हैं। दुनिया इन्हें अब तक वैदिक विद्वान मानती थी लेकिन अब यह इस प्रकार सिद्ध हो गया कि शाकटायन जैन थे। मद्रास प्रान्त के प्रोफेसर श्री गुस्ताव आपर्ट शाकटायन को जैन मानते हैं और पाणिनि से पूर्व इनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। प्रसिद्ध ग्रन्थकार कोलब्रुक का भी ऐसा ही मंतव्य है।

कोष—

गुरु हेमकृत उस कोष की भी जटिलता तो देखिये
प्रत्येक अक्षर के यहाँ पर अर्थ नाना पेखिये।
राजेन्द्रसूरीश्वररचित 'अभिधान' नामाकोष से—
है कौन विश्रुत कोष जग में ? शोध लो मतोष से ॥१६६॥

हेमचन्द्रकृत प्रसिद्ध अनेकार्थ शब्द कोष की आप जटिलता देखकर स्तब्ध रह जावेंगे। राजेन्द्रसूरि कृत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के समान संसार में कोई कोष कोटि प्रयत्न करिये, नहीं मिलेगा।

छंदोऽलंकार—

काव्यानुशासन, नाट्यदर्पणवृत्ति कैसे ग्रन्थ हैं,
साहित्य पुष्पित हो रहा कर प्राप्त ऐसे ग्रंथ हैं।
अवयव सभी साहित्य के तुमको यहाँ मिल जायेंगे,
आवाल* जिन साहित्य को साहित्य तरु का पायेंगे ॥१६७॥

हमारा जैन साहित्य सर्वांग सुन्दर है। इसमें सभी प्रकार के ग्रंथ विद्यमान हैं। काव्यानुशासन और नाट्यदर्पणवृत्ति छंद और अलंकार के अद्वितीय ग्रन्थ हैं। यह कथन अतिशय नहीं कि साहित्यवृक्ष का आवालस्थल जैन साहित्य है।

महाकाव्य—

उत्कृष्ट काव्यों से भरा साहित्य भूषित जग रहा,
ज्यों पद्मसंकुल रम्य सरवर हो मनोहर लग रहा।

*आवाल—जिस स्थान से वृक्ष पनपता अपना साथ प्राप्त करता है, उसको आवाल स्थल कहते हैं।

हैं नाद के रघुवंश संभव, मेघदूतस्यादि के
कथा शास्त्र परिचय दें यहाँ 'परिशिष्टपर्व'स्यादि के ॥११३॥

जिस प्रकार कमलों से पूर्ण सरोवर रम्य लगता है उसी प्रकार जैन साहित्य उत्कृष्ट महाकाव्यों से पूर्ण सुशोभित हो रहा है। परिशिष्ट पर्व आदि रघुवंश एवं मेघदूत महाकाव्यों की समता रखने वाले महाकाव्य जैन साहित्य में विद्यमान हैं। उनका यहां क्या परिचय दे सकते हैं।

ज्योतिष-शिल्प—

श्री जैनज्योतिष, शुभम दीपक से न ज्योतिष ग्रंथ हैं
ज्योतिष करण्डक विरच ज्योतिष में अनूपम ग्रन्थ है।
विज्ञान ज्योतिष का भला कैसे न आविष्कार हो
जब जन्म मुहूर्त का यहां सेरम्य यहाँ व्यापार हो ॥११४॥

ज्योतिष साहित्य में श्री जैनज्योतिष ग्रन्थ शुभम दीपक और ज्योतिषकरण्डक ग्रन्थ का प्रमुख स्थान है। हमारे यहाँ यह तिथि पल घंट और दिवस की नोंध करने की परिपाटी सदा से चली आ रही है जिसमें हमने कोई कार्य आरम्भ किया और उसका सम्पादन व अन्त सफलता एवं विफलता पूर्वक हुआ हो। इस प्रकार की लेखन परिपाटी से शुभ अशुभ घड़ी दिवसों का एक विस्तृत लेखा तैयार हो गया। इससे प्रेरित होकर फिर हमने ज्योतिष विज्ञान का पूर्ण आविष्कार किया।

मंत्रतन्त्र—

यह मंत्रबल तो बस हमारा देखने ही योग्य था
मंत्रबल से सुरभवन में गमन हमारा योग्य था।
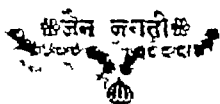
अतएव विद्यारत्न, अद्भुतसिद्धि पुस्तक लेख्य है,
आकाशगामी पुस्तिका सब भांति से समपेख्य है ॥१६५॥

हमारी यत्रशक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। मत्रबल से हम देवलोकों में भ्रमण करते थे। विद्य रत्नमहानिधि, अद्भुतसिद्धि विद्या मंत्र और आकाशगामिनी विद्याग्रथ प्रसिद्ध मत्रग्रन्थ हैं

हाँ, ग्रन्थ चाहे आपको वैसे कहीं मिल जायेंगे,
पर भाव, भाषा में अधिक फल वे न इनसे पायेंगे।
नख-शिखविवेचन जिस तरह हर तत्त्व का इनमें हुआ,
वैसा न वर्णन आज तक अन्यत्र ग्रथों में हुआ ॥१६६॥

वैसे तो ग्रथ आपको सर्वत्र ही मिलेंगे, परन्तु, उनमें न तो ऐसी भाव और भाषा ही होगी और न इस प्रकार पूर्ण और सर्वाङ्ग विवेचन ही होगा।

ऐसा न कोई है विषय, जिस पर न हमने हो लिखा,
जिस पर कलम थी चल गई, बाकी न फिर उसको रखा।
इतिहास, ज्योतिष, नय, निगम, छंदागमालंकार से,
साहित्य संकुल है हमारा, पूर्ण है रसचार से ॥१६७॥

हमने सर्व विषयों पर ग्रथ लिखे हैं और हर विषय का लेखन चरमांत तक किया है। हमारा साहित्य रसपरिपूर्ण है और इतिहास, ज्योतिष नीति, आगम, निगम, छंद, अलंकारादि सर्व प्रकार के विषयों के ग्रथ उसमें विद्यमान हैं।

जितने हमारे ग्रन्थ हैं, सबको गिनाने यदि लगें,
संक्षेप में प्रत्येक का कहने विषय कुछ यदि लगें।
८

ऐसे यह कितने महा पुस्तक मय हो जायेंगे
नामावली विषयावली के ग्रन्थ शत हो जायेंगे ॥११४॥

अगर हमारे सब ग्रन्थों की गणना की जाय और साथ में उनके विषयों का भी गणनाक्रम से परिचय दिया जाय तो इस पुस्तक जैसे १ सौ ग्रन्थ बनेंगे।

कला-कौशल

शिल्पी कलाएँ थीं हमारी पूर्ण हम सबका गुरु
दरबारविद्याविज्ञ पूर्णज्ञ पार जिनका था शुरु।
चौसठकलाविद थे पुरुष बहत्तर कलाविद नारियाँ
कौशलकला में दक्षिणी थी उस समय सुकुमारियाँ ॥११५॥

कलाओं का वर्णन जिसका पूर्ण ज्ञान हमारे चौदहविद्याओं के पूर्ण निष्णात पुरुषों ने प्राप्त किया था पूर्व किया का शुभ है। मनुष्य चौसठकला के ज्ञाता थे और स्त्रियाँ बहत्तरकलाओं में दक्ष थीं। ये कोमलांगी ललनायें देवियों के सदृश कला कौशल में दक्ष एवं निपुणा थीं।

शिल्पकला—

ये सब कलायें आज केवल पुस्तकों में सो गई।
जब वे कलापति मर गये सति वे कलायें हो गई।
कुछ खण्डहरों में रह गई कुछ दब गई भूगर्भ में।
विस्मय चकित होकर यहाँ रह जाय विज्ञ दर्शये ॥२०॥

आज इन कलाओं का केवल मात्र वर्णन पुस्तकों में ही रह

गया है। या कलापतियों की मृत्यु पर ये सब भी मतियें हो गईं हैं कि जिनकी केवल कहानी मात्र रही है। कुछ कलाओं के चिह्न खण्डहरों में और कुछ कलाओं के दर्शन दलदल में फँसी पड़ी खण्डित वस्तुओं में मिलते हैं।

ये आपको भग्नाश, ऐसो दूर से हो दीखते।
हा! हत! जिनमें चील कौवे निडर होकर चीखते।
जो अभ्रभेदी थे कभी, वे आज रजमय हो गये,
आख्यान माण्डव, लक्ष्मणी के हाय! विस्मृत हो गये ॥२०१

माण्डवगढ़—यह नगर अति प्राचीन है और मालवा में आया है। इसके अनेक नाम हैं—मण्डपाचल, मण्डपदुर्ग, श्रीमंडप, मंडगिरि आदि। वर्त्तमान में यह मांडू के नाम से प्रसिद्ध है। मुसलमान शासकों के समय में यह नगर बड़ा अभिराम था। इसमें तीन लाख तो मात्र जैनियों के ही घर थे। इसमें छोटे बड़े ८३ सौधशिखरी जैन-मन्दिर थे। प्रसिद्ध विद्वान मंडन इसी नगर के रहने वाले थे। विस्तृत वर्णन के लिये देखो 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भाग चतुर्थ पृ० १६६।

लक्ष्मणी-तीर्थ—यह तीर्थ अलिराजपुर स्टेट में आया है। इसके नाम से पता चलता है कि यह लक्ष्मण के समय में अगर नहीं था तो भी लक्ष्मण के नाम के पीछे अवश्य इसकी स्थापना हुई है। वैसे इसके भूगर्भ में से निकलती हुई वस्तुओं के अवलोकन से भी यह अति प्राचीन सिद्ध होता है इस तीर्थ के स्थल को ज्यों-ज्यों खोदा जाता है, अनेक अद्भुत-अद्भुत वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। देखो श्री० य० वि० दि० भा० ४ पृ० २३०।

सम्मेत शेखर के अभी भी चैत्यगृह सब हैं नये।
वर्षा सहस्रों झेलकर यों रह सके कितने नये ? ॥२०२॥

आबू, गिरिनार, तारंगा, शत्रुंजय और सम्मेत शेखर पर बने हुये मंदिर आज भी अभी बने हुए से नवीन प्रतीत होते हैं। कोई बतलावे तो सहस्रों वर्षाकाल के आक्रमण यों सहन कर कितने भवन अब तक अपना अस्तित्व स्थिर रख सके हैं ?

उदयाद्रि का औ खण्डगिरि का नाम तो होगा सुना
कैसे कलामय स्थान हैं, यह भी गया होगा सुना।

दर्शनीय एवं शिल्प-कला का ज्वलंत प्रमाण है।

सिद्ध गिरि—इसे शत्रुंजय और सिद्धाचल भी कहते हैं। पालीताणा नगर इसकी उपत्यका में निवसित है। इस तीर्थ की जैन-शास्त्र में महिम महिमा है। अनंत कोटि साधु एवं केवली इस पर मोक्ष गये हैं। इसकी मंदिरावलि देखते ही ऐसा प्रतीत होता है, मानों अमरपुरी साक्षात् मर्त्यलोक में अवतरित हो गई हो। इस तीर्थ की छटा को देख कर यूरोपीय विद्वान भी कह पड़ते हैं—'ये स्मारक देव विनिर्मित हैं, मानवी प्रयत्नों से नहीं बने हैं'—देखो उ० हि० मा० जै० धर्म पृ० २१६।

सम्मेतशेखर—यह तीर्थ अति प्राचीन है। इसकी प्राचीनता का अभी कुछ भी पता नहीं चला है। इस पर्वत पर २० तीर्थंकर मोक्ष गये हैं। यह तीर्थ बंगाल में आया है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्रगुप्त, सम्राट सम्प्रति, कुमारपाल एवं खारवेल ने करवाया है। इस तीर्थ के सब ही मंदिर, स्तूप शिल्पकला के उच्चकोटि के नमूने हैं।

उदयगिरि—ओरिसा की उदयगिरि—इस नाम से यह गिरि प्रसिद्ध है। इस गिरि में रानी और गणेश गुफायें शिल्प कला की

एलोर ऐजेंटा गुफायें ऐतिहासिक चीज हैं
ये कलाकला के कोष हैं ये सुरविनिर्मित चीज हैं ॥१०३॥

उदयगिरि खण्डगिरि की गुफायें तथा एलोरा एवं अजेंटा की गुफायें अपनी शिल्पकला एवं चित्रकारी के लिये विश्व भर में अति प्रसिद्ध हैं। ये हस्तकला के अद्वितीय आदर्श हैं। आश्चर्य होता है इनका भी से समझे योग्य ये गुफायें साधारण मानवों के करों से कैसे बनी होंगी।

दृष्टि से अत्यधिक प्रसिद्ध है। दूसरी इसी गिरि में एक हाथी-गुफा भी है। यह गुफा प्राकृतिक है। डा० फर्ग्युसन लिखता है कि उदयगिरि की गुफाओं की भव्यता, शिल्प की लाक्षणिकता, और स्थापत्य की विचित्रता इनकी प्राचीनता प्रमाणित करती है। देखो उ० हि० भा० जैन धर्म पृष्ठ २११। ये गुफायें कलिंगाधिपति सम्राट खारवेल की बनवायी हुई हैं। इनमें ४८ गुफायें हैं।

खण्डगिरि—उदयगिरि की गुफाओं के पश्चिम में खण्डगिरि की १६ गुफायें हैं। ये भी सम्राट खारवेल की ही बनवायी हुई हैं। शिल्प की दृष्टि से इनका स्थान भी बहुत ऊँचा है। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ एवं शिल्प विशारद श्रीयुत मनमोहन चक्रवर्ती, म्योर, परस्यूषन स्मिथ, कुमार स्वामी आदि इन्हें जैन गुफा स्वीकार करते हैं। देखो उ० हि० भा० जैन धर्म पृ० २१२।

एलोरा-अजन्ता गुफायें—अब तक पुरातत्त्वज्ञ इन गुफाओं को बौद्ध गुफायें एक स्वर से बताते आये हैं लेकिन अब ज्यों-ज्यों पुरातत्त्व वैज्ञानिक शोध करते जाते हैं त्यों त्यों अब इनके प्राक्कथन

मथुरा, बनारस, ओरिसा की वह न शोभा है कहाँ,
पावापुरी, अमरावती भी रम्य वैसी हैं नहीं।
पर चिह्न इनमें शिल्प के जो भी पुराने शेष हैं,
हा! गतहुई उस भारती के अस्थि के अवशेष हैं ॥२०४॥

में भ्रम होता है और कतिपय शिल्प-विशारद तो यह भी मानने लग गये हैं कि ये गुफायें भी जैन गुफायें हैं।

मथुरा—वर्तमान मथुरा नगर से ३-४ मील के अन्तर पर अभी कंकाली-टीला का पता लगा है और उसकी खुदाई भी हुई है। इस टीले में से ६० सन के पूर्व की जैन-मूर्तियें, आयागपट्ट, स्तूपखंड निकले हैं। महाक्षत्रपों के राज्य में मथुरा की बड़ी उन्नति थी। क्षत्रप सब जैन-धर्मी थे। देखो 'प्राचीन भारतवर्ष' भाग २ रा, पृ० २४५ त्रिभुवनदास लहेरचन्द्र रचित।

बनारस—यह २३ वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की राजधानी थी। उस समय के कितने ही शिल्प-कला के नमूने आज भी भूगर्भ में से देखने को मिलते हैं और यह ऐतिहासिक रूप से भी सिद्ध हो चुका है कि भगवान पार्श्वनाथ की राजधानी काशी (बनारस) थी।

ओरिसा—यह सम्राट महामेघवाहन खारवेल के समय कलिंग राज्यान्तर्गत एक प्रान्त था। इसकी उदयगिरि, खण्डगिरि की गुफायें उस समय के जैन-धर्म की समृद्धि की आज भी पूरी २ झलक देती हैं। देखो उ० हि० भा० जैन धर्म, पृ० २२२।

पावापुरी—यह जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। यहाँ २४ वें तीर्थंकर प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ है। उनका यहाँ स्मारक मंदिर है। वह अति प्राचीन है और शिल्प-कला का उत्कृष्ट नमूना है।

मथुरा बनारस कारिका मायापुरी अमरावती की आज वह वास्मस्थता नहीं है। फिर भी प्राचीन शिल्प के कुछ नमूने मिलते हैं और मिलते रहते हैं जो उस विगत हुई वास्मस्थता का परिचय देते रहते हैं।

> यह एक प्रस्तर का बना बावीस गज का स्तम्भ है
> यह नर कला तो है नहीं देवकला का रूप है।
> इसमें बड़ा संसार में है किंतु कोई भी नहीं
> अनुकूल इसके एक दिन जिन धर्म की सीमा रही (१२०२)

मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोल में एक जैन मूर्ति ५७ फीट ऊंची है [इस मूर्ति की प्रतिष्ठा १० वीं शती में हुई है। इससे हमारी शिल्प-कला की उत्कृष्टता का तो पता लगता ही है लेकिन साथ में यह भी विचारने को मिलता है कि जैन-धर्म प्राचीन काल में दक्षिणी भारतवर्ष में भी सम्यक् रूप से फैला हुआ था। ऐसी ही एक जैन मूर्ति ५७ फीट ऊंची ग्वालियर राज्य में भी है। यह भी अति प्राचीन है। इनका भा ... भा ... का इतिहास

अमरावती—जैन इतिहास की दृष्टि से अमरावती एक प्रसिद्ध नगरी थी। परन्तु अभी तक अमरावती के ऐतिहासिक स्थान का पता नहीं लगा है डा० स्मिथ अमरावती को मथुरा के पास बताते हैं। देखो ठ हि ... जैनतम पृष्ठ १२४। डा० त्रिभुवनदास लहेरचंद अपने इतिहास प्राचीन भारतवर्ष भाग ... पृ० १५१ पर लिखते हैं कि वर्तमान में जो अमरावती नगर है वह वह प्राचीन अमरावती नहीं है जिसका जैन इतिहास की दृष्टि से भारी महत्व है।

भाग २ रा० पृ० ३७३, ३७४ पर] इसको देखकर सहसा यही कहा जा सकता है कि यह कर्म मनुष्यों के हाथों सम्भव नहीं हो सकता, यह तो देवों का कर्म है। इससे ऊँची मूर्ति और कहीं भी संसार में नहीं मिलेगी। जिस प्रकार यह मूर्ति आकाश में बहुत ऊँचाई तक उठ कर सुदूर दूर की भूमि को अपने प्रभाव से अन्वित रखती है, इसी प्रकार एक समय जैनधर्म भी अपने प्रभाव से सुदूर प्रदेशों को आकर्षित करने वाला होगा।

हा खो गये भूगर्भ में लाखों नमूने शिल्प के।
जब भी मिलेंगे, सिद्ध होंगे पूर्व अगणित कल्प के।
कुछ खो गये, कुछ दूसरों ने छीन हमसे भी लिये
कुछ यवन अत्याचारियों ने नष्ट खण्डित भी किये ॥२०६॥

हमारी शिल्प कला के लाखों उज्ज्वल नमूने तो समय की क्रूरता से भूमि में समा गये, कुछ नष्ट हो गये, कुछ अन्य धर्मावलम्बियों ने अपहृत कर विकृत बना दिये और कुछ मुसलमान आक्रमणकारियों ने नष्ट भ्रष्ट कर डाले। फिर भी ज्यों ज्यों शोध गहरी की जावेगी, हमारे नष्ट प्राय, लुप्त, खण्डित चिह्न त्यों त्यों प्रकाश में अधिकाधिक आवेंगे और व अगणित वर्षों पूर्व के बने हुये सिद्ध होंगे।

कैसी कलामय थी भला यह शिल्प-कौशल की कला,
कैसे कलायुत दक्ष होंगी शिल्पशालाएँ भी भला।
जब इंच भर के शिल्प में भी मास लगता था अहो।
फिर वस्तु का भी मूल्य कितना सच भला होगा कहो ?॥२०७॥

मथुरा बनारस भारिसा, पावापुरी अमरावती की आज वह वास्तुकला नहीं है। फिर भी प्राचीन शिल्प के कुछ नमूने मिले हैं और मिलते रहते हैं जो उस बिगत हुई वास्तुकला का परिचय देते रहते हैं।

> यह एक प्रस्तर का बना बाईस गज का चस्व ह
> यह नर कला तो है नहीं देवीकला का रूप है।
> इसम बड़ा संसार में है चिन कोई भी नहीं
> अनुकूल इसके एक दिन जिन धर्म की सीमा रहा ॥२४॥

मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगोल म एक जैन मूर्ति ७२ फीट ऊँची है [इस मूर्ति की प्रतिष्ठा १ वीं शती में हुई है। इससे हमारी शिल्प-कला की उत्कृष्टता का तो पता लगता ही है लेकिन साथ में यह भी विचारने को मिलता है कि जैन-धर्म प्राचीन काल में दक्षिणी भारतवर्ष में भी समधिक रूप में फैला हुआ था। ऐसी ही एक जैन मूर्ति ४७ फीट ऊँची ग्वालियर राज्य में भी है। यह भी अति प्राचीन है। इसी प्रकार भारतवर्ष का इतिहास

अमरावती—जैन इतिहास की दृष्टि से अमरावती एक प्रसिद्ध नगरी थी। परन्तु अभी तक अमरावती के ऐतिहासिक स्थल का पता नहीं लगा है। डा. ... अमरावती को मथुरा के पास बताते हैं। देखो ... पृष्ठ १२५। डा. त्रिभुवनदास लहेरचंद अपने इतिहास 'प्राचीन भारतवर्ष' के प्र. भा. पृ. १५१ पर लिखते हैं कि वर्तमान में जो अमरावती नगर है वह वह प्राचीन अमरावती नहीं है जिसका जैन इतिहास की दृष्टि से भारी महत्व है।

आज के चित्रकार प्राचीन चित्रों की समता करने वाले चित्र चित्रित नहीं कर सकते। करें भी तो कहां से? यंत्रों ने इनका कौशल अपहृत कर लिया है। आप आज चलते हुये चित्र देख कर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं और अपने आप को भूल जाते हैं। आपके यहां किस उच्च कोटि के चित्र बनते थे यह आप को उस समय स्मृत नहीं हो आता है।

खलु चित्र प्रिय हम थे सभी, बिन चित्र गृह था ही नहीं
उन मंदिरों का चित्र धन हम कह सकें कुछ भी नहीं।
प्रत्यक्ष था या चित्र था, कुछ था पता चलता नहीं,
थे चित्र चलते, बोलते, भ्रम क्यों भला उठता नहीं?॥२१०॥

हमको चित्रों से बड़ा प्रेम था। बिना चित्र के कोई घर ही नहीं था। मन्दिरों में चित्रों का वैभव वर्णनातीत था। चित्र इतना सजीव होता था कि वह मूल है या चित्र, पहिचानने में भ्रम उत्पन्न हो जाता था। चित्र भी तो चलते और बोलते और संकेत करते थे, फिर शंका उत्पन्न हो, इसमें आश्चर्य ही कौनसा?

प्रेमी मनुज को प्रिय-प्रिया की याद जो होती नहीं,
यह चित्र कौशल की कला निःसृत कभी होती नहीं।
हम भक्त दृढ़ थे ईश के, परिवार में अनुराग था,
बढ़ता गया लाघव, यथा बढ़ता गया शुचि राग था॥२११॥

प्रेमी स्त्री एवं पुरुषों को अपने प्रेमी जनों की स्मृति अगर नहीं सताती तो चित्रकला का आविष्कार ही नहीं हुआ होता।

रसधार करुणा प्रेम की है। मूर्ति से बहती रहे,
वह भव्य भावोद्भाविनी तन, मन वचन हरती रहे ॥२१३॥

अगर हम मनोवैज्ञानिक नहीं होते तो हम मूर्ति पर कभी भी उन सर्व ईश्वरीय गुणों का भाव अंकन करने में सफल नहीं हुए होते और स्त्री और पुरुषों के हृदय में मूर्ति के प्रति कल्याण कारी भावनाएँ उत्पन्न करने में कभी भी कृतकार्य नहीं हुए होते। मूर्ति से करुणा और वात्सल्य का स्रोत बहता रहता है। यह सुन्दर एवं कल्याण कारी भावनाओं को जगाने वाली मूर्ति हमारा, तन मन और वचन हरण करती रहती है।

सब भांति भक्तों के लिये यह मूर्ति ही आधार है,
योगीजनों के तो लिये भगवान यह साकार है।
कितना रसद लगता हमें है चित्र अपने बंधु का,
फिर क्यों न सबको हो सुखद यह चित्र करुणासिंधु का ॥२१४॥

भक्तजनों का जीवन ही भगवान की मूर्ति पर निर्भर है और योगनिष्ठ जनों के लिये तो भगवान की मूर्ति ही सर्वस्व है। हमको अपने भ्राता का चित्र कितना प्रिय लगता है फिर आश्चर्य ही क्या अगर परम पिता करुणा के सागर परमेश्वर का चित्र आह्लादजनक लगता हो?

भगवान कायोत्सर्ग में कैसे लवण हैं लग रहे,
शिव भाव-सरवर चित्रतल पर क्या सुभग हैं जग रहे।
वर्षा सुधा की दर्शकों के ये हृदय पर कर रहे,
पाषाण-उर के भाव प्रस्तर भाव पकड़ कर रहे ॥२१५॥
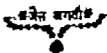
इस प्रभर क परम भक्त थे परिजनों क परम स्नेही थे। ज्यों २ हमारा राग और प्र म विकसित और पुष्ट होता गया, त्यों त्यों इस चित्रकला का अधिकाधिक सत्त्व विकास होता गया।

मूर्तिकला—

> करत न आविष्कार, यदि हम मूर्ति जैसी चीज का।
> मिलना कठिन होता अभी कुछ धर्म के भी बीज का।
> हो भाव व्याकुल मूर्ति में हैं पूजते भगवान को।
> यह मूर्ति है भगवान की यह शास्त्र है अज्ञान को ॥११३॥

मूर्ति क आविष्कार न धम की स्थापना एवं स्थायित्व में कितना योग दिया, अविदित नहीं है। यदि मूर्ति का आविष्कार नहीं हुआ होता तो आज अधिकांश धर्मों का बीज तक भी देखने को नहीं मिलता। हमारी आत्मायें भगवान के विरह से विह्वल होकर मूर्ति में भगवान क दर्शन करती हैं। पंडित शास्त्रों का पठन-मननकर भगवान क दर्शन कर सकते हैं उनके चरित्रों का अध्ययन कर सकते हैं और अपने चरित्र को उनके प्रणीत मार्ग क अनुसार बना सकते हैं। लेकिन अपठितों को शास्त्र इतने नीचे उपादेय नहीं है।

उनको तो भगवान की मूर्ति ही भगवान का भान और भगवान क चरित्रों का स्मरण करा सकती है। इस प्रकार अपठितों के लिये मूर्ति शास्त्र का काम करती है।

> हमको मनोविज्ञान का होता न जो सद्ज्ञान है।
> जिस भाव कोमल मूर्ति में क्या है कभी आसान रे?

संगीत कर्म ही गंधर्व नामक जाति का मुख्य कर्म था और इस गंधर्व जाति ने ही सर्व प्रथम संसार में संगीत विद्या का आविष्कार एवं प्रचार किया था। संगीत विद्या में से इसका कलात्मक रूप कुछ पलों के लिये अगर लुप्त हो जाय तो भारतभूमि नग्न सी कांतिहीन प्रतीत होगी।

संगीत बिन नाटक, सभा परिषद अलोनी दीखती,
हम देखते हैं तान पर झुलती मृगी शिर दोलती।
संगीत पर उन पूर्वजों ने ग्रंथ गहरे हैं लिखे;
संगीत जीवन मित्र है जग-चर-अचर का है सगे।।१८।।

जिस सभा, परिषद और नाटक में संगीत का न्यूनाधिक प्रदर्शन न हो वे सभा, परिषद् नाटक आकर्षण हीन ही होंगे। हमारे पूर्वजों ने संगीत विषय पर बड़े २ गहरे ग्रंथ लिखे हैं। क्या जड़ पदार्थ क्या प्राणी; सर्व के जीवन में जो मधुरता है वह संगीत ही का प्रभाव है।

जैन धर्म का विस्तार

यह जैनमत था विश्वमत माना हुआ संसार में—
हैं चिह्न ऐसे मिल रहे कुछ ठौर, कंदर गार में।
वत्सर अनन्ता पूर्व ही हम दिग्विजय थे कर चुके;
हा! बहुत करके चिह्न तो अब तक हमारे मर चुके!।।२१९।।

एक समय था जब यह जैन धर्म संसार भर में विश्व धर्म माना जाता था। गिरि, कन्दराओं एवं भूगर्भ में से अब शेष—
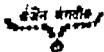
कायोत्सर्ग करते हुए भगवान की मूर्ति कितनी सुन्दर है और मूर्ति के अंग अंग पर कैसे कल्याणकारी भावों का दर्शन हो रहा है। दर्शक गणों की आत्माओं पर ये कल्याणकारी भाव अमृत की वर्षा करते हैं और पत्थर के सदृश कठोर हृदय के पत्थर के समान कठोर भावों को कोमल कमल के समान बनाते हैं।

संगीतकला—

संगीतमय जड़, जीव हैं संगीतमय सब लोक है
संगीत का तो मनुज तो क्या इन्द्र तक को शौक है।
अवहेलना हम इस कला की कर न सकते थे कभी
संगीत कीर्तन, नृत्य से विभु को रिझाते थे सभी।।२१४।।

क्या जड़ पदार्थ और क्या जीव सब की ध्वनि एवं स्वरों में कुछ न कुछ राग रहा हुआ है। समस्त संसार ही संगीत के प्रभाव से न्यूनाधिक मात्रा में ओतप्रोत है। मनुष्य को संगीत से अति प्रेम हो इसमें आश्चर्य ही क्या? देवताओं के स्वामी इन्द्र तक को संगीत अधिकतम प्रिय है। भजन स्तवन एवं नर्तन करके हम ईश्वर का गुणगान करते थे फिर भला संगीत कला का मान अधिक बढ़ा हुआ क्यों नहीं होता।

गंधर्व सारी जाति का संगीत ही व्यापार था
इसने किया जग में प्रथम संगीत-आविष्कार था।
यदि आज पल भर के लिये यह स्वर-कला अवसन्न हो;
हत कांति बस हो आदमी यह भूमि भग्न हो।।२१५।।

थे राम रावण मे हमारे धर्म के नायक अहो!
रावण सरीखे भक्त क्या जन्मे कहीं हैं कुछ कहो?
सब यदु यादववंश के छप्पन कोटी जैन थे,
कितने मुरारी काल में भाई हमारे जैन थे? ॥२२१॥

रामचन्द्र और रावण जैसे धर्मनायक थे। क्या रावण के समान अन्य कोई भक्त हुआ है? एक यादववंश के छप्पन गोत्रों के लाखों स्त्री पुरुष जैनधर्मी थे। तो अनुमान लगाइये श्रीकृष्ण या नेमीनाथ भगवान के समय में कितने जैन धर्मावलम्बी होंगे।

मुख धर्म चारों वर्ण का था आदि से जिन धर्म ही,
क्षात्रमत था, विप्रमत था, था शूद्रमत जिन धर्म ही।
अवतार इसके सब सही हैं, क्षात्रकुल में से हुये,
आचार्य, गणधर साधु श्रावक वर्ण चारों से हुये ॥२२२॥

जैन धर्म ही ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, और शूद्रों का आदि धर्म था। सर्व जैन तीर्थंकर क्षत्री थे और गणधर, आचार्य साधु और श्रावक चारों वर्णों के थे और आज भी हैं।

उन ऋषभ जिन पति को सभी हैं अन्य मत भी मानते,
अवतार खलु हम ही नहीं, अवतार वे भी मानते।
वे चक्रपति महिभूप थे—पुस्तक, पुरातन देखलो,
जिन धर्म के वे थे प्रवर्तक चक्रधारी, परखलो ॥२२३॥

आदिनाथ भगवान को जैन एवं सर्व भारतीय जैनेतर धर्म अवतार मानते हैं। आप पुराणों को, वेदों को और जो प्राचीन ग्रंथ हों उन सर्व को देख लीजिये, भगवान ऋषभ देव सार्वभौम सम्राट थे और जैन धर्म के प्रवर्तक अर्हन थे।

एक जाति के इतिहास में अगर किसी अन्य जाति का भी वर्णन आता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह इतिहास ही उस दूसरी जाति का है वरन अर्थ यह है कि उस अन्य जाति का इससे न्यूनाधिक संबध रहा है। अब तो भली भाँति यह सिद्ध हो गया है कि जैन धर्म किसी अन्य धर्म की शाखा नहीं है। अब तो इतना सिद्ध करना अवशिष्ट रहा है कि वैदिक धर्म और जैन धर्म इन दोनों धर्मों में कौनधर्म अधिक प्राचीन है।

निज देश के इतिहास में इतनी पुरानी जाति का—
उल्लेख कुछ भी हो नहीं इतिहास वह किस भाँति का।
इतिहास भारतवर्ष के तुम आधुनिक सब देखलो,
उन में तनिक भी है नहीं वर्णन हमारा लेखलो ॥२२७॥

इतनी प्राचीन जैन जाति का भारतवर्ष के आधुनिक इतिहासों में कुछ भी उल्लेख का न होना बड़ा आश्चर्य की बात है। आप स्वयं उनको पढकर विश्वास कर सकते हैं।

श्री मन्त, दानी, वीर, नृप हममें अनता हो गये,
विद्या, कला-कौशल सभी के ज्ञान वारी हो गये।
इतने नरों में से हमारे लेख्य क्या कोई नहीं?
पर द्वेष से मत भ्रष्ट किसकी हो भला सकती नहीं ॥२२८॥

जैन समाज में आज तक धन कुबेर को भी लज्जित करनेवाले श्रीमंत, दानी, वीरवर, राजा, सम्राट, विद्वान, कलाविद और महाज्ञानी अनत हो गये हैं। आश्चर्य होता है कि इतने महा-

द्वादश हमारे चक्रवर्ती विश्वजय हैं कर चुके
अमरेश किन्नर तक भी जिनकी चाकरी कर चुके।
न पढ़ शाखा का ग्रंथ में उनके कथानक मिल सके
हँसते रहे जो आज तक व सत्य मत क्यों कह सके ।।२२१।।
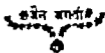
हमारे १२ सार्वभौम (चक्रवर्ती) सम्राट आज तक हो चुके हैं जिन्होंने समस्त संसार को विजित किया था। जिनके इन्द्र किन्नर और देवगण आज्ञापालक थे। इन महापुरुषों का परिचय इस समय भी उपलब्ध है। परन्तु आज तक जो जैन धर्म का उपहास ही करते रहे वे भला सत्य को कब स्वीकार करेंगे?

फूटे सभी के हैं नयन या भ्रष्टमति सब हो गये
शत्रुत्व मत्सर द्वेष के बन्धन, मन रंग गये
वे मूर्ख हैं या अज्ञ हैं अत्यन्त मिथ्या कह रहे
क्यों बौद्ध-वैदिक धर्म की शाखा हमें हैं कह रहे ?।।२२२।।

वे आँखों के अंधे हैं या मतिहीन हैं या साम्प्रदायिकता के शत्रुत्व एवं मत्सर आदि भावों से उनके मन-वचन रंगे हुए हैं या मूर्ख हैं या अज्ञानी हैं जो अत्यन्त स्पष्ट मिथ्या कह रहे हैं कि जैन धर्म बौद्धधर्म की या वैदिकधर्म की ही एक शाखा है।

इतिहास आदि विषय का क्या दूसरों का हो सके?
संबंध दोनों में रहे तो मान्य उनका हो सके।
शाखा किसी मत की भला इस भांति अब यह हो गया
अब कौन वैदिक जैन में है ज्येष्ठ—इतना रह गया ।।२२३।।

एक जाति के इतिहास में अगर किसी अन्य जाति का भी वर्णन आता है तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह इतिहास ही उस दूसरी जाति का है वरन अर्थ यह है कि उस अन्य जाति का उससे न्यूनाधिक संबंध रहा है। अब तो भली भाँति यह सिद्ध हो गया है कि जैन धर्म किसी अन्य धर्म की शाखा नहीं है। अब तो इतना सिद्ध करना अवशिष्ट रहा है कि वैदिक धर्म और जैन धर्म इन दोनों धर्मों में कौनधर्म अधिक प्राचीन है।

निज देश के इतिहास में इतनी पुरानी जाति का—
उल्लेख कुछ भी हो नहीं इतिहास वह किस भाँति का।
इतिहास भारतवर्ष के तुम आधुनिक सब देखलो,
उन में तनिक भी है नहीं वर्णन हमारा लेखलो ॥२२७॥

इतनी प्राचीन जैन जाति का भारतवर्ष के आधुनिक इतिहासों में कुछ भी उल्लेख का न होना बड़ी आश्चर्य की बात है। आप स्वयं उनको पढ़कर विश्वास कर सकते हैं।

श्रीमन्त, दानी, वीर, नृप हममें अनेकों हो गये,
विद्या, कला-कौशल सभी के ज्ञान धारी हो गये।
इतने नरों में से हमारे लेख्य क्या कोई नहीं?
पर द्वेष से मत भ्रष्ट किसकी हो भला सकती नहीं ॥२२८॥

जैन समाज में आज तक धन कुबेर को भी लज्जित करनेवाले श्रीमंत, दानी, वीरवर, राजा, सम्राट, विद्वान, कलाविद और महाज्ञानी अनंत हो गये हैं। आश्चर्य होता है कि इतने महा-

पुरुषों में से क्या एक भी पुरुष भारत के इतिहास में स्थान पाने योग्य नहीं है? बात तो यह है कि साम्प्रदायिक भावों ने भला किसकी बुद्धि को भ्रष्ट नहीं किया है।

इस जैनियों में आज ऐसा एक भी विद्वान है
हीरालाल बनारसीदास दो से क्या कहीं सम्मान है!
इतिहास लिखने की कला पर है न उनके पास में
क्यों दाम इतरों के लगे ऐसे न फिर अवकाश में ॥२५॥

हमारी जैन समाज में ऐसा कोई भी विद्वान नहीं है जो जैन जाति का इतिहास लिख सके। पंडित हीरालाल एवं बनारसीदास के नाम सुन पाते हैं परन्तु इतिहास लिखने के लिये वे भी इतने योग्य नहीं। फिर ऐसी स्थिति में इतर इतिहास लेखक मनमाना लिखें और हमारी ऐतिहासिक संपत्ति को भी अन्य जाति की सम्पत्ति लिख दें तो आश्चर्य ही क्या है?

हमारा राजत्व

राजत्व की भी स्थापना हमने प्रथम जग में करी
नर धर्म के रक्षार्थ हमने स्थापना इसकी करी।
सब आत्मियों का आत्म का जब रूप ही है एक सा
फिर राव राजा रंक में भी भेद होता कौन सा ॥२६॥

संसार में शासन प्रणाली सब प्रथम भगवान आदिनाथ-ऋषभदेव ने स्थापित की थी। इसकी स्थापना मनुष्य धर्म की रक्षा और पापत्व के मिष की गई थी। सब प्राणियों की आत्मायें एक हैं तब यह भाव अनन्त अनादि काल से स्थिर

होता हुआ आया है, तब भला राजा और रंक के मान में अतर कैसे होता। दीन, हीन, निर्बल, असहाय प्राणियों को आततायी दुष्ट, बली के अत्याचारों से रक्षा करने की दृष्टि से शासन विधान क्यों नहीं बनता ?

हम थे पितावत, हर तरह थी पुत्रवत हमको प्रजा;
द्विज को न लेने में हिचक थी शूद्र की भी आत्मजा।
फिर क्यों प्रजापति को कहो प्यारी प्रजा लगती नहीं ?
क्यों मनुज मानसद्वीप में रसधार फिर बहती नहीं ?॥२३१॥

राजा और प्रजा में पिता और पुत्र का प्रेम भरा एव घनिष्ट सम्बन्ध था। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों का शूद्र कन्याओं के साथ विवाह होता था। ऐसी स्थिति में प्रजा राजा को क्यों नहीं प्यारी लगे ? और मनुष्यो के हृदय स्थलो में प्रेम की नदिये क्यों नहीं बहे ?

परमार्थ हित राजत्व क्या, अपवर्ग यदि तजना पड़ा—
सब कुछ तजा, सुखसे दिया यदि प्राण भी देना पड़ा।
हमको न माया, मोह था, राजत्व मे नहिं लोभ था,
राजत्व तजते भूप को होता न कुछ भी क्षोभ था ॥२३२॥

दूसरों का कल्याण करना हमारा परम उद्देश्य था। पर कल्याण करने में अगर राज्य, स्वर्ग, सर्वस्व और प्राण तक त्यागने की आवश्यकता पड़ी तो वह सब हमने सहर्ष किया। न हमको राज्य मे लोभ था, न प्राणों मे मोह था और न इस सासारिक माया-वैभव में अनुराग था। सार्वभौम साम्राज्य तक को छोड़ने में किंचित मात्र भी विचार नहीं होता था।

राजस्ववर्ती मात्र थे, पर भोगवर्ती थे नहीं
होते हुए उपलब्ध वैभव लीन वैभव थे नहीं।
यह भरत* चक्री पुरुष पवि कैसा सदाशय भूप था
होता हुआ वह राजभागी राजयोगी भूप था ॥७१३॥

हम मात्र राजा और राजसी वैभव के स्वामी थे परन्तु उन

---

*भरत—यह भगवान ऋषभदेव का पुत्र था और प्रथम चक्रवर्ती हुआ है। यह राज-काज करता हुआ भी निर्लिप्तात्मा था। एक समय किसी ने शंका की कि भरत चक्रवर्ती होकर कैसे निर्लिप्तात्मा रह सकता है। जब इस बात का पता भरत को मिला तो भरत ने उस आदमी को बुलाया और उस आदमी के हाथ में दही से भरा हुआ पात्र देकर कहा 'जाओ। तुम समस्त शहर में यह पात्र अपने हाथ में लिये हुए भ्रमण करके आओ लेकिन यह ध्यान रखना कि एक बूंद भी अगर दही का नीचे गिर पड़ा तो मारणादेश तत्काल फिर वहीं पर वध से आज्ञा कर दी।

जब वह आदमी समस्त नगर में भ्रमण करके लौटकर भरत के पास आया तो भरत ने देखा कि दही में से एक बूंद भी नहीं गिर पाई है। भरत ने उसे पूछा 'भाई तुमने नगर में क्या देखा और क्या सुना?'

उस पुरुष ने उत्तर दिया 'न मैंने कोई पुरुष या वस्तु देखी और न मने कुछ सुना ही मेरी तो नज़र तो इसलिये दही पात्र पर लगी हुई थी'। तब भरत ने उसे समझाया और कहा 'भाई मैं इस दहीपात्र के समान मोक्ष को देखता हुआ इस असार संसार में मग्न रहता हूँ।'

अलौकिक वैभवों में कभी भी अनुरक्त नहीं थे। अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिये उनका उपभोग नहीं करते थे। जनक महाराज का नाम तो सबने सुना होगा वह ऐसा महाराज जनेश्वर था। वह राज्य का स्वामी होकर भी योगीश्वर था।

यों दीन दलितों पर न अत्याचार था हमने किया,
पापीजनों को भी न यदि निग्रह में हमने लिया।
उपदेश को हम दण्ड से अधिक बढ़कर मानते,
सद्मार्ग लाने की कला थे खूब सुन्दर जानते ॥१८३॥

आज के शासकों की भांति हमने कभी भी दीन, असहाय असमर्थों पर अत्याचार नहीं किये और न दुष्टों का दल ही बढ़ने दिया। दण्डनीति को हम सदा से घृणित समझते रहे हैं। अपराधी को हम उपदेश देकर समझा कर पुनः सद्मार्ग में प्रवृत्त करते थे। पथभ्रष्ट को मार्ग में लगाने की शैली हमारे पास में बड़ी सुन्दर थी।

हमारी वीरता

हम आप आकर के किसी से पर रहे नहिं युद्ध थे,
शोणित अकारण हम बहाते यों न होकर क्रुद्ध थे,
थे चक्रवर्ती नृप, किंचित गर्व पर उनको न था,
सुरलोक वैभव प्राप्त कर होना अधीर कोई न था ॥१८४॥

आज के सार्वभौम सम्राटों की भांति न तो हम अकारण ही युद्ध छेड़ते थे और न किसी का अकारण रक्त ही बहाते थे। हम सार्वभौम सम्राट होकर भी गर्व से सदा दूर थे। हम लोग

अलौकिक वैभवों में कभी भी अनुरक्त नहीं थे। अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिये उनका उपभोग नहीं करते थे। भरत चक्रवर्ती का नाम तो सबने सुना होगा वह कैसा महाशय नरेश्वर था। वह राज्य का स्वामी होकर भी योगीश्वर था।

यो दीन दलितों पर न अत्याचार था हमने किया,
पापीजनों को भी न बढने विश्व में हमने दिया।
उपदेश को हम दण्डनय से अधिक हितकर मानते,
सद्मार्ग लाने की कला थे बहुत सुन्दर जानते ॥२३४॥

आज के शासकों की भांति हमने कभी भी दीन, अनाथ असहायों पर अत्याचार नहीं किये और न दुष्टों का दल ही बढने दिया। दण्डनीति को हम सदा से घृणित समझते रहे हैं। अपराधी को हम उपदेश देकर, समझा कर पुनः सद्मार्ग में प्रवृत्त करते थे। पथभ्रष्ट को मार्ग में लगाने की शैली हमारे पास में बडी सुन्दर थी।

हमारी वीरता

हम आप जाकर के किसी से कर रहे नहि युद्ध थे
शोणित अकारण हम वहाते यों न होकर क्रुद्ध थे,
थे चक्रवर्ती नृप, किंचित गर्व पर हमको न था,
सुरलोक, वैभव प्राप्त कर होता वधिर कोई न था ॥२३५॥

आज के सार्वभौम सम्राटों की भाँति न तो हम अकारण ही युद्ध छेडते थे और न किसी का अकारण रक्त ही बहाते थे। हम सार्वभौम सम्राट होकर भी गर्व से सदा दूर थे। देव लोक

और सब वैभव हमको प्राप्त थे फिर भी हम इतने अहिंसा-
अनुरक्त न थे कि अपना कर्तव्याकर्तव्य भी भूल जाते।

जो वीर शिशु के जन्म पर गिरिनाथ डगमग हिल गया,
आसन अचल था अमरपति का भी उसी क्षण हिल गया।
इस भाँति के अगणित हमारे वीर नरपति हो गये
यदि युद्ध रण में छिड़ गया वे एक जल-जल हो गये ॥२३॥

एक भगवान महावीर का ही पराक्रम और तप देखिये। महावीर के जन्म लेते ही सुमेरु पर्वत कंप उठा और इन्द्रलोक में इन्द्रासन डगमगा उठा। ऐसे एक नहीं अनेक महावीर हो चुके हैं जिनके समर में उतरने पर प्रलय मच जाता था।

हमने समर अगणित किये पर प्रथम लड़ने नहिं गये
सम्मुख हुये हम भूप को पहिले मनाने ही गये।
उपयोग हमने नीतियों का अन्त तक भरसक किया
माना न जब अरि ने कुपित होकर विवश रण फिर किया ॥२४॥

यद्यपि हमने आज तक सहस्रों युद्ध किये हैं परन्तु युद्ध का प्रस्ताव कभी भी हमारी ओर से नहीं हुआ। बल्कि युद्ध पर उतारू हुए शत्रु को हमने प्रथम समझाने का ही प्रयत्न किया। चारों नीतियों का अन्त तक प्रयोग करने पर भी अगर शत्रु युद्ध किये बिना पीछे नहीं हटा तब हमने युद्ध किया।

सम्मान महाराज सहर्ष रिपु स्पष्ट होकर आ गया
वह बल हमारा देखकर भूला हुआ सा रह गया।

था वज्र सा यदि क्रुद्ध कोई काल-सा विकराल था,
तब वह हमारा आत्मबल होता तरल तत्काल था ॥...॥

अगर कोई बुद्धिमान, विवेकशील राजा निस्संदेह अकारण से क्रुद्ध होकर हमारे ऊपर चढ़ आया तो वह हमारा यश शौर्य देखकर लौट गया। यदि वह वज्र के समान कठोर हृदयवाला और यमराज के समान भयंकर हुआ तो हमारे आत्मबल के तेज से मोम के समान पिघल कर द्रवित हो गया।

रणक्षेत्र में भी पहुँच कर तलवार टेक निज वे
थे रोकते थे रक्त निर्झर यत्न भरसक कर रहे।
दोनों परस्पर युद्ध पति करते कभी दो ओर के
इस भाँति के प्रस्ताव न रखते न दल दो ओर के ॥...॥

समरभूमि में भी पहुँच कर हम रिपु को प्रेमपूर्वक समझाकर रक्तपात को रोकने का भरसक प्रयत्न करते। रिपु के किसी भी प्रकार न मानने पर फिर दोनों दलपतियों में द्वन्द्वयुद्ध का ही निश्चय कराकर दोनों ओर के दलों का अकारण होता रक्तपात रोकते। इस प्रकार निरपराधियों के अकारण रक्तपात को हम सर्वथा रोकने का या कम से कम करने का प्रयत्न अंत तक करते।

आवेश हममें था नहीं यह विश्व क्या नहि जानता,
हमको समाधर, शान्त यह जग आज भी है मानता।
निर्बल सबल कहते किसे ? यह प्रश्न है हम पूछते
है घट छलकता अधभरा या सुखभरा ? हम पूछते ॥२४०॥

सागर, स्वयभू, अर, अचल, जयनाम, मघवा, भद्रसे
द्विपृष्ट कैसे थे बली ? त्रिपृष्ट नृप बलभद्र मे।
निष्कुम्भ तारक से बली अरि क्या हमारा कर सके?
दर्शन, विजय बलदेव का क्या बाल बाँका कर सके ?॥२४३॥

चक्रवर्ती सम्राट सागर, अरनाथ मघवा, जयनाम और बलदेव अचलनाथ, विजय, भद्र, सुदर्शन और वासुदेव त्रिपृष्ट द्विपृष्ट और स्वयभू अद्वितीय महाबली थे। निष्कुम्भ और तारक जैसे महापराक्रमी प्रति वासुदेव भी सुदर्शन और विजय वासुदेव के आगे रणस्थल में नहीं टिक सके थे।

उस मौर्यपति भूपेन्द्र की तलवार में क्या तेज था।
क्या ग्रीक सैन्याधीश से लेना सुता, जय सहज था ?
जग कोटिभट श्रीपाल का बल जानता है क्या नहीं ?
श्रीपाल को पर कोटि भट थे जीत सकते क्या कहीं ॥२४४॥

मौर्यपति जैन सम्राट चन्द्रगुप्त की तलवार के प्रहार को ग्रीक सैन्याधीश शिल्यूकस नहीं समाल सका। अत में हमारे सम्राट की विजय हुई और शिल्यूकस ने सम्राट चन्द्रगुप्त के साथ अपनी प्यारी पुत्री का विवाह कर चिर संधि की। कोटि भट श्रीपाल के बाहुबल से ससार भली भाँति परिचित है। इस अकेले महावीर में एक साथ एक कोटि योद्धाओं को परास्त करने की सामर्थ्य थी।

राजर्षि उदयन को कहो इतिहास क्या नहिं जानता ?
इसको नपोलिन कह रहा है कौन यह नहिं मानता ?

सम्राट श्रेणिक नंदिवर्धन राष्ट्रपति चेटक महो !
नृप चण्ड से कैसे विमल धीर से कैसे बड़ा ? ।।२५४।।

पार्थिव उदयन—यह वत्सपत्तनगर का राजा था। बड़ा प्रतापी था। इसने अनेक युद्ध किये और सबमें विजयी हुआ। अन्त में इसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपने भागिनेय को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली।

सम्राट श्रेणिक—यह मगध का सम्राट था और भगवान महावीर का परम भक्त था। इसके विषय में अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं जिन का यहाँ वर्णन स्थानाभाव से असम्भव है। इसकी रानी चेलना राष्ट्रपति चेटक की पुत्री थी और महारानी थी।

नंदिवर्धन—ये भगवान महावीर के भाई थे और भगवान के परमानुयायी थे। इनकी रानी ज्येष्ठा राष्ट्रपति चेटक की कन्या थी। नंदिवर्धन का राम-राज्य प्रसिद्ध है।

राष्ट्रपति चेटक—यह बड़े नीति कुशल नरेश थे। समस्त आर्यावर्त के राज्यों में इनका भूरि सम्मान था। ये दृढ़ जैन धर्मी थे। इनके सात कन्यायें थीं और सात में से छह का भारत के तत्कालीन एवं महान राजाओं से विवाह हुआ था। एक बाल ब्रह्मचारिणी ही रही थी। इनके परिवार में जैन धर्म का इतना विस्तार किया कि राष्ट्रपति चेटक का रूप महावीर कहना चाहिये। इनकी कन्याओं का यह दृढ़ प्रण था कि जैन राजा से ही उनका विवाह होगा। और ऐसा ही हुआ।

नृप चण्डप्रद्योत—यह उज्जैन का राजा था और बड़ा वीर था। राष्ट्रपति चेटक की एक कन्या शिवा का विवाह इसके साथ हुआ था।

उस खारवेल नृपेन्द्र की-तलवार में क्या शक्ति थी ?
सम्राट मगधाधीश की क्या फल सकी कुछ शक्ति थी ?
कटर गुफाये आज भी ये ओरिसा की पसली।
सम्राट के यशकीर्ति की ये हैं पताका लहली ॥२४६॥

हम युद्ध में अरि से कभी अपधर्म से लड़ते न थे,
बाहर सदा रणक्षेत्र के हम शत्रु रिपु गिनते न थे।
रिपु झुक गया, रणक्षेत्र से यदि या पलायन कर गया,
वह शत्रु से मिटकर हमारा बंधु सब विध बन गया ॥२४७॥

युद्धक्षेत्र में हम छल-कपट-पाखण्ड का व्यवहार नहीं करते थे। हमारे युद्ध एक शुद्ध धर्म युद्ध होते थे। समर भूमि में ही हमारा शत्रु शत्रु था। समर भूमि के बाहर वह सदा हमारा परम बंधु था। विनत हुये एवं रणक्षेत्र से भागे हुये शत्रु को हम सदा अभयदान देकर उसके साथ बंधुत्व का व्यवहार करते रहे हैं।

सम्राट खारवेल—यह कलिंग-सम्राट था। यह महामेघवान खारवेल के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत कुछ अंशों में इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर आ चुका है। मगध सम्राट नन्द-वर्धन को इसने परास्त किया था। आन्ध्रनृपतियों को भी हराया था। यह अपने समयका महान राजा हुआ है। इतिहासकार भी इस बात को स्वीकार करते हैं। अब तो सम्राट खारवेल पर (गुजराती में) बहुत पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

ओरिसा की गुफाय—देखो पृष्ट ११९।

आमात्य आबू, विमल, उदयन, शातनु महेता तथा,
होते न यदि सौराष्ट्र में, सौराष्ट्र होता अन्यथा ॥२४६॥
गुजरातपति नृप सिद्ध के, सौराष्ट्र पति नृप भीम के,
थे डालने वाले हमीं साम्राज्य की दृढ़ नींम के।

यन का पुत्र था। नागभट भी इसका छोटा भाई था। वागभट और नागभट दोनों भाइयों ने अपनी अल्प आयु में ही अनेकों युद्ध किये थे। देखिये कुमारपाल चरित्र।

आमात्य आबू—यह अणहिलपुर के महाराजा भीमदेव द्वितीय का सेनापति था और आमात्य भी रह चुका था। इसने कितनी ही बार मुसलमान आक्रमणकारियों को परास्त किया था।

विमलशाह—यह गुजरातपति भीमदेव का महामात्य था। यह बड़ा वीर और अद्वितीय राजनीतिज्ञ था। इसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं थीं और आबू पर्वत पर एक विशाल जैन मन्दिर बनवाया था।

उदयन—यह सौराष्ट्रपति महाराज सिद्धसेन का महामात्य था। यह अद्वितीय वीर एवं नीति प्रवीण था। इसके चार पुत्र थे और चारों पुत्र बड़े रणवीर थे। उदयन और इसके पुत्रों ने ही सिद्धराज का राज्य दृढ़ एवं अत्यधिक विस्तृत किया था। देखो मन्त्री उदयन का चरित्र।

शातनु—शान्तनुशाह भी महाराजा भीमसेन का महामात्य एवं परम सहायक था। महाराजा भीमसेन को राज्यासन शान्तनु महेता के ही बल से मिला था।

भुजदण्ड भैंपाशाह के, थे नाम के अनुरूप ही,
थे श्रील रामाशाह उनके वीरवर, तद्रूप ही।
श्री कर्मसी, श्री नेत सी, श्री अन्नदाता धर्म-सी,
सब थे अतुल वर वीर भट, समवर्ण्यहो कैसे अभी। ॥२५२॥

बाहुबली भैंपाशाह, रामाशाह, कर्मसी, नेत सी, धर्म सी बडे ही नामांकित शाहूकार थे और महान योद्धा थे। इस पुस्तक में स्थानाभाव के कारण इन सर्व का विशद परिचय पाठकों के समक्ष किसी भी स्थिति में नहीं रखा जा सकता।

भैंपा-शाह—ये महापराक्रमी एव दानवीर शाह थे। ये मारण्ड के रहने वाले थ। इनकी हवेली मारण्ड में आज भी इनके वैभव की स्मृति कराती है।

रामाशाह—ये भैंरुशाह के भाई थे। भूल से इनको भैंपाशाह का भाई कहा है। रामाशाह कितने पराक्रमी थे, निम्न पद्य से देखिये जो एक कवि ने इनकी प्रशस्ती में कहा है —

ते थै कछवाहा, जोधक, जादौ, मागध नागे भीछ भला।
निरवाण, चौहान, चन्देल, सोलंकी, देल्ह, निसाण, जिके दुबला॥
बड़गूजर, ठाकुर, छेछर, छीमर, गौड, गहेल, महेल मिली।
दरबारि तुहारे रामनरेसुर नेवै राज छतीस कुली॥
जै० जा० भ० प्र० चौथा।

श्री कर्मसी—निम्न पद्य से श्री कर्मसिंह का भी परिचय पा लीजिये —

श्यकता नहीं। आप मात्र राजपूताना, मध्यभारत और गुजरात के इतिहासों का भलिविध अवलोकन कर जाइये।

हम जनियों ने क्या किया इतिहास-वेत्ता जानते,
सौराष्ट्र राजस्थान की वे स्नायु हमको मानते।
जयपुर उदयपुर जोधपुर किसकी कृपा से हैं रहे?
यदि हम न होते आज फिर ये राज्य होने से रहे ॥२५४॥

इतिहासज्ञ जानते हैं कि जैनबंधुओं ने सौराष्ट्र और राजस्थान में क्या किया है और इनका इतिहास में क्या स्थान है? जैन बंधुओं का बल और सहयोग नहीं मिला होता तो आज जयपुर, जोधपुर और उदयपुर के कीर्तिशाली दुर्गों पर किन्हीं अन्य वंशों के ध्वज फहरा रहे होते।

हमारी आध्यात्मिकता

कैसा हमारा आत्मबल था, विश्व में था वह नया,
रविदेव का रथ रुक गया, था मेरु जड़ से हिल गया।
राजर्षि मुनिपति मदन अपने प्राण वल्लभ दे चुके,
मुनिराज स्कंदक भी त्वचा निर्दोष खिंचवा थे चुके ॥२५५॥

हमारा आत्मबल संसार में एक अलौकिक आत्मबल था। प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म मुहूर्त पर सुमेर पर्वत हिल उठा था और इन्द्रासन डोल उठा था। मदन राजर्षि ने प्राण त्याग दिये और मुनिराज स्कंदक ने खड़े खड़े अपनी त्वचा खिंचवा ली, लेकिन कल्याणमयी अहिंसात्मक अध्यात्मिक शक्ति में रंचक न्यूनता नहीं आने दी।

हम क्षमा में अंत शूर थे हम धर्म में रणधीर थे,
हमको न माया मोह था हम त्याग में बरवीर थे।
विपरीत चलना धर्म के हमको न आता था कभी
दिन को निशा कहना नहीं था सीखिया आता कभी ।।८५।।

हम कार्य क्षेत्र में महान परिश्रमी और धर्म क्षेत्र में स्वतंत्र पराक्रमी वीर थे। हम वैभव और कौटुम्बिक स्नेह में लिप्त नहीं थे। त्याग करने में हम अग्रणी थे। धर्म के विरुद्ध अकिंचन कर्म करना भी हमको तनिक भी नहीं आता था। कोई दुष्ट पापी अत्याचारी हमको भय दिखाकर धर्म विरुद्ध मार्ग में प्रवृत्त नहीं कर सकता था। अर्थात् हम कायर व डरपोक नहीं थे।

मुनिवृन्द के चारों तरफ भी अग्नि जब कैसी लगी!
जग में नहीं अब तक कहीं भी अग्नि है वैसी लगी!
अब तक किसी को भी बिगड़ कर शाप नहिं हमने दिया!
अपकार के प्रतिकार में उपकार ही हमने किया ।।८६।।

एक समय में सात सौ ध्यानस्थ मुनियों को दुष्टों ने उनके चारों ओर काँटे और तृण डालकर अग्नि लगा दी। धन्य है सात सौ ही मुनि अविचल रहे और अन्त में धर्म की विजय हुई। वैसी अग्नि शायद ही संसार में अन्यत्र सुलगी होगी। दुष्टों के द्वारा इतना परिताप एवं कष्ट सहन करने पर भी हमने कभी क्रुद्ध होकर पीड़कों एवं परितापकों को अभिशाप नहीं दिया वरन अपकार करने वालों का भी हम सदा भले की कल्पना ही करते रहे।

प्रक्षिप्त करने साधुवर कटु तक को लेकर गये,
देखा न प्राणीहीन स्थल, पीकर स्वय वह मर गये।
मुनिराज ऐसे हो गये किस धर्म में, किस देश में ?
अध्यात्मपद तो साध्य है जिनराज के ही वेष में ॥२५८॥

हम हो दिगंबर फिर रहे थे पुर, नगर हर ग्राम में,
यो नग्न कोई फिर सके जाकर नगर अभिराम में।
हम आज वैसे हैं नहीं, फिर भी दिगंबरवाद यह,
जय जय दिगंबरवाद वह, पाखण्ड दिग्पटवाद यह ॥२५९॥

हमारे साधु, तीर्थंकर, सिद्ध इतने प्रबल जितेन्द्रीय थे कि सत्र सम्पन्न वैभव शाली महान नगरियों में, नगरों में वस्त्रहीन होने की अवस्था में भी विचरण करते थे और जिनका हृदय नेत्रादि इन्द्रियें कभी भी सविकार नहीं होती थी। इस प्रकार दिगंबर हो कर आज तक किस धर्म के सन्यासी अभिराम नगरों में जितेन्द्रीय जीवनयापन कर सके हैं। यह बात सही है कि आज न हमारे आचार्य और साधु ही उतने जितेन्द्रीय हैं

धर्मरुचि मुनि को किसी श्रावक ने आहार में बहुत दिनों का कड़वी तुम्बी का रायता अर्पण किया। मुनिराज आहार लेकर अपने स्थान पर आये। जब आहार करने लगे तो पता पड़ा कि रायता अतिशय खट्टा है। आहार से निवृत्त होकर मुनिराज उस रायता को पात्र में लेकर बाहर अजीवाकुल स्थान पर प्रक्षेप करने गये। लेकिन उन्हें ऐसा कोई स्थान न मिला जहाँ किसी प्रकार का कोई जीवाणु न हो। निदान आप ही उसे पी गये और मोक्ष को प्राप्त हुए। धन्य है ऐसे महामुनियों को।

और नहीं हम मानते ही कि जो नग्न आचार्यादि को द्रव्य और विकार से न्यूनाधिक मात्रा में मग्न नहीं होते हों। फिर भी हम दिगम्बरवाद को प्रधान आचार्यादि के नग्न रहने की अवस्था का समर्थन करते हैं यह सर्वथा असत्य है यह मूलाचार्यों का दिगम्बरवाद प्रशंसनीय और धन्य था और यह इन आचार्यों का दिगंबरवाद हास्यास्पद और आलोचनीय है।

श्रीमन्त व व्यापार

व्यापार भारत वर्ष का था विश्व भर में हो रहा,
संसार का प्रति भाग था भारत हमारा हो रहा।
हम वैश्य सुत व्यापार में ही आज तक विख्यात
हैं गिर गये पर उस समय व्यापार में प्रख्यात थे ॥ ६०॥

एक समय था जब कि हमारा वैश्य समाज एक जीवित समाज था और समस्त संसार में यह व्यापार कर रहा था संसार का प्रत्येक जन यह हमारे लिए एक भारत वर्ष सा ही था अर्थात् प्रत्येक देश इतना परिचित और संबंधित हो गया था। हमारे वैश्य समाज का आज पतन हो चुका है परन्तु यह पतित वैश्य समाज किसी समय व्यापार में अग्रणी था और आज तक जो कुछ इसकी कीर्ति थी वह उस व्यापार में अग्रणी के कारण ही था।

संसार भर में घूम कर व्यापार हम थे कर रहे
सर्वत्र जल थल-व्योमवाहन थे हमारे चल रहे।
थे यान भारतवर्ष से सब अन्न भर कर जा रहे,
मरकत रजत मणि हम भरकर थे यहाँ ले आ रहे ॥ ६१॥

सर्वत्र संसार में हमारा व्यापार फैला हुआ था। जहाज और शकट आदि वाहनों को हम अन्न से भर कर अन्य देशों में ले जाते थे और वहां से मरकत, मणी, रत्नादि क्रय कर भारतवर्ष को लाते थे। वायुयानों में भी हम भ्रमण करते थे।

व्यापार से परिचय परस्पर थे हमारे बढ रहे,
संबंध कन्या ग्रहण के भी थे परस्पर सिद्ध रहे।
सौहार्द, ममता, प्रेम, रस था उत्तरोत्तर जग रहा,
भ्रातृत्व बढने था लगा, था विश्व कुल सा लग रहा ॥२६२॥

अन्य देशों में हमारा ज्यों ज्यों व्यापार उन्नत हुआ और बढा त्यों त्यों अन्य देश वासियों से हमारा परिचय बढा, सौहार्द, ममत्व और प्रेम और आनंद की परस्पर जागृति हुई और परस्पर विवाहादि भी होने लगे। समस्त संसार एक बडे कुल के समान प्रतीत होने लगा था।

व्यापार में हम से बढा था दीखता कोई नहीं,
जिस ग्राम में हम थे नहीं, वह ग्राम श्रुत था ही नहीं।
सर्वत्र थी संसार में हाटे हमारी खुल रही,
सर्वत्र क्रय थे बढ रहे, विक्री अतुल थी चल रही ॥२६३॥

व्यापार क्षेत्र में हम सर्व से आगे बढे हुये थे। संसार में ऐसा एक भी ग्राम, पुर नहीं था कि जहाँ हमारी दुकान नहीं थी। सर्वत्र संसार में हमारी दुकानें चल रही थीं और क्रय-विक्रय दिनोदिन अतिशय बढते ही जा रहे थे।

उपकरण दैनिक सदा का सब हाट में मौजूद था
सामान सारा निधनों को मिल रहा बिन सूद था।
व्यापार सब निधि सत्यता की पीठ पर था चढ़ रहा,
धन लोभ हमको था नहिर, न था महा था कर रहा ॥१६३॥

हमारी दुकानों में सब प्रकार की उत्तमोत्तम सामग्री थी। निर्धनों को बिना ब्याज मात्र उधार दिया जाता था। सत्यता का पालन व्यापार का प्रमुख मंत्र था। उस समय धन और लोभ हमको इस प्रकार हताशान और स्वार्थी नहीं बना सके थे।

रस, करा औ गजदन्त का व्यापार हम करते न थे
व्यापार पशुओं का नहीं था लाख मधु भूत न थे।
सब रत्न मणि पट, धातुओं का मुख्य प्रमुख व्यापार था,
अथवा अनाकृत वस्तु का व्यापार सहविस्तार था ॥१६४॥

हम ऐसा कोई व्यापार नहीं करते थे जिसमें पशु विषय जीवों को सामग्री प्राप्त करने के लिये कष्ट देना पड़ता था। रस करा हाथी दांत मधु ये सब ऐसी सामग्रियां हैं जो पशु आदि जीवों से प्राप्त होती हैं और इनको प्राप्त करने के लिये जीवों को अतिशय सताना पड़ता है। हम कलावस्तुओं शास्त्र धातुओं का रत्न मणि और मुक्ताओं का ही प्रमुख रूप से व्यापार करते थे।

था देश भारत स्वर्ग की बिम त सभी चिड़िया रहा
यह देश नृव्यागार था यह देश रत्नों का रहा।

सम्पन्न हमने देश को व्यापार से जब यों किया,
सतुष्ट होकर देश ने श्रीमतपद हमको दिया ॥२६६॥

हमारे उस उन्नत व्यापार का ही एक मात्र परिणाम था कि भारत वर्ष स्वर्ण की चिड़िया कहलाने लगा था, सर्व प्रकार की सामग्रियों का भंडार था और रत्नों का अपार आगार था। इस प्रकार जब हमने अपने व्यापार कौशल से भारत वर्ष को समृद्ध बनाया था तब भारत वासियों ने हमको श्रीमतपद से अलंकृत किया था।

श्रीमत, शाहूकार शाहा जी हमारे नाम हैं,
महाजन, वणिया, वैश्य भी औ सब हमारे नाम हैं।
प्रथम पद के शब्द त्रय हैं मान, गुण पद कह रहे,
सौहार्द, कौशल, कार्य अक्षर शेष त्रय हैं कह रहे ॥२६७॥

हम लक्ष्मी पति थे और साथ में ही थे सत्य व्यवहारी, और समानित व्यक्ति। श्रीमत, शाहूकार और शाह उपाधियें इसका प्रकट प्रमाण है। हम परोपकारी थे, नीतिकुशल थे और थे कार्यदक्ष। महाजन, वणिया और वैश्य शब्द ये सब प्रमाणित करते हैं।

व्यापार में वह धूम थी, होती समर में भी नहीं,
थी बढ रही दिन-दिन छपी, मिलती न जगती थी कहीं।
थे व्योम-जल-थलयान आते हीर पन्नों से भरे,
थे लौटकर फिर जा रहे रस, अन्न वस्त्रों से भरे ॥२६८॥

युद्धक्षेत्र में होने वाली हलचल से भी अधिक हलचल

लगता है, वह किसी सम्राट का बन्धक रक्खा हुआ है।

आनद से, सदाल से, अलकेश हममें हो गये,
महाशतक, चुल्लणीशतक गोपाल, गोपति हो गये।
जिनदत्त, धन्ना, शील, जगड़ूशाह कैसे शाह थे,
उपकार मय था द्रव्य जिनका, दीन की वे राह थे ॥२७१॥

आनद श्रेष्ठि—ये १६ कोटि स्वर्ण-मुद्राओं के पति थे। इनके गोकुल में ४०००० गाएँ थीं। ये जहाजों द्वारा व्यापार करते थे। ये वाणिज्य ग्राम के निवासी थे और भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे।

सद्दालश्रेष्ठि—ये जाति के कुम्भकार थे। भगवान महावीर के मुख्य श्रावकों में थे। ये तीन करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं के अधिपति थे और इनकी दुकानें अनेक देशों में थीं। इनकी बड़ी २ दुकानें ५०० थीं।

महाशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये २१ करोड़ स्वर्णमुद्राओं के स्वामी थे और इनके गोकुल में ८०००० गाएँ थीं। ये राजगृही के रहने वाले थे।

चुल्लणीशतक—ये भी भगवान महावीर के मुख्य श्रावक थे। ये १८ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। इनके गोकुल में ८००० गौएँ थीं।

जिनदत्तश्रेष्ठि—ये महा धनकुबेर श्रेष्ठि थे। ये सोपारपुर के रहने वाले थे। ये वज्रसेन सूरि के समय उपस्थित थे।

धन्नाश्रेष्ठि—इनकी कथा सर्वाधिक सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये भी बड़े

इस प्रकार की सराहना मिथ्या है जबकि हम अतीत की अपेक्षा वर्तमान में पतित ही हैं। भूतकाल में इन आज के लक्षाधिपतियों का तो कोई स्थान ही नहीं था और आज के कोटिपतियों जैसे तो भूत काल के निर्धन थे।

क्षत्री सभी थे देशरक्षक, विप्र विद्या, ज्ञान के;
थे शूद्र सेवी देश के, थे वैश्य पोषक प्राण के।
पोषण-भरण यदि आज तक हम देशका करते नहीं,
इस रूप में यह देश तुमको आज यों मिलता नहीं ॥२७४॥

क्षत्रियों का देश की रक्षा करना, ब्राह्मणों का विद्योपार्जन और ज्ञान संपादन करना और कराना, शूद्रों का इतर त्रय समाजों की सेवा करना और वैश्यों इतर का त्रय समाजों का भरण पोषण करना कर्तव्य था। यदि हमारी वैश्य समाज ने तन-मन-धन से अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया होता तो आज यह देश इस रूप में भी नहीं होता।

व्यापार कला का प्रभाव—

व्यापार से ही जन्म है इस गणित, ज्योतिष का हुआ
व्यापार की सोपान पर साम्राज्य भी प्रोत्थित हुआ।
श्रुति, वेद, आगम, शास्त्र का उद्भव इसी से है हुआ
कौशल, कला, विज्ञान का व्यापार स्रष्ठा है हुआ ॥२७५॥

व्यापार ने ही गणित और ज्योतिष को जन्म दिया है, साम्राज्यों की स्थापना की है, कला-कौशल और विज्ञान को उत्पन्न किया है और वेद, आगम, धर्मशास्त्रों के प्रणयन की प्रेरणा की है।

वैश्यकुल की साक्षरता

हाँ, वैश्यकुल में आज भी अनपढ़ न मिल सकता कहीं
जब सुलभ काल सुभग में संशय न है रहता कहीं।
व्यापार करना था हमारा कर्म है सब जानते
फिर अज्ञ रहकर कर सके व्यापार,क्या तुम मानते?॥२७६॥

इस पतित अवस्था में भी वैश्यसमाज ऐसा संभवतः कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा जो कुछ भी पढ़ना लिखना नहीं जानता हो। फिर उस उन्नति काल की तो बात ही अलग है। हमारा प्रमुख कर्म व्यापार करना था, फिर भला हम कैसे अपठित रह सकते थे?

यतिवर्य्य कुलगुरु थे जिन्हें गुरुराज कहते हैं सभी
वे ज्ञान हमको थे रहे आगम निगम जग के सभी।
हर ठौर गुरुकुल खुल रहे थे छात्र जो थे पढ़ रहे
वे चार विद्याविज्ञ होकर लौट कर थे आ रहे ॥२७७॥

यतिवर और कुलगुरुवर आज भी गुरु सदृश माने जाते हैं। ये यति और कुलगुरु ही भूतकाल में हमको आगम निगम और व्यावहारिक विद्यायें पढ़ाते थे। सर्वत्र विद्यालय खुले हुये थे और उन विद्यालयों से विद्यार्थी चौदह विद्याओं में पारंगत होकर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।

वातावरण

हा! उस समय का और ही कुछ और वातावरण था
प्रिय पाठको! सच मानिये वह कृतायुग सुखद था।

कचनशिला पर बैठकर हम पो रहे मणिहार थे,
भिक्षार्थ आये भिक्षुको फिर दे रहे वह हार थे ॥२७८॥

भूतकाल में हमारा वैभव अलौकिक ही था। पाठको! सचमुच ही वह काल स्वर्ण-काल था। स्वर्णशिला के आसन पर विराजित होकर हम मणिहार तैयार करते थे और अगर कोई योग्य याचक आ जाता तो वह अमूल्य मणिहार हम उस याचक को प्रदान कर देते थे।

उस समय के स्त्री-पुरुष—

नर देव हैं, हैं नारियाँ मृतवर्ग में सुरदेवियाँ,
नर ज्ञान गरिमागार हैं, हैं नारियाँ गुणराशियाँ।
उपकार प्राण पुरुष हैं, सेवा परायण नारियाँ,
सर्वत्र आनंद-क्षेम हैं, हैं खिल रही फुलवारियाँ ॥२७९॥

देखिये, ये भूतकाल के पुरुष देवता हैं, ज्ञान के सागर हैं, महोपकारी हैं और स्त्रियाँ मृत्युलोक में स्वर्गलोक की देवियाँ हैं, सर्वगुणसंपन्ना हैं, सेवा धर्म परायणा हैं। सर्वत्र आनन्दमंगल छा रहा है और जीवन रूपी वाटिका की फूलक्यारियाँ प्रफुल्लित हो रही हैं।

बाहर प्रमुख नरदेव हैं, भीतर प्रधाना नारियाँ,
हैं कर रही कैसी व्यवस्था देख लो सुकुमारियाँ।
उनमें कलह, शैथिल्य, आलस नाम को भी हैं नहीं,
जो भी मिलेंगे गुण मिलेंगे, दोष मिलने के नहीं ॥२८०॥

जिन माता और पिता में सब दैवी गुण विद्यमान हों, उनकी संतान भला उत्कृष्ट क्यों नहीं होगी। संतान में माता और पिता के गुणों का योग होता है। संतान माता और पिता के गुणों का गुणनफल है।

दाम्पत्य जीवन—

संतान आज्ञापालिनी है नारि आज्ञाकारिणी
सब काम आज्ञाधृत्य है, समृद्धि है अनुसारिणी।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा ।।२८६।।

गृहस्थ जीवन में स्वर्गिक आनंद है। क्यों नहीं होवे, जब संतान आज्ञाकारी हो, स्त्री आज्ञावर्तिनी हो, सेवक कर्तव्यनिष्ठ हो और रिद्धि और सिद्धि पुरुषों की इच्छानुसार चलनेवाली हो। कमलों से पूर्ण निर्मल सरोवर जिस प्रकार सुशोभित होता है उसी प्रकार गृहस्थ जीवन कमल रूपी निर्मल आत्मा पुत्र स्त्री और सेवक को पाकर क्यों नहीं सुन्दर होवे।

कर्तव्याचरण—

हो कृष्णा का कुछ समय पूर्व ही सब जग गये
जिनराज का करके स्मरण सब भक्तिभाव में लगागये।
आलोचना पश्चात्ताप औ गुरुवन्दन हो गये
जो धर्म कृत्यों से निपट गृहकार्य रत सब हो गए ।।२८७।।

सर्व स्त्री पुरुष मुर्गे की बांग होने के पूर्व ही जागृत हो जाते हैं और सर्व प्रथम जिनेश्वर भगवान का ध्यान करते हैं

और प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण में वे अपने किये गये कर्मों की अलोचना और उन पर विचार करते हैं। पापसहित व्यापारों का पच्चकखाण करते हैं कि उनकी फिर आवृत्ति न हो। प्रतिक्रमण करके सर्व स्त्री, पुरुष गुरु महाराज को वंदन करने के लिये और मन्दिर का दर्शन करने जाते हैं। यो सर्व स्त्री-पुरुष प्रथम धर्मव्रतो से निवृत होकर गृहकार्य में प्रवृत होते हैं।

स्वाध्याय, पूजन, दान, संयम, तप तथा गुर्वर्चना,
कर्तव्य हैं ये नित्य के औ हैं अतिथ्यभ्यर्थना।
ये देखकर बाधा विविध रुकते न चलती राह हैं,
तन, प्राण की, धन ऐश की करते न ये परवाह हैं ॥२८८॥

शास्त्राभ्यास करना, पूजन करना, दान देना, व्रत, संकल्प करना, तपस्या करना, गुरु की सेवा करना, गुरु का मान करना और आये हुये अतिथियों का सत्कार करना इन स्त्री और पुरुषों के नित्य कर्म है। ये अपने धर्म के निश्चित और निर्दिष्ट मार्ग में सहस्रों बाधा, विघ्न आने पर भी चलते हुये नहीं रुकते हैं। धर्मकृत्यों के करने में और धर्म की आराधना करने में ये अपने शरीर, प्राण, धन और वैभव की तनिक भी चिंता नहीं करते हैं।

'वंदित्तु' से इनके व्रतो का सब पता लग जायगा-
व्यवसाय, जप, तप कर्म का सब कुछ पता लग जायगा।
निःराग हैं, निर्द्वेष हैं, निष्क्लेश ये नर नारि हैं-
उपकार कर्ता पुरुष के उत्कृत, सभी नरनारि हैं ॥२८६॥

घर के बाहर पुरुषों की प्रधानता है और घर के भीतर सब प्रकार की व्यवस्थाओं में स्त्रियों की प्रधानता है। शिथिलता, आलस्य पारस्परिक कलह आदि दोष इन स्त्रियों को छू तक नहीं पाए हैं। इन स्त्रियों में प्रयास करके एक भी किस कोई दोष नहीं मिलता गुण ही गुण मिलते।

व्यापार में व्यवसाय में उद्योग में शासन में—
नर नारि दोनों हैं कुशल संसार के हर काम में।
बल-बुद्धि प्रतिभापूर्ण हैं सब ज्ञान के भण्डार हैं
विज्ञान के कौशल्य के सौजन्य के आगार हैं ।।८९।।

स्त्री और पुरुष दोनों व्यापार में धन्धों में, उद्योग में और राज कार्य में और संसार के अन्य सब प्रकार के कार्यादि में कुशल हैं। दोनों में समान बल है बुद्धि है और प्रखर विचार शक्ति है। दोनों ज्ञानी, विज्ञानी और कलाविद हैं। दोनों सज्जन और उदार हैं।

हैं नारियाँ या देवियाँ या कल कला प्रत्यक्ष हैं
सीता पीरोमा आदर्श हैं काम कुशला दक्ष हैं।
पति धर्म है पति मर्म है पति एक उत्तम कर्म है;
वे स्फूर्ति की प्रतिमूर्ति हैं उनके नयन में राम है ।।९०।।

ये स्त्रियां स्त्रियाँ हैं, या देवलोक की देवियाँ हैं या प्रत्यक्ष कलादेवियाँ हैं। सीता, पीरोमा आदि हर काम-काज में वे अत्यन्त कुशला एवं चतुरा हैं। वे अपने एक मात्र पति को ही धर्म कर्म और मर्म समझती हैं। सब स्फूर्तिमती और लज्जावती हैं।

ये देख लो वे सज रही हैं साज नव रण के लिये,
रुक जाय नर-संहार यह, वे जा रही हैं इस लिये।
दुख है न कोई चीज उनको ऐश क्या ? आराम क्या ?
अवशिष्ट रहते कार्य के उनको भला विश्राम क्या ? ॥२८३॥

यहाँ देखिये, ये स्त्रियाँ वीरांगनाओं का वीर वेष धारण करके नये छिड़ने वाले समर को रोकने के लिये युद्धस्थल को जा रही हैं। ये स्त्रियें दुःख, सुख और आराम की तो तनिक भी परवाह नहीं करती हैं। इनके निकट कार्य का भाव होते विश्राम कोई वस्तु नहीं है।

संतान—

संतान सब गुणवान हैं, बलवान हैं, धीमान हैं,
माता, पिता में भक्ति है, सब के प्रति सम्मान है।
माता, पिता का पुत्र से, अतिशय सुता से प्रेम है,
संतान के कल्याण में माता, पिता का क्षेम है ॥२८४॥

संतान गुणवान, बलवान और बुद्धिमान है। पुत्र माता-पिता का भक्त है, वह अन्य सर्व के प्रति समान के भाव रखता है माता, पिता का पुत्र और पुत्रियों पर अनंत स्नेह है वे सदा संतान के कल्याण में अपना कल्याण समझते हैं।

जब देव सदृश हो पिता, देवी स्वरूपा मातृ हो,
संतान उत्तम क्यों नहीं, ऐसे सगुण जब पितृ हो।
पति पत्नि के गुण पुञ्ज का संतान होती योग है,
ये गुण्य-गूणक राशियों का गुणनफल है, योग है॥२८५॥
२१

जिस माता और पिता में सर्व ऐसे गुण विद्यमान हों उनकी संतान भला उत्कृष्ट क्यों नहीं होगी। संतान में माता और पिता के गुणों का योग होता है। संतान माता और पिता के गुणों का गुणनफल है।

दाम्पत्य जीवन—

संतान आज्ञापालिनी है नारि आज्ञाकारिणी
सब काम आज्ञानुरूप है समृद्धि है अनुसारिणी।
दाम्पत्य जीवन क्यों न हो फिर सौख्यकर उनका सदा,
निर्मल सरोवर पद्मयुत लगता न सुन्दर क्या सदा ?॥२८६॥

गृहस्थ जीवन में स्वर्गिक आनन्द है। क्यों नहीं होवे, जब संतान आज्ञाकारी हो स्त्री आज्ञावर्तिनी हो, सेवक कर्तव्यनिष्ठ हो और रिद्धि और सिद्धि पुरुषों की इच्छानुसार वर्तनेवाली हो। कमलों से पूर्ण निर्मल सरोवर जिस प्रकार सुशोभित होता है उसी प्रकार गृहस्थ जीवन कमल रूपी निर्मल आत्मा पुत्र स्त्री और सेवक को पाकर क्यों नहीं सुन्दर होवे।

कर्तव्याचरण—

हो कुक्कुटा का कुक इसके पूर्व ही सब जग गये,
जिनराज का करके स्मरण सब प्रतिक्रमण में लगगये।
आलोचना पच्चखान औ गुरुदेववंदन हो गये
श्री मर्म कृत्यों से निपट गृहकार्य रत सब हो गये ॥२८७॥

सर्व स्त्री पुरुष मुर्गों की बांग होने के पूर्व ही जागृत हो जाते हैं और सर्व प्रथम जिनेश्वर भगवान का ध्यान करते हैं

और प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण में वे अपने किये गये कर्मों की अलोचना और उन पर विचार करते हैं। पापसहित व्यापारों का पच्चक्खाण करते हैं कि उनकी फिर आवृति न हो। प्रतिक्रमण करके सर्व स्त्री, पुरुष गुरु महाराज को वंदन करने के लिये और मन्दिर का दर्शन करने जाते हैं। यो सर्व स्त्री-पुरुष प्रथम धर्मव्रतों से निवृत होकर गृहकार्य में प्रवृत होते हैं।

स्वाध्याय, पूजन, दान, सयम, तप तथा गुर्वर्चना,
कर्तव्य हैं ये नित्य के औ है अतिथ्यभ्यर्थना।
ये देखकर बाधा विविध रुकते न चलती राह हैं,
तन, प्राण की, धन ऐश की करते न ये परवाह हैं ॥२८८॥

शास्त्राभ्यास करना, पूजन करना, दान देना, व्रत, सकल्प करना, तपस्या करना, गुरु की सेवा करना, गुरु का मान करना और आये हुये अतिथियों का सत्कार करना इन स्त्री और पुरुषों के नित्य कर्म हैं। ये अपने धर्म के निश्चित और निर्दिष्ट मार्ग में सहस्रों बाधा, विघ्न आने पर भी चलते हुये नहीं रुकते हैं। धर्मकृत्यों के करने में और धर्म की आराधना करने में ये अपने शरीर, प्राण, धन और वैभव की तनिक भी चिंता नहीं करते हैं।

'वदित्त' से इनके उरों का सब पता लग जायगा-
व्यवसाय, जप, तप कर्म का सब कुछ पता लग जायगा।
निःराग हैं, निर्द्वेष हैं, निष्क्लेश ये नर नारि हैं,
उपकार कर्ता पुरुष के उतकृत सभी नरनारि हैं ॥२८९॥

'वंदित्तु' जैन शास्त्रों में एक आलोचना का अध्याय है। इस अध्याय में ५० श्लोक हैं। इन श्लोकों में कर्तव्याकर्तव्य, धर्मा-धर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन है। प्रतिक्रमण करते समय श्रावक स्त्री, पुरुष इस अध्याय का पाठ करते हैं। सर्व स्त्री और पुरुष रागद्वेषरहित हैं प्रमाद से दूर हैं और उपकारी के प्रति कृतज्ञ हैं।

मन्दिरों का वैभव—

ये सूर्योदय के पूर्व ही हैं देवमन्दिर खुल गये
ये ईश के दरबार में सरदार आकर जम गये।
आह्लादकारी घंटारव भी व्योम में है छा रहा
है भक्तजन के कण्ठ से संगीत कीर्तन गा रहा ॥२६०॥

सूर्योदय के पूर्व ही मन्दिर खुल गये हैं भगवान की मूर्ति के समक्ष भक्तजनों की सभा लग रही है आनन्द देने वाले घण्टों की मधुर ध्वनि से आकाश और पृथ्वी गुंजित हो रहे हैं और भक्तजन मधुर कण्ठों से ईश कीर्तन कर रहे हैं।

है मन्दिरों का परम-वैभव स्वर्गपुर का-सा सही
नर्तन कहीं सुरनर्तकी का गान कण्ठों का कहीं।
रवि चन्द्र का है भान मधुर दीपमाला कर रही
है भक्तजन के कीर्तनों से गूँजती मण्डप मही ॥२६१॥

मंदिर मालाओं की शोभा और वैभव अमरपुरी की शोभा और वैभव-सी है। कहीं देवाङ्गनाओं का नर्तन हो रहा है, कहीं गायक मधुर कण्ठ से संगीत कर रहे हैं सूर्य और चन्द्र के

प्रकाश को भी लज्जित करने वाली दीपमालायें जगमगा रही हैं। और भक्तजनों के कीर्तनों की ध्वनि से पृथ्वी मण्डल पूर्ण हो रहा है।

सम्राट सम्प्रति चैत्यवदन कर रहे हैं लेख लो,
सामन्त पूजा कर रहे हैं भक्ति पूर्वक पेख लो।
वदन सुदर्शन श्रेष्ठि सुत हैं शिर झुकाकर कर रहे,
श्रावक, श्रमण सब वदना कर लौटकर हैं जा रहे ॥२६२॥

सम्राट सम्प्रति देवदर्शन कर रहे हैं। भक्तिभावों से भरे हुये उनके सामतगण पूजन कर रहे हैं। सुदर्शन श्रेष्ठि भगवान के बिंब को वदन कर रहे हैं। दर्शकगण दर्शन करके पुनः घर के प्रति लौट रहे हैं।

इन मन्दिरों से प्राण अब तक धर्म हैं पाते रहे,
मस्जिद, मकबरे और गिर्जागृह यही बतला रहे।
पर आज के हा! सभ्यजन इनको मिटाना चाहते,
ये बाध ग्रंवा में उपल हैं डूब मरना चाहते ॥२६३॥

इन देवमन्दिरों ने आज तक धर्म के स्थायीत्व को स्थिर रक्खा है, यह ससार के समस्त मस्जिद, मकबरे और गिर्जागृह स्पष्ट प्रमाणित कर रहे हैं। धर्म के ऐसे स्तभों को, परन्तु, आज की सभ्यता में पले मनुष्य स्थिर रहने देना नहीं चाहते हैं। ये अपने कण्ठ में शिला बांधकर ससार रूपी महा सागर में निमग्न होना चाहते हैं।

कुछ लक्ष्य भेदन, शब्दभेदन, द्वन्द्वरण हैं कर रहे,
रविदेश को ढकने किसी के कर कलावत चल रहे ॥२६६॥

शहर से दूर एकान्त निर्जन स्थान में विद्यार्थीगण को गुरुगण शस्त्रास्त्र का प्रयोग सिखा रहे हैं। सामने विराजमान गुरु पर शिष्यगण वाण चला रहे हैं और वे वाण गुरु को पुष्प के समान छूकर गिर रहे हैं। कुछ विद्यार्थी निश्चित लक्ष्य पर, कुछ शब्द के घोष पर वाण चला रहे हैं। कुछ द्वन्द्वयुद्ध कर रहे हैं और कुछ विद्यार्थियों के हाथ सूर्यदेव को वाणों से आच्छादित करने की दृष्टि से यन्त्रगति से चल रहे हैं।

हे पाठको! अब वाण ये सब एक पर चलने लगे,
जाकर इधर शरचक्र से कच-व्याल से कटने लगे।
गिरिराज का कोई गदा से चूर्ण मर्दन कर रहा,
करतल लिये अगखण्ड, कोई चक्रवत घूमा रहा ॥२६७॥

हे पाठक वृंद! व्यक्तिगत अभ्यास हो जाने के पश्चात अब सब विद्यार्थी एक साथ एक अद्वितीय धनुर्धर विद्यार्थी पर वाणवर्षा कर रहे हैं और वह विद्यार्थी चक्र को यन्त्रगति से घुमा रहा है और सर्व वाण चक्र से सर्पों के सदृश सहज कट कट कर भूपर पतित हो रहे हैं। कोई विद्यार्थी पर्वत का खण्ड लेकर ही उसे अपनी करतली पर घुमा रहा है।

उपाश्रय—

हैं मंच पर बैठे हुये उपदेश गुरुवर दे रहे,
इसलोक के परलोक के ये मर्म हैं समझा रहे।

सब सुर, असुर, नरेन्द्र हैं व्याख्यान में बैठ हुये
परिषद विसर्जित हो गई जिनराजजय कहत हुये ॥२१८॥

गुरु महाराज आसनारूढ़ होकर इहलोक और देव लोक और मोक्ष लोक की बातें समझाते हुये व्याख्यान दे रहे हैं और देवता इन्द्र राजा सभी ही व्याख्यान में संमिलित हैं। 'जिनेश्वर भगवान की जय' कह कर सभा विसर्जित हो गई।

अरिहंत का स्वागत—

कर बद्ध करके चरण नंगे भूपति हैं चल रहे
चतुर्विध सजकर सैन्य हैं सामंत पीछे चल रहे।
वाद्यन्त्र के निर्घोष से है व्योम पूरित हो रहा
जिन स्वागतोत्सव देववर के दले हैं हो रहा ॥२१९॥

उद्यान मनोहर की अमर हैं रम्य रचना कर रहे
अरिहंत का सुर मणिजटित आसन यहाँ हैं धर रहे।
लो! देशना देने लगे विभुमञ्च पर अब बैठकर
तिर्यंच तक रस ले रहे हैं मातृभाषा श्रवण कर ॥२२०॥

भगवान् तीर्थंकर का शुभागमन हो रहा है। स्वागत करते समय सम्राट हाथ जोड़े हुये नंगे चरण आगे आगे चल रहे हैं। उनके साथ तथा चतुर्विध सैन्य के साथ सामंत पीछे २ चल रहे हैं। वाद्यों के घोष से चारों दिशायें व्याप्त हो रही हैं। भगवान का स्वागत सहस्राम्रवन के बीच हो रहा है। देवगण समवोशरण की रचना कर रहे हैं और भगवान् के विराजने के लिये रत्नों का आसन रख रहे हैं। व देखिये! भगवान् आसन

पर विराजमान होकर उपदेश देने लगे हैं। देवता और पुरुष तो क्या तिर्यंच प्राणी तक भगवान के उपदेश का अपनी जिह्वा में श्रवण कर रहे हैं।

भोजनवेला—

हैं देवियाँ देखो, गृहों में पाक-व्यञ्जन कर रहीं;
आकर प्रतीक्षा द्वार पर हैं साधु, मुनि की कर रहीं।
यदि आ गया मुनि, ब्रह्मचारी भाग्य उनके जग गये,
सब को खिला कर खा रहीं, भोजन नवागत कर गये॥२०१॥

देखो, देवियों की समता करने वाली स्त्रियां गृहों में पाक और भोजन बना रही हैं। द्वार पर खड़ी होकर साधुमुनि की प्रतिक्षा कर रही हैं। साधु, मुनि, ब्रह्मचारी विद्यार्थी का वे स्वागत कर अपना अहोभाग्य समझ रही हैं। अतिथि, परिजन सर्व भोजन कर चुके हैं। अब वे भोजन कर रही हैं।

हाटमाला—

देखो, यहाँ है हाटमाला स्वर्ण सुन्दर लग रही,
भूषण इधर को, वस्त्र की इस ओर विक्री हो रही।
ग्राहक जुड़े हैं हाट पर, बिन भाव पूछे ले रहे,
हैं शाह जी के सत्य की सुर नृप परीक्षा ले रहे॥२०२॥

देखिये। यहाँ हाटमाला कितनी स्वर्णाभ सुन्दर लग रही है। एक ओर आभूषणों की विक्री हो रही है और दूसरी ओर वस्त्रों का विक्रय हो रहा है। दुकानों पर ग्राहकों की भीड़ लगी है। ग्राहकों का दुकान दारों की सत्यता में पूर्ण

सप्तसुर, मधुर, देवेन्द्र हैं व्याख्यान में बैठ हुये
परिषद् विसर्जित हो गई जिनराजजय कहते हुये ।।२९८।।

गुरु महाराज आसनारूढ़ होकर इहलोक और देव लोक और मोक्ष लोक की बातें समझाते हुये व्याख्यान दे रहे हैं और देवता इन्द्र राजा सभी ही व्याख्यान में संमिलित हैं। जिनेश्वर भगवान की जय' कह कर सभा विसर्जित हो गई।

अरिहंत का स्वागत—

कर बद्ध करके चरण नंगे भूपति हैं चल रहे।
चतुर्विध सजकर सैन्य हैं सामंत पीछे चल रहे।
वाद्यंत्र के निर्घोष से है व्योम पूरित हो रहा
जिन स्वागतोत्सव देवदरबार के तले है हो रहा ।।२९९।।

उपवन मनोहर की अमर हैं रम्य रचना कर रहे
अरिहंत का सुर मणिजड़ित आसन यहाँ हैं धर रहे।
लो! देशना देने लगे त्रिभुवनपति पर अब बैठकर
तिर्यंच तक रस ले रहे हैं मानुषिक भाषा पर ।।३००।।

भगवान् तीर्थंकर का शुभागमन हो रहा है। स्वागत करने स्वयं सम्राट हाथ जोड़े हुए नंगे चरण आगे आगे चल रहे हैं। उनके साथ समस्त चतुर्विध सैन्य के साथ सामंत पीछे २ चल
वाद्य यंत्रों के घोष से चारों दिशायें व्याप्त हो रही हैं। भगवान का स्वागत सहस्राम्रवन के बीच हो रहा है। देवतागण समवोसरण की रचना कर रहे हैं और भगवान् के विराजने के लिये रत्नों का आसन रख रहे हैं। वे देखिये ! भगवान आसन

पर विराजमान होकर उपदेश देने लगे हैं। देवता और पुरुष तो क्या तिर्यंच प्राणी तक भगवान के उपदेश को अपनी जिह्वा में श्रवण कर रहे हैं।

भोजनवेला—

हैं देवियों देखो, गृहों में पाक-व्यञ्जन कर रहीं;
आकर प्रतीक्षा द्वार पर हैं साधु, मुनि की कर रहीं।
यदि आ गया मुनि, ब्रह्मचारी भाग्य उनके जग गये,
सब को खिला कर खा रहीं, भोजन नवागत कर गये॥२०१॥

देखो, देवियों की समता करने वाली स्त्रियां गृहों में पाक और भोजन बना रही हैं। द्वार पर खड़ी होकर साधुमुनि की प्रतीक्षा कर रही हैं। साधु, मुनि, ब्रह्मचारी विद्यार्थी का वे स्वागत कर अपना अहोभाग्य समझ रही हैं। अतिथि, परिजन सर्व भोजन कर चुके हैं। अब वे भोजन कर रही हैं।

हाटमाला—

देखो, यहाँ है हाटमाला स्वर्ण सुन्दर लग रही,
भूषण उधर को, वस्त्र की इस ओर विक्री हो रही।
ग्राहक जुड़े हैं हाट पर, बिन भाव पूछे ले रहे,
हैं शाह जी के सत्य की सुर नृप परीक्षा ले रहे॥२०२॥

देखिये। यहां हाटमाला कितनी स्वर्णाभ सुन्दर लग रही है। एक ओर आभूषणों की विक्री हो रही है और दूसरी ओर वस्त्रों का विक्रय हो रहा है। दुकानों पर ग्राहकों की भीड़ लगी है। ग्राहकों का दुकान दारों की सत्यता में पूर्ण

विश्वास है। माहक बिना पूछ वस्तुओं का क्रय कर रहे हैं। देखता गया और राजा दुकानदारों की सरलता की माहकों में मिलकर परीक्षा कर रहे हैं।

राजप्रासाद—

ये चक्रवर्ती नृप के प्रासाद हैं, तुम देखलो
आमात्यवर स कर रहे हैं मंत्रणा नृप आलखो।
साम्राज्य में मेरे कहींभी ओर कपट है नहीं
हो देश विश्व स्वर्गसम करना मुझे मंत्री! यही ॥१०२

ये सार्वभौम सम्राट के राजप्रासाद हैं। सम्राट और महात्मा परस्पर मंत्रणा कर रहे हैं। सम्राट महात्मा से अपने विचार कह रहे हैं। आमात्यवर! मेरी प्रजा को चोर, तस्करों का कोई भय नहीं है परन्तु इतने मे मुझको संतोष नहीं है। स्वर्ग के समान मेरा देश हो और देव और देवियों के समान मेरे साम्राज्य के सब पुरुष और स्त्री सुखी समृद्ध, तपस्वी, गुणी और पराक्रमी हो मेरा प्रमुख ध्येय है।

पारस्परिक व्यवहार—

राजा प्रजा में प्रेम है सौहार्द है अनुराग है
द्विज क्षत्र आदि वर्ण में सब प्रेम का ही भाग है।
वैमनस्य कुत्सित द्वेष का तो नाम तक भी है नहीं;
अपवर्ग भारतवर्ष है ऐसी न कोई है मही ॥१४॥

राजा और प्रजा में परस्पर सहयोग भावना प्रेम और प्रीति है। ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में
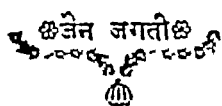
परस्पर अगाध प्रेम का संबंध है। राग, द्वेषादि कुत्सित भावनाओं का कहीं भी चिह्न तक नहीं दिखाई पड़ता है। भारत वर्ष मृत्युलोक में स्वर्ग का अवतार है। इसकी समता करने वाला अन्य कोई ऐसा समृद्ध, सुखी देश नहीं है।

कार्यविभाग—

आचार्य धर्माध्यक्ष हैं, क्षत्री सभी रणधीर हैं,
हैं विप्र शिक्षक वर यहाँ, अंत्यज कलाधर वीर हैं।
ये वैश्य सब व्यापार में, व्यवसाय में निष्णात हैं,
उद्योत आठों याम है, होती न तमभृत रात है ॥२०५॥

साधु, मुनि, त्यागी, विरक्तों का प्रमुख कर्तव्य धर्माराधना, करना, कराना और करवाना है। क्षत्रियों का प्रमुख कर्म आततायी, आक्रमण कारियों के विरुद्ध युद्ध का लड़ना है। ब्राह्मणों का मुख्य कर्म विद्याध्यन करना और कराना है। शूद्रों का प्रमुख कर्तव्य इतर वर्णों की सेवा करना और कला-कौशल में दक्ष होना और अवसर पर रण में योद्धा बनकर भाग लेना है। वैश्य कुशल व्यापारी है। रात और दिवस सुख के प्रकाश से प्रकाशित है। दुःख का अंधकार बढ़ाने वाली रात्रि होती ही नहीं है।

दानालय—

नंगे निरन्नों को यहाँ हैं वस्त्र, भोजन मिल रहे,
कहते न उनको दीन, हैं आतिथ्य उनका कर रहे।
हो स्वर्णयुग चाहे भले, पर रंक तो रहता सदा,
तम-तोम का शुचि दिवस में भी अंश तो मिलता सदा॥२०६॥

दानशालाओं में धनहीनों को वस्त्र और दुखियों को भोजन दिये जा रहे हैं। दानागम्य इनको दीन समझ कर इनके साथ अपमान भरा व्यवहार नहीं कर रहे हैं, वरन् इनके साथ आतिथ्य व्यवहार कर रहे हैं। कोई भी युग अब अधिक से अधिक समृद्ध क्यों न होवे निर्धन और दुखियों का किर भी भाव तो रहेगा ही चाहे वह भाव न्यूनतम भले हो। दिन कितना भी प्रकाश पूर्ण क्यों न हो कहीं न कहीं अंधकार की रेखा तो विद्यमान मिलेगी ही।

गद्यानुवाद—

> आनंद कुमार नंदिनीप्रिय के घरों को देखिये
> बहती जहाँ थी दुग्ध की धारा सहस्र देखिये।
> हा! आज गौ पर हो रहा हर ठौर रक्तपात है
> पय दुग्ध देती है उसी पर हा! कुठाराघात है ॥१०७॥

आनंद कुमार और नंदिनी प्रिय कई कोटि स्वर्णमुद्राओं के स्वामी और सहस्रों गौओं के पति थे। इनके घरों से घी दूध दही तक की नदियाँ बहती थीं। कितना दुख है आज दूध देनेवाली उन्हीं गौ माताओं का वध होता है।

विहंग पद्यानुवाद—

> अज अश्व गौ गज सिंह मृग है एक कुल में रह रहे।
> पिक कपि कोकिल सारिका पतंग यहीं हैं रह रहे।
> आश्चर्य है, ए किस तरह सारंग पतंग मिल रहे
> उनकी कथा न जानते हम तो कथा है कह रहे ॥१०८॥

बकरी, घोड़ा, गाय, हाथी, सिंह, हिरण और कोयल, तोता, मैना, मोर, सर्प सब एक ही स्थान में निर्बंध प्रेमपूर्वक रह रहे हैं। हम तो मात्र कहानी कह रहे हैं। परन्तु आश्चर्य होता है सिंह और गौ, बकरी आदि और मयूर और सर्पादि कितने अगाध प्रेम से साथ साथ रह रहे हैं। यह कला वे पूर्वज ही जानते थे।

निःशुल्क—

निःशुल्क होती है चिकित्सा, शुल्क कुछ भी है नहीं,
देखो, मनुज, पशु, आदि सब की है चिकित्सा हो रही।
यति कुल लखो है आज भी निःशुल्क औषध दे रहा,
वह भूत भारतवर्ष का औदार्य है झलका रहा ॥२०९॥

चिकित्सालय को देखिये, मनुष्य, पशु सर्व प्राणियों की बिना पैसा दिये चिकित्सा हो रही है। हमारा जैन यतिसम्प्रदाय आज भी अधिकांश में बिना पैसा लिये चिकित्सा कर्म कर रहे हैं। यतिवर्ग को निःशुल्क चिकित्सा करते देखकर भारतवर्ष के अतीत औदार्य भाव की हमको स्मृति हो आती है।

ग्राम-नगर—

हैं ग्राम, पुर, सारे सहोदर, प्रेममय व्यवहार है,
हर एक का दुख, सुख यहाँ दुख भार है, सुख सार है।
सब के भरण पोषण निमित ये कृषक करते काम हैं,
हैं अस्थियाँ तक घिस गई, कुछ शेष तन पर चाम है॥२१०॥

दानशालाओं में असहायों को अन्न और दुखियों को भोजन दिये जा रहे हैं। दातागण इनको दीन समझ कर इनके साथ अपमान भरा व्यवहार नहीं कर रहे हैं वरन् इनके साथ आतिथ्य व्यवहार कर रहे हैं। कोई भी युग भले अधिक से अधिक समृद्ध क्यों न होवे, विषम और दुखियों का भिन्न भाव तो रहेगा ही चाहे वह भाव न्यूनतम भले हो। दिन कितना भी प्रकाश पूर्ण क्यों न हो, कहीं न कहीं अंधकार की रेखा तो विद्यमान मिलेगी ही।

गवालय—

आनंद सुभद्र मंदिमीप्रिय क घरों को देखिये
बहती जहाँ सुधि दुग्ध की न (सहज नाप लेखिये।
हा! आज गौ पर हो रहा हर ठौर आघात है
पय दुग्ध देती है, उसी पर हा! कुठाराघात है ॥२०॥

आनंद सुभद्र और मंदिमी प्रिय कई कोटि स्वर्णमुद्राओं के स्वामी और सहस्रों गौओं के पति थे। इनके यहाँ से दूध दही तक की नदियाँ बहती थीं। कितना दुख है आज दूध देनेवाली उन्हीं गौ माताओं का वध होता है।

विहंग परवालय—

अज अश्व गौ गज सिंह मृग हैं एक कुल में रह रहे
पिक केकि कोकिल सारिका खग गण जहाँ हैं रह रहे।
आश्चर्य है, ए किस तरह सारंग खग गण मित्र से
उनकी कथा न जानते हम तो कथा हैं कह रहे ॥२१॥

तीर्थयात्रा—

अब अंत में वर्णन तुम्हें हम तीर्थयात्रा का कहें,
फिर से सभी वातावरण संक्षेप में सारा कहें।
धन, ऐश, वैभव आदि सब का कुछ पता मिल जायगा,
कुछ उक्त में से हो गया विस्मृत, नया हो जायगा ॥२१७॥

पाठको! अब आपके समक्ष हम अन्तिम वर्णन तीर्थयात्रा का करेंगे। ऊपर वर्णित वातावरण का भी इस प्रसंग में संक्षिप्त परिचय और आपको मिल जायगा और जो विस्मृत हो गया है, वह पुनः ताजा हो जायगा। तीर्थयात्रा के वर्णन से आपको हमारे अतीत धन, ऐश्वर्य और वैभव का भी कुछ २ परिचय मिल जायगा।

है तीर्थयात्रा चीज क्या ? श्री संघ फिर क्या है अहो!
जातीय सम्मेलन अहो! ये घट गये कब से कहो!
क्यों श्रमण, श्रावक उस तरह से आज मिलते हैं नहीं,
क्यों देश, जाति सुधर्म पर सुविचार अब होते नहीं ॥२१८॥

श्री संघ और तीर्थयात्रा किसे कहते हैं, कौन नहीं जानता है ? साधु और श्रावक वर्तमान में उस भाँति मिलकर देश, समाज और धर्म के उत्थान की चर्चा अब क्यों नहीं करते हैं ?

श्री तीर्थयात्रा के लिये हर वर्ष जाते संघ थे,
होते शकट, गज, अश्व के अति भूरि संख्यक संघ थे।
आचार्य होते थे विनायक, संघपति भूपेन्द्र थे,
थे अंग रक्षक क्षत्रपति, जिनके निरीक्षक इन्द्र थे ॥२१९॥

प्रतिवर्ष श्री संघ तीर्थयात्रा करने के लिये निकलते थे।

१२

इतने यहाँ होते नहीं घूँस के व्यापार हैं
ग्रामीण जन पर नाम से होते न अत्याचार हैं।
नृप आप जाकर ग्राम में पूछते 'क्या हाल है'?
कैसा प्रजापति वह प्रजा काटें न दुख तत्काल है ॥११४॥

आज जैसा ग्रामीणजनों के साथ असभ्यता और दुरा-चार का व्यवहार किया जाता है तथा जैसी रिश्वतखोरी चलती है वैसी रिश्वतखोरी और अत्याचार उस समय में नहीं थे। स्वयं महाराज ग्राम ग्राम जाकर वहाँ के निवासियों के दुःख दर्द को देखते थे और तत्काल उसको दूर करते थे। वह राजा कैसा जो अपनी प्रजा के दुख दर्द को मिटाने में असमर्थ सिद्ध होता है?

थी भ्रूणहत्या अपहरण देखे कहीं होते नहीं,
दुःशीलता की बात क्या! रतिचार विष छूते नहीं।
हा! वृद्ध भारत! पुत्र तेरे जन्मते थे गुण भरे,
हा! दैव! अब तो मौन भी हैं दीखते अवगुण भरे ॥ ॥११५॥

गर्भ का गिराना, स्त्रियों का घर से भागना व्यभिचार उस काल में नहीं थे। होते भी कहाँ से जब काम वासनाओं का विकास रति मन में भी होने दिया ही नहीं जाता था। हा! वृद्ध भारतवर्ष! जहाँ तेरी संतान जन्मते ही सब गुण सम्पन्न होती थी वहाँ आज सब दोषविपन्न जन्मती हैं।

तीर्थयात्रा—

अब अंत में वर्णन तुम्हें हम तीर्थयात्रा का कहें,
फिर से सभी वातावरण संक्षेप में सारा कहें।
धन, ऐश, वैभव आदि सब का कुछ पता मिल जायगा,
कुछ उक्त में से हो गया विस्मृत, नया हो जायगा ॥२१७॥

पाठको! अब आपके समक्ष हम अन्तिम वर्णन तीर्थयात्रा का करेंगे। ऊपर वर्णित वातावरण का भी इस प्रसंग में संक्षिप्त परिचय और आपको मिल जायगा और जो विस्मृत हो गया है, वह पुनः ताजा हो जायगा। तीर्थयात्रा के वर्णन से आपको हमारे अतीत धन, ऐश्वर्य और वैभव का भी कुछ २ परिचय मिल जायगा।

है तीर्थयात्रा चीज क्या? श्री संघ फिर क्या है अहो!
जातीय सम्मेलन अहो! ये घट गये कब से कहो!
क्यों श्रमण, श्रावक उस तरह से आज मिलते हैं नहीं,
क्यों देश, जाति सुधर्म पर सुविचार अब होते नहीं ॥२१८॥

श्री संघ और तीर्थयात्रा किसे कहते हैं, कौन नहीं जानता है? साधु और श्रावक वर्तमान में उस भाँति मिलकर देश, समाज और धर्म के उत्थान की चर्चा अब क्यों नहीं करते हैं?

श्री तीर्थयात्रा के लिये हर वर्ष जाते संघ थे,
होते शकट, गज, अश्व के अति भूरि संख्यक संघ थे।
आचार्य होते थे विनायक, संघपति भूपेन्द्र थे,
थे अंग रक्षक छत्रपति, जिनके निरीक्षक इन्द्र थे ॥२१९॥

प्रतिवर्ष श्री संघ तीर्थयात्रा करने के लिये निकलते थे।
१२

कैसा निकाला संघ था सम्राट संप्रति ने अहो,
ऋषि, इन्द्र जिसको देख कर थे रह गये स्तंभित अहो।
गज, अश्व वाहन शकट की गिनती नहीं पर थी नहीं
नरनारि की गणना मना फिर हो सके संभव कहीं ॥१२४॥

सम्राट संप्रति ने जो संघ निकाला उसकी महिमा आजतक गाई जाती है। हाथी घोड़े रथ वाहनों की उस संघ में गणना ही नहीं थी। स्त्री और पुरुषों की गणना करना किस भी प्रकार संभव नहीं था। उस संघ को अवलोक कर देवलोक के इन्द्र और इन्द्राणी भी आश्चर्यान्वित हो गये थे।

श्री चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र ने नृपेन्द्र कुमारपाल ने—
राजर्षि उदयन शांतनिक हविपाहआजयपाल ने
सब ने निकाले संघ थे उल्लेख मिलते हैं अभी,
सरवर सुदर्शन शिलाओ है कह रहा वर्णन सभी ॥१२५॥

सम्राट चन्द्रगुप्त ने गिरनारजी की संघ-यात्रा की थी। इसी प्रकार महाराजा कुमारपाल ने उदयन ने शांतनिक और चंपा श्रेष्ठि हविपाहन ने भी संघ निकाले थे। जूनागढ़ की तलेटी में सरवर सुदर्शन आया हुआ है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्रगुप्त संप्रति कुमारपाल ने करवाया था।

चरम तीर्थंकार भगवान महावीर

प्रभु पार्श्व को इतिहासवेत्ता सब उचर हैं मानते
पश्चात् का कैसा किया प्रतिवाद तत्सम जानते।
प्रभु पार्श्व विभु वीर का यदि जन्म जो होता नहीं
फिर इस नृसंसाचार का क्या पार कुछ रहता कहीं ॥१२६॥

यह तो प्रायः सभी को विदित है कि भगवान् पार्श्व नाथ के समय में हिंसावृत्ति अधिक बढ गई थी और भगवान् महावीर के अवतरण के समय तो यह चरमता को प्राप्त हो गई थी। यहाँ यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि भगवान् पार्श्व-नाथ और महावीर ने इस हिंसा प्रकार को कहाँ तक निःजड़ किया। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि अगर ये विभूतियें नहीं हुई होती तो सम्भव है आज भारतवर्ष समूल हिंसक मिलता।

वे त्याग कर प्रासाद को दुखशेल कटकयुत चले,
था चण्डकौशिक ने डसा विभुवीर को, क्या मुड़ चले ?
थे तीक्ष्ण कीले कर्ण में विभुवीर के ठोके गये,
इससे हुआ क्या ? कायोत्सर्ग से क्या डिग गये ?॥१२७॥

चण्डकौशिक–यह पूर्व भाव में क्षमक था। यह मर कर फिर कनकखल आश्रम के अधिष्ठाता की स्त्री के गर्भ से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ और इसका नाम कौशिक रक्खा गया। यह अति क्रोधी था अत. इसे तापसगण चण्डकौशिक कह कर पुकारते थे। अपने पिता के मरण के पश्चात इसने सब तपस्वियों को आश्रम से बाहर निकाल दिया और जोकोई भी नर पशु, जीव उस वनखण्ड में आ जाता यह उसे मारी मार मारे विना नहीं छोड़ता। इस प्रकार यह अपना जीवन विताने लगा। एक दिन यह कहीं आश्रम से बाहर गया था कि पीछे से कुछ तापस कुमारों ने इसके उपवन को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। जब यह वापिस आया और अपने उपवन को नष्ट-प्राय देखा

अगणित वाहन, हाथी घोड़े उस संघ में होते थे। संघपति राजा आदि महापुण्यवान पुरुष होते थे। संघ के अधिष्ठाता आचार्य महाराज होते थे। सामन्तगण संघ के संरक्षक होते थे और स्वयं इन्द्र महिर्लिंग संघ का निरीक्षण करते थे।

> ये पहुँच कर सब तीर्थ धर्मोत्सव करते वहाँ
> सब काटने भव कर्मरस धर्माचरण करते वहाँ
> सब से वहाँ पर पहुँच कर नृप क्षेम-शाता पूछते
> आचार्य के ये चरण नृप कौशेय लेकर पूँछते ॥१२०॥

संघ जब विशिष्ट तीर्थ पर पहुँच जाता था संघपति राजा उस संघ में आये हुये सब सज्जनों से सुख-शाता पूछकर आचार्य महाराज के चरणों पर मार्ग में पैदल चलने के कारण लगी हुई रज को अपने दुपट्टे से पूँछते थे। तत्पश्चात् सब जन पाप समूह को नष्ट करने वाली धर्म क्रिया के करने में संलग्न हो जाते थे।

> पश्चात् इसके दान की गृह त्याग की सुसरी चली
> वह दीन गहरा उजड़ जीवन को सरस करती चली।
> नित वैराग्य होती वहाँ गुरु राज की अमृत भरी
> यों तीर्थ शोभा देख कर होती मलामन सुरपुरी ॥१२१॥

धर्म क्रिया सामायिक व्रत उपवास आदि करने के पश्चात् संघ में आये हुए सज्जन अतुल दान देना प्रारंभ करते थे और अनेक सज्जन संसार, घर, परिवार पुत्र, स्त्री को छोड़कर सन्यास ग्रहण करते थे। सन्यास ग्रहण करने वाले पुरुष और अन्य

पुरुष इतना दान देते थे कि कंकाल, दीन धनी हो जाते थे और उनके शुष्क जीवन हरे-भरे होजाते थे। इन अवसरों पर तीर्थ की छटा अमरावती की शोभा को भी नीचा दिखाने वाली होती थी।

थी देश, जाति, स्वधर्म पर तब मन्त्रणा होती वहाँ,
होते वहाँ प्रस्ताव थे, नियमावली बनती वहाँ।
अपराध थे जिनने किये, वे दण्ड खुद लेते सभी,
उपवास, प्रत्याख्यान, पौषध वे वहाँ करते सभी॥२२२॥

सभायें होती थीं और उन सभाओं में देश, समाज और धर्म की उन्नतिविषयक चर्चायें होती थीं। प्रस्ताव रखे जाते थे। कार्यक्रम और व्यवस्था सम्बन्धी नियमावलियें बनायी जाती थीं। अपराधी स्वयं अपने आप दण्ड ग्रहण करते थे। दण्ड रूप में वे कठिन उपवास, व्रत, पौषध आदि तप की क्रियायें करके प्रायश्चित करते थे।

स्थापित सभायें हो गईं, जब कार्य निश्चित हो गये,
अध्यक्ष, मंत्री, कार्यकर्ता, सभ्य घोषित हो गये,
जब देश, धर्म, समाज के हल प्रश्न सारे हो गये,
तब संघपति के कथन से प्रस्थान सब के हो गये॥२२३॥

जब सभाओं की स्थापना, कार्यक्रम का निश्चयीकरण, सभापति, मंत्री, सदस्य और कार्यकर्ताओं का निर्वाचन और देश, समाज और धर्म संबंधी सर्व प्रश्नों का सुलझावन हो चुकता था तब श्री संघ संघपति का आदेश प्राप्त कर तीर्थ से प्रस्थान करता था।

कैसा निकाला संघ था सम्राट संप्रति ने कहो,
शचि इन्द्र जिसको देख कर थे रह गए स्तंभित अहो।
गज, अश्व वाहन शकट की गिनती कहाँ पर थी नहीं
नरनारि की गणना भला फिर हो सके संभव कहीं ॥१२४॥

सम्राट संप्रति ने जो संघ निकाला उसकी महिमा आजतक गाई जाती है। हाँथी घोड़ों रथ वाहनों की उस संघ में गणना ही नहीं थी। स्त्री और पुरुषों की गणना करना किस भी प्रकार संभव नहीं था। उस संघ को अवलोक कर स्वर्गलोक के इन्द्र और इन्द्राणी भी आश्चर्यान्वित हो गये थे।

श्री चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र ने भूपेन्द्र कुमारपाल ने—
राजर्षि वस्तुपाल शांतिमिल हस्तिवाहनमालपपाल ने
सब ने निकाले संघ थे अलेख मिलते हैं अभी
सरवर, सुदर्शन जिनको है बद रहा बर्णन सभी ॥१२५॥

सम्राट चन्द्रगुप्त ने विमलाचल की संघ-यात्रा की थी। इसी प्रकार महाराजा कुमारपाल ने वस्तुपाल ने शांतमिक और चंपा नरेश हस्तिवाहन ने भी संघ निकाले थे। जूनागढ़ की तलेटी में सरवर सुदर्शन आया हुआ है। इसका जीर्णोद्धार राजा चन्द्रगुप्त संप्रति कुमारपाल ने करवाया था।

चरम तीर्थंकर भगवान महावीर

प्रभु पार्श्व को इतिहासवेत्ता सब तरह हैं मानते
पद्मपाद का कैसा किया प्रतिवाद सज्जन जानते।
प्रभु पार्श्वका शिशु वीर का यदि जन्म जो होता नहीं
फिर इस मुसंस्थाचार का क्या पार कुछ रहता कहीं ॥१२६॥

यह तो प्रायः सभी को विदित है कि भगवान् पार्श्वनाथ के समय में हिंसावृत्ति अधिक बढ गई थी और भगवान् महावीर के अवतरण के समय तो यह चरमता को प्राप्त हो गई थी। यहाँ यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर ने इस हिंसा प्रकार को कहाँ तक निःजड किया। परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि अगर ये विभूतियें नहीं हुई होतीं तो सम्भव है आज भारतवर्ष समूल हिंसक मिलता।

वे त्याग कर प्रामाद को दुग्रशैल कटकयुत चले,
था चण्डकौशिक ने डसा विभुवीर को, क्या मुड़ चले ?
थे तीक्ष्ण कीले कर्ण में विभुवीर के ठोके गये,
इससे हुआ क्या ? कायोत्सर्ग से क्या डिग गये ?॥३२७॥

चण्डकौशिक-यह पूर्व भाव में क्षमक था। यह मर कर फिर कनकवल आश्रम के अधिष्ठाता की स्त्री के गर्भ से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ और इसका नाम कौशिक रक्खा गया। यह अति क्रोधी था अत इसे तापसगण चण्डकौशिक कह कर पुकारते थे। अपने पिता के मरण के पश्चात इसने सब तपस्वियों को आश्रम से बाहर निकाल दिया और जोकोई भी नर पशु, जीव उस वनखण्ड में आ जाता यह उसे भारी मार मारे विना नहीं छोडता। इस प्रकार यह अपना जीवन बिताने लगा। एक दिन यह कहीं आश्रम से बाहर गया था कि पीछे से कुछ तापस कुमारों ने इसके उपवन को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। जब यह वापिस आया और अपने उपवन को नष्ट-प्राय देखा

तो हाथ में कुल्हाड़ा लेकर वन तापस कुमारों को मारने दौड़ा। बड़े वेग से दौड़ रहा था कि अचानक ठोकर खाकर गिर पड़ा और कुल्हाड़ा की धार से इसका सिर कट गया। यह तब मर कर सर्पयोनी में उत्पन्न हुआ और इसी वन में रहता था। इसकी भय कर फुत्कार से यह वन सदा गूं जता रहता था। वृक्ष सब जल गये थे। पशु पक्षी इस वन में पर तक नहीं रखते थे। ऐसे विकट वन में जहाँ चण्डकौशिक का एक छत्र साम्राज्य था भगवान् कायोत्सर्ग में रहे। चण्डकौशिक ने भगवान को तीन बार डसा लेकिन फिर भी भगवान को अचल देखकर यह विस्मित हुआ और भगवान से क्षमा निवेदन करने लगा। भगवान ने इसको ज्ञान दिया और यह फिर मरकर देवलोक में देवता रूप से उत्पन्न हुआ।

एक समय भगवान् महावीर एक वन में कायोत्सर्ग में खड़े थे। वहाँ पर एक ग्वाला अपने बैल चरा रहा था। कुछ कार्य वश यह ग्वाला अपने बैलों को वहीं छोड़ कर कहीं चला गया। जब ग्वाला वापिस उस जंगल में आया तो यह वहाँ बैलों को न देख कर भगवान को अपराधी कहने लगा। भगवान अचल रहे। ग्वाला अपने बैलों को ढूंढता हुआ इधर उधर घूमने लगा थोड़ी देर में बैल पुनः वहीं आगये। ग्वाले ने अपने बैलों को भगवान के पास जुगाली करते हुए खड़े देखा। ग्वाले ने भगवान् को चोर समझा और उसने भगवान् के दोनों कानों में तीखे-तीखे कील कठोर पत्थर की मार मारते हुए ठोक। परन्तु भगवान् अडिग रहे। कोई समय पश्चात् उस स्थान पर दूसरे

मनुष्य आये और उन्होंने भगवान् के कानों में से कीले खींच कर निकाले।

ज्यों वीर अर्कोदय हुआ प्रातः हुआ तम फट गया,
पशु यज्ञ के तिमिरा वरण का जाल कुंठित उड गया।
थे दुष्ट, लम्पट छिप गये, गल वध पशु के कट गये,
आनंद घर घर गया, फिर भाग्य जग के जग गये ॥३२८॥

ज्योंहि भगवान महावीर रूपी सूर्य हुआ, जगती में अज्ञान रूपी छाया हुआ अंधकार विनष्ट हो गया और ज्ञान का प्रकाश प्रकट हो गया। पशु यज्ञ का वातावरण जो घने अंधकार के समान दृढ़ छाया हुआ था, उन्मूलित हो गया। स्वार्थी, लोभी, कुचर सर्व छिप गये और वध करने के लिये लाये गये मूक पशुओं के बंधन कट गये अर्थात् पशु यज्ञ बंध हो गये। भगवान् के अवतार ग्रहण करने से सर्वत्र आनंद छा गया, संसार का भाग्योदय हो गया।

महावीर का उपदेश—

अपवर्ग की सम्प्राप्ति में यह जाति बाधक है नहीं,
हो शूद्र चाहे राजवंशी, भेद इससे कुछ नहीं।
बाहर भले ही भेद हो, भीतर सभी जन एक हैं,
क्या शूद्र की, क्या विप्र की आत्मा सभी की एक है ॥३२९॥

चाहे भले ही शूद्र हो, सद्भाव का यदि केत है,
बस चक्रपति से भी अधिक हमको वही अभिप्रेत है।

संमोह माया लोभ जिसने काम को जीता नहीं,
वह सब बराबर हो भले, पर लोभ म ऊँचा नहीं ॥३३०॥
है सत्यव्रत जिसका नहीं पट में नहीं जिसके दया
यदि शान्ति व्रत पाला नहीं नहिं दान जीवन में दिया
वह भूप हो या विप्र हो हो म हि सुत भी वह भले
वह मोक्ष पा सकता नहीं उस ओर किसका वश चले ॥३३१॥

मोक्ष की प्राप्ति में जाति, वंश पद नहीं तो बाधक है और नहीं साधक। इनका मूल्य संसार में ही है। मोक्ष का प्राप्ति पर इनका कोई अच्छा बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। मोक्ष की प्राप्ति में भावों का मूल्य है। विप्र की जो आत्मा है वही आत्मा शूद्र की भी है। फिर भेद कैसा? सत्यहीन दयाहीन व्यभिचार शील कठोर हृदय लोभी कामी मोह और माया म फँसे हुये राजा विप्र और साहूकार स बढ़कर एक सद्भावी शूद्र मिल है। पतित विप्र वैश्य राजादि की सत्ता पद वर्ण मोक्ष की प्राप्ति म कुछ भी सहायक नहीं हैं।

महावीर द्वारा जैन धर्म का विस्तार और उसका स्थायी प्रभाव—

सवत्र भारतवर्ष म भी धर्मध्वज फहरा गई
वशवार हिंसावाद की थी टूट कर निस्सार गई।
सम्राट राजा मायडलिक फिर जैन कहलाने लगे
विस्तार हिंसावाद का सर्वत्र फिर रुकने लगे ॥३३२॥
अस्पृश्य तथा द्विजगण धर्मी वीरानुयायी हो गये
गणधर हमारे विप्र थे वीतरागी हो गये।

सम्प्रति नरप के काल तक जैनी कहो कितने हुये ?
सत्तेप में हम यों कहें चालीस कोटी थे हुये ॥२२३॥

भगवान महावीर ने जैन धर्म का पुनः विस्तार सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैला दिया। हिंसावादियो की तलवारें म्यानों में घुस गई। राजा, सामत और सम्राट जैन धर्म का पालन फिर से करने लगे। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सर्व जैन धर्मावलंबी हो गये। भगवान के ११ ग्यारह ही गणधर ब्राह्मण थे। सम्राट सम्प्रति के समय में चालीस करोड़ जैन धर्मानुयायी थे। सर्वत्र हिंसायें बंध हो गई।

परिवार सह चेटक यदि जिनवीर की सेवा करें,
फिर आत्माजाएं सप्त उनकी क्यों न जैनी वर वरें ?
उनकी यहाँ पर आत्माजाओं का न वर्णन हो सके,
यदि वर्ण अर्णव भरसके,यह वर्ण्य मुझ से हो सके॥२२४॥

राष्ट्रपति चेटक जैनधर्मी थे। उनके सात कन्याये थी। सातो, कन्याओं का यह दृढ व्रत था कि वे जैनधर्मी पुरुष के साथ ही विवाह करेंगी। जिनराजाओं के साथ उनका विवाह हुआ, उन राजाओं ने प्रथम जैन धर्म अंगीकृत किया और इस प्रकार जैन धर्म शीघ्र और सहज सर्वत्र उत्तर भारत में विस्तारित हो गया। जैन धर्म में ऐसी दृढ भक्ति रखने वाली और जैनधर्म की ऐसी महान सेवा करने वाली इन सातों कन्याओं का यहाँ क्या, कभी वर्णन करेगा असभव ही रहेगा। अगर अक्षरसागर का पानी भर भरकर उलीच सकते हों तो उनको महासागर

संमोह माया क्षोभ जिसमें काम को जीता नहीं
वह उच्च वर्णज हो भले पर कोम से ऊँचा नहीं ॥१२०॥
है सत्यमत्त जिसका नहीं घट में नहीं जिसके दया
शुचि शील व्रत पाला नहीं नहिं ज्ञान जीवन में लिया
वह भूप हो या विप्र हो हो श्रेष्ठि सुत भी वह भले
वह मोक्ष पा सकता नहीं उस ठौर किसका वश चले ॥१२१॥

मोक्ष की प्राप्ति में जाति, वर्ण पद नहीं तो बाधक है और नहीं साधक। इनका मूल्य संसार में ही है। मोक्ष का प्राप्ति पर इनका कोई अच्छा बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है। मोक्ष की प्राप्ति में भावों का मूल्य है। विप्र की जो आत्मा है वही आत्मा शूद्र की भी है। फिर भेद कैसा? सत्यहीन दयाहीन स्वाभिमान रहित कठोर हृदय लोभी कामी मोह और माया में फँसे हुवे राजा विप्र और साहूकार न बढ़कर एक सद्भावी शूद्र मित्र है। पवित्र विप्र वैश्य राजादि की सत्ता पद वर्ण मोक्ष की प्राप्ति में कुछ भी सहायक नहीं हैं।

महावीर द्वारा जैन धर्म का विस्तार और उसका स्थायी प्रभाव—

सर्वत्र भारतवर्ष में भी धर्मध्वज फहरा गई
तलवार हिंसावाद की भी टूट कर बिखरा गई।
सम्राट राजा मांडलिक फिर जैन कहलाने लगे
विस्तार हिंसावाद के सघन फिर रुकने लगे ॥१२२॥
अस्पृश्य तथा हिंसक सभी वीरानुगामी हो गए
व्यापार हमारे विप्र के वीरानुवर्ती हो गये।

सम्प्रति नरप के काल तक जैनी कहो कितने हुये ?
सन्क्षेप में हम यों कहें चालीस कोटी थे हुये ॥२२३॥

भगवान महावीर ने जैन धर्म का पुनः विस्तार सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैला दिया। हिंसावादियों की तलवारे म्यानो में घुस गई। राजा, सामत और सम्राट जैन धर्म का पालन फिर से करने लगे। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र सर्व जैन धर्मावलंबी हो गये। भगवान के ११ ग्यारह ही गणधर ब्राह्मण थे। सम्राट सम्प्रति के समय में चालीस करोड़ जैन धर्मानुयायी थे। सर्वत्र हिंसाये बंध हो गई।

परिवार सह चेटक यदि जिनवीर की सेवा करें,
फिर आत्मजाएँ संग उनकी क्यों न जैनी वर वरें ?
उनकी यहाँ पर आत्मजाओं का न वर्णन हो सके,
यदि वर्ण अर्णव भरसके,यह वर्ण्य मुझ से हो सके॥२२४॥

राष्ट्रपति चेटक जैनधर्मी थे। उनके सात कन्याये थी। सातो, कन्याओं का यह दृढ व्रत था कि वे जैनधर्मी पुरुष के साथ ही विवाह करेंगी। जिनराजाओं के साथ उनका विवाह हुआ, उन राजाओं ने प्रथम जैन धर्म अंगीकृत किया और इस प्रकार जैन धर्म शीघ्र और सहज सर्वत्र उत्तर भारत में विस्तारित हो गया। जैन धर्म में ऐसी दृढ भक्ति रखने वाली और जैनधर्म की ऐसी महान सेवा करने वाली इन सातो कन्याओं का यहाँ क्या, कभी वर्णन करेगा असभव ही रहेगा। अगर अक्षरसागर का पानी भर भरकर उलीच सकते हों तो उनको महासागर

के उसका अतिविस्तार पूर्ण कथानक का वर्णन करना मेरे लिये सम्भव हो सकता है।

वह चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र जो इतिहास में विख्यात हैं
यश कीर्ति जिसकी आज भी संसार में प्रख्यात है।
जिनको अधूरे विज्ञजन थे बौद्धधर्मी कह रहे
विद्वान सब उस चन्द्र नृप को जैन हैं अब कह रहे ॥११४॥

मौर्यवंशपति सम्राट चन्द्रगुप्त का इतिहास में प्रमुख स्थान है और उसका नाम सर्वत्र संसार में प्रसिद्ध है। अपूर्णज्ञान वाले उस सम्राट चन्द्रगुप्त को बौद्ध बतलाते थे किन्तु अब आधुनिक खोज-खोज करके प्रखर पुरातत्ववेत्ता उस सम्राट चन्द्रगुप्त को जैनधर्मी सिद्ध कर चुके हैं।

कुछ चौकमय साकेतपुर के भवन ध्वंसित हाय हैं
कुछ राजगृह चम्पापुरी में खण्ड विगलित हाय हैं।
उज्जैन मिथिला पटन के खण्डहर तो तुम जानते
उजड़न हमारी हा रही श्रावस्ती है यह देख लो ॥११६॥

गिरनार शत्रुंजय कहो ये तीर्थ कब से हैं बने
सम्मेद गिरिवर का कहो वर्णन करें तुम से घने?
क्या आज सत्वर सुनाऊँ? नाम हो शायद सुना
अर्थात जो जिन धर्म भारतवर्ष में व्यापक बना ॥११७॥

पञ्जाब बंगाल मध्यभारत मगध कच्छ अंग में
सौराष्ट्र राजस्थान काशी दक्षिणापथ बङ्ग में।

अर्थात आर्यावर्त में, सब थल अनार्यावर्त में—
जिन धर्म प्रसरित हो चुका था कोण आशा,वर्त में ॥३३८॥
प्राय: उक्त सर्व नगर एवं स्थानों का परिचय यथा स्थान पूर्व दिया जा चुका है। तात्पर्य इतना है कि जैन धर्म पंजाब, उड़ीसा, मध्यभारत संयुक्त प्रदेश, कौशल, आसाम, सौराष्ट्र, राजस्थान, काशी, दक्षिण भारत, बंगाल अर्थात भारतवर्ष की चारों दिशाओं में,चारों कोणों में और प्रत्येक जनपद में फैल चुका था। जैन धर्म के इस फैलाव को उक्त नगरों में अवशिष्ट शिलालेख, खण्डहर, स्तूप, मंदिर यह प्रमाणित कर रहे हैं।

आती हमें है कुछ हंसी जब देखते इतिहास हैं,
उसमें हमारा क्यों कहीं मिलता न कुछ आभास है?
वे आधुनिक इतिहासवेत्ता अज्ञ हो, सो है नहीं,
सब राग, मत्सर द्वेष से हैं कर रहे वे यह सही ॥३३९॥
इतना गौरव पूर्ण हमारा अतीत रहा है, परन्तु फिर भी हमारा भारतवर्ष के इतिहास में कहीं कुछ भी वर्णन क्यों नहीं किया गया है? आधुनिक इतिहासज्ञ मूर्ख हो सो तो बात नहीं है। सब यह सचमुच सही है कि वे हमारा वर्णन राग और द्वेष के कारण नहीं कर रहे हैं।

जिनधर्म सर्वाधर्म था, संदेह इसमें है नहीं,
यदि विज्ञ हो तो लेखलो वह भूत भारत की मही।
फिर क्यों नपुन्सक आज के हैं दोष हमको दे रहे,
अपनी नपुंसकता छिपाकर, कोस हमको हैं रहे ॥३४०॥
जैन धर्म क्षत्रियों का प्रमुख धर्म था, यह हमारा अतीत के

दिय गए परिचय से भली भाँति सिद्ध हो गया है। फिर आधुनिक युग के कायर जैनेतर बंधु समस्त भारत वर्ष के संपूर्ण पतन का दोष हमारे मस्तक पर क्यों मढ़ रहे हैं ? अपनी कायरता छिपा कर व हमको कोस रहे हैं।

जैन धर्म का इतर धर्मों पर प्रभाव—

ऐसा न कोई धर्म है जिसने न माना है हमें,
वैदिक सनातन सांख्य में जाना कभी से है हमें।
मुगलकुल, मुगलसम्राट पर इसका असर कैसा हुआ?
गौरांगजन के हृदय पर कैसा अमर शाश्वत हुआ। ॥२४१॥

वैदिक धर्म, सनातन और सांख्य धर्मों ने जैन धर्म के महात्म्य को स्वीकृत किया है। ऐसा शायद ही कोई धर्म होगा जो जैन धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता हो। इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी और प्रचारक तुगलकवंश के बादशाह जैनाचार्यों के संयम की बड़ी प्रशंसा करते थे। मुहम्मद तुगलक सोमतिलकसूरिजी का बड़ा सम्मान करता था।

मुगल बादशाहों में से अकबर जहांगीर और शाहजहाँ ने जैनाचार्यों का कितना सम्मान किया है इतिहास साक्षी है। बादशाह अकबर के ऊपर हीर विजयसूरिजी का गहरा प्रभाव था। खास मुसलमानी-पर्वों में भी बादशाह शाही-फरमान निकाल कर दया-धर्म पलवाता था।

फ्रांसीसी डाक्टर गेरनार जर्मन के डा० जान्सहर्टल जकोबी डा० व्यूहरर ग्लोब सिंघ फरग्यूसन आदि अनेक

यूरोपीय महान विद्वानों की जैन-धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा रही है। और इन सब ने जैन-धर्म और इसके साहित्य-कला पर गहरा लिखा है।

पतन का इतिहास

सम्राट थे, हम भूप थे, सम्पन्न थे अलेकश थे,
विद्या, कला, विज्ञान में हम पूर्ण थे, निःशेष थे।
नित पुष्पयानों पर चढ़े सर्वत्र हम थे घूमते,
सब राज लोकों के हमारे यान नभ थे चूमते ॥३४२॥

एक समय था जब कि हम राजा, महाराज, सम्राट, वैभवपति धनकुबेर थे। और विज्ञान, विद्या, और कला में अतिशय निष्णात थे। चौदह राजलोकों में स्वतन्त्रतापूर्वक हमारे वायु-विमान भ्रमण करते थे।

पर कालचक्र कुचक्र के सब वक्र होते काम हैं,
थे सभ्य हम सब भाँति, पर हा! आज हम बदनाम हैं।
किसको भला हम दोष दें, अब आप हैं हम गिरगये,
बस नाश के कुरुक्षेत्र में डके हमारे बज गये ॥३४३॥

इस समयरूपी चक्र के भयंकर चक्कर बड़े घातक होते हैं। किसी समय हम सर्व प्रकार समुन्नत और सभ्य थे, परन्तु हाय आज हम सर्व भाँति अपयश के भागी हैं। हमने अपने हाथों ही अपना पतन किया है, फिर किस अन्य को दोष दिया जाय। कौरवों और पाण्डवों के मध्य कुरुक्षेत्र में हुये महाभारत नामक युद्ध के समय से ही हमारा पतन प्रारंभ हुआ है।

किये गये परिश्रम से भली भाँति सिद्ध हो गया है। फिर आधुनिक युग के कायर जैनेतर बंधु समस्त भारत वर्ष के संपूर्ण पतन का दोष हमारे मस्तक पर क्यों मढ़ रहे हैं ? अपनी कायरता छिपा कर वे हमको कोस रहे हैं।

जैन धर्म का इतर धर्मों पर प्रभाव—

> ऐसा न कोई धर्म है जिसने न माना है हमें
> वैदिक सनातन सांख्य ने आला कर्मी में है हमें।
> मुगलक, मुगलसम्राट पर इसका असर कैसा हुआ?
> गैरांगजन के हृदय पर कैसा असर शाश्वत हुआ ! ॥१४१॥

वैदिक धर्म सनातन और सांख्य धर्मों ने जैन धर्म के माहात्म्य को स्वीकृत किया है। ऐसा शायद ही कोई धर्म होगा जो जैन धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता हो। इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी और प्रचारक मुगलकवंश के बादशाह जैनाचार्यों के समक्ष की बड़ी प्रशंसा करते थे। मुहम्मद तुगलक सोमतिलकसूरिजी का बड़ा सम्मान करता था।

मुगल बादशाहों में से अकबर जहाँगीर और शाहजहाँ ने जैनाचार्यों का कितना सम्मान किया है इतिहास साक्षी है। बादशाह अकबर के ऊपर हीर विजयसूरिजी का गहरा प्रभाव था। खास मुसलमानी-पर्वों में भी बादशाह शाही-फरमान निकाल कर दया-धर्म पलवाता था।

फ्रांसीसी डाक्टर गेरनार जर्मन के डा० वाल्सहार्न अंग्रेजी डा० ब्यूहरर कर्नल सिंथ फरग्यूसन आदि अनेक

सम्राटहत् भारत हुआ, उद्दाम द्विज कुल हो गये,
सब पुश्चली स्त्री हो गई, हा, नर नपुंसक हो गये ॥३४६॥

भारतवर्ष की यह वर्तमान दुर्दशा कब प्रारंभ हुई, बहुतों को तो यह भी विदित नहीं हैं। महाभारत के युद्ध के पश्चात् भारत में सार्वभौम सत्ता कोई नहीं रही और फलतः ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य धीरे धीरे स्वच्छंद और निरंकुश होते चले गये स्त्रियें व्यभिचारिणी और पुरुष वीर्यहीन हो गये।

ज्यों कायरों में नर नपुंसक भंग करते शान्ति हैं,
होती तथा निस्तब्ध निशि में उल्लुओं की क्रान्ति है।
पशुयज्ञ के उपदेश त्यों थे द्विज सभी करने लगे,
जहाँ बह रही थीं घृतसरि, थे रक्तनद झरने लगे ॥३४७॥

ज्यों कायर पुरुषों में डींग हाँकने वाले वीर्य्यहीन पुरुष अशान्ति उत्पन्न करते हैं, ज्यों निख रात्रि की निस्तब्धता को उल्लुओं की हूँ, हूँ भंग करने में समर्थ होती हैं, त्यों ही पतित हुये पुरुषों में ब्राह्मण पशुयज्ञ का प्रचार करने लगे और जहाँ गोकुलों से घी और दूध की नदियें बहती थीं, वहाँ रक्त की सरितायें प्रवाहित होने लगी।

निर्झर, नदी के कूल पर सर्वत्र होते होम थे,
गौ, अश्व का करते हवन द्विज भ्रष्ट पापी डोम थे।
यदि उस समय में वीर प्रभु का जन्म जो होता नहीं,
उस आज डोमाचार का कुछ पार भी रहता नहीं ॥३४८॥

पशुयज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को डोम ही कहना उचित है।

अब के गिरे ऐसे गिरे, संज्ञा न आई आज भी;
हैं कौन भाई, कौन रिपु, नहिं दीखता है हा! अभी।
स्वाधीन से आधीन हो,सब भाँति विषयाधीन हैं;
बलहीन हैं, मतिहीन हैं, सब भाँति अब तो दीन हैं॥१४४॥

कुरुक्षेत्र में हुये महाभारत युद्ध से ही हम अब तक गिरते आ रहे हैं और अभी तक सावधान नहीं हो पाये हैं। भाई को भाई और दुश्मन को दुश्मन नहीं पहचान रहे हैं। एक युग में हाय! हम पूर्ण स्वतंत्र थे; आज पूर्ण परतंत्र हैं। सर्व प्रकार विषयासक्त हैं बल और बुद्धिहीन हैं। हे ईश्वर! अब तो हम सर्व भाँति दीन और असहाय हैं।

पयपूर्ण था मधुपघ्न था था मञ्जु मधुकर वृन्द जो
अब देख लो सूखा पड़ा है पङ्क भी हो शेष जो।
धीरे कछारी पड़ गई हर ठौर गह्वर हो गये
क्या वेदना के भाव इसमें हाय! स्वर-स्वर सो गये॥१४५॥

भारतवर्ष उस सरोवर के सदृश है जो कभी निर्मलजल से परिपूर्ण था कमलसमूह से सुशोभित था और भ्रमरों की विचरण भूमि था। परन्तु आज जो जलहीन है जिसका दलदल भी शुष्क होकर गड्ढों और दरारों से सर्वत्र भरा हुआ है। हे ईश्वर! क्या इस भारतवर्ष के शरीर के प्रत्येक प्रदेश में वेदना समा गई है।

पर हो गई कब से दशा यह जानते भी हैं नहीं
जो आ रहा मुँह में विचार बक रहे वे हैं वहीं।

सम्राटहत् भारत हुआ, उद्दाम द्विज कुल हो गये,
सब पुश्चली स्त्री हो गई, हा, नर नपुंसक हो गये ॥३४६॥

भारतवर्ष की यह वर्तमान दुर्दशा कब प्रारंभ हुई, बहुतों को तो यह भी विदित नहीं है। महाभारत के युद्ध के पश्चात् भारत में सार्वभौम सत्ता कोई नहीं रही और फलतः ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य धीरे धीरे स्वच्छंद और निरंकुश होते चले गये; स्त्रियें व्यभिचारिणी और पुरुष वीर्यहीन हो गये।

ज्यों कायरों में नर नपुंसक भंग करते शान्ति हैं,
होती तथा निस्तब्ध निशि में उल्लुओं की क्रान्ति है।
पशुयज्ञ के उपदेश त्यों थे द्विज सभी करने लगे,
जहाँ बह रही थी घृतसरि, थे रक्तनद झरने लगे ॥३४७॥

ज्यों कायर पुरुषों में डींग हाँकने वाले वीर्यहीन पुरुष अशान्ति उत्पन्न करते हैं, ज्यों निरव रात्रि की निस्तब्धता को उल्लुओं की हूँ, हूँ भंग करने में समर्थ होती हैं, त्यों ही पवित हुये पुरुषों में ब्राह्मण पशुयज्ञ का प्रचार करने लगे और जहाँ गोकुलों से घी और दूध की नदियें बहती थीं, वहाँ रक्त की सरितायें प्रवाहित होने लगी।

निर्भर, नदी के कूल पर सर्वत्र होते होम थे;
गो, अश्व का करते हवन द्विज भ्रष्ट पापी-डोम थे।
यदि उस समय में वीर प्रभु का जन्म जो होता नहीं,
उस आज डोमाचार का कुछ पार भी रहता नहीं ॥३४८॥

पशुयज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को डोम ही कहना उचित है।

तीनों धर्मों के अनुयायी जब परस्पर लड़ कर निर्बल हो गये, तब इन पर यवनों के आक्रमण हुये। गिरते हुये पर अगर पर्वत गिरे तो वह मरेगा ही।

उस दुष्ट, पापी भूप का जयचन्द्र कहते नाम है,
जिसके बुलाये यवन आये, घोर काला काम है।
जितने मनुज आये यहा थे, सब हमीं में मिल गये,
इस्लाम झंडे पर हमारे से अलग ही लग गये॥ ॥३५१॥

वह दुष्ट और पापात्मा राजा जिसने यवनों को पृथ्वीराज के विरुद्ध लड़ने के लिये आमंत्रण देने का घोर कुकर्म किया था जयचन्द्र था। आज तक भारतवर्ष में जितनी जातियां बाहर से आकर बसी वे सब हिन्दूसमाज में सम्मिलित होती रहीं, परन्तु मुसलमानों के झंडे अलग ही लहराये।

इनकी हमारी फूट का हा! यह कुफल परिणाम है,
जो स्वर्गसा यह सौम्य भारत मिट रहा अविराम है।
जैसे परस्पर मेल हो करना हमें वह चाहिए,
सब भेद भावों को भुलाकर रस बढाना चाहिए ॥३५२॥

हिन्दू और मुसलमानों के बीच पड़ी हुई गहरी फूट ही एक मात्र कारण है ऐसा स्वर्ग सुन्दर भारत वर्ष निरंतर पतित होता जा रहा है। जैसे भी बने कल्याण की दृष्टि से हिन्दू और मुसलमानों में प्रेम की प्रतिष्ठा करनी चाहिए, परस्पर पड़े राग-द्वेषों को उन्मूलित कर मेल बढ़ाना चाहिए।

हा! हाय! भारत! आज तेरे खण्ड कितने हो गये,
ये धर्म जितने दीखते हा! अंग उतने हो गये।

१३

प्रति धर्म के अन्दर अहो ! फिर सैकड़ों फिरके बने
फिर गोत्र जाति-समूह के हा ! बस पड़े विग्रह घना॥१२३॥

हे भारतवर्ष ! यह देख कर अत्यन्त क्षुब्ध होता है कि धर्मों के कारण तेरे शरीर के अनेक खंड हो गये। इतना ही नहीं प्रत्येक धर्म के अन्दर फिर अनेक मत और सम्प्रदाय बन गये। इस प्रकार धर्म, मत और सम्प्रदाय को लेकर अब जाति और गोत्रों के झगड़े प्रमुख हो गये।

ये स्थानविग्रह नष्ट कर अवसर को हम हर सकें
इस काल में संभव नहीं यह काम शायद कर सकें।
फिर आज की सरकार से मत भेद पोषित हो रहे
ये धर्म रण हा ! बदल कर सब राजरण हैं हो रहे॥१२४॥

धर्म मत मतान्तर, जाति और गोत्रों के झगड़े जिन्हें हम कुचाराम कह सकते हैं इतने बढ़ गये हैं कि इनका शान्त करना हमारे सामर्थ्य के बाहर हो गया है। कोई अवसर ही ऐसा उत्पन्न होगा कि ये स्वतः शान्त हो जायेंगे हमारे किये शान्त नहीं हो सकते। शान्त भी होवें तो कैसे ? स्वयं सरकार ऐसे झगड़ों को बनाये रखना चाहती है और परस्पर पड़े हुवे वैमनस्य और मत-मतान्तरों का पोषण करती है। फलतः अब ये धर्म के पीछे पड़े हुवे और पड़े हुवे झगड़े राजनैतिक झगड़ों का रूप धारण कर रहे हैं।

अन्तर भेद व पतन—

मत भेद तो है आदि से हर ठौर होता आ रहा
बढ़ने उतरने की कथा सब है यही सिखला रहा।

इससे उतरने की कला हम जैनियों ने सीख ली,
पर हाय ! चढने की कला नहिं दृष्टि भर भी लेख ली ॥२५५॥

मतभेद की क्रिया आज उत्पन्न नहीं हुई है। यह क्रिया तो अनत काल से चली आ रही है। मतभेद ही किसी देश और जाति की उन्नति और अवनति का कारण है। हमने मतभेद के अवनत करने वाले अंग को अपनाया है और उन्नत करने वाले अङ्ग की ओर देखा तक नहीं है।

जिन धर्म पहिले एक था, फिर खण्ड इसके दो हुये,
फिर वे दिगम्बर, श्वेत अम्बर नाम से पण्डित हुये।
चत्वारदल में फिर दिगम्बर मत विभाजित हो गया,
यह श्वेतअम्बर भी अहो ! दो खण्ड हो कर गिर गया॥२५६॥
सत्तोष पर इतनी दशा से काल क्यों करने लगा!
जो था क्षुधित चिर काल से, अब क्यों क्षुधित रहने लगा,
बावीस, चौरासी दलों में श्वेत अम्बर छट गया,
बावीस पथी पथ में फिर पथ तेरह घट गया ॥२५७॥

दिगम्बर—दिक+अम्बर, दिशा ही जिनका वस्त्र है उन्हें दिगम्बर कहते हैं।

श्वेताम्बर—श्वेतवस्त्र पहिनने वालों को श्वेताम्बर कहते हैं।

किसी समय जैनधर्म अखण्ड था। दुर्भाग्य से इसके ये उक्त दो खण्ड हो गये। कब हुए? यह प्रश्न विवादास्पद है। इस प्रश्न को छूने का यहाँ मेरा न विचार है और न इसको मैं यहाँ हल करना उचित समझता हूँ।

समय पीकर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के भी फिर दो दल हो गये। स्थानकवासी जो मूर्ति को नहीं मानते हैं और दूसरे मूर्तिपूजक जो मूर्ति की पूजा-प्रतिष्ठा करते हैं। स्थानकवासी सम्प्रदाय को बाईसपन्थी एवं ढूँढक भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय की आदि करने वाले श्रीमान् लोंकाशाह कहे जाते हैं। आगे जाकर शनैः शनैः मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में भी आचार्यों के नाम के पीछे अलग अलग दल स्थापित होते गये और वे इस भाग ८४ की संख्या तक पहुँच गये जो गच्छ कहलाते हैं। लोंकाशाह के कितने ही जीवन चरित्र छप चुके हैं। विशेष के लिये उनमें से कोई देखें।

तेरहपन्थी—यह स्थानकवासी सम्प्रदाय में से निकला हुआ एक और पंथ है। इसकी आदि करने वाले भिक्षमजी कहे जाते हैं। भिक्षमजी स्थानकवासी साधु रघुनाथमलजी के शिष्य थे। देखो भिक्षम-चरित्र।

तब विप्र स्वामी गुरु स्वत्व खोकर काम लगे
य विप्र इस पर क्रुद्ध कर तब वार फिर करने लगे।
जब है कलह निज दल में अवयव भला क्या मिल सके?
निर्बल हुए अवयव में शुचि पद कहाँ मिल सके?॥१६५॥

जब जैन धर्म की ऐसी दशा हो गई तब ब्राह्मण क्षत्री और शूद्र जैनधर्म को त्याग कर अन्य धर्म ग्रहण करने लगे और इतरधर्मी ब्राह्मण फिर से जैन धर्म का खंडन करने लगे। एक शरीर के अवयव जब उनमें परस्पर मेल नहीं हो तो कैसे वह

सकते हैं और पुष्ट बन सकते हैं? जल रहित दलदल में कैसे सुन्दर कमल विकशित हो सकते हैं? अर्थात् जैन धर्म का शनैः शनैः ह्रास और पतन होने लगा।

लड्डू कलह में तुम बताओ आज तक किसको मिले,
पदत्राण के अतिरिक्त भाई! इतर बोलो, क्या मिले?
अपशब्द निंदावाद तो हा! हत मण्डनवाद है,
जब तक न मूलोच्छेद हो, फिर क्या जिनेश्वरवाद है॥३५९॥

परस्पर के झगड़ों में लड्डू नहीं मिलते वरन् जूतामार ही होती देखी जाती है। एक दूसरे की निंदा और एक दूसरे को गालीगलोच करके वे अपना अपना मंडन करने का निंदनीय ढंग अपनाते हैं। उनका जिनेश्वरवाद असफल ही है, अगर वे एक दूसरे का उन्मूलन करने में असफल रहते हैं।

हा! ये दिगंबर, श्वेत अंबर स्थानकत हैं लड़ रहे,
पदत्राण पावन स्थान में इनमें परस्पर चल रहे।
हा! नाथ! यह क्या हो गया! तमकर प्रभाकर हो गया
वृद्धत्व में अनुभव हमारा भार हमको हो गया॥३६०॥

दिगंबर और श्वेतांबर दोनों तीर्थ और मंदिरों में परस्पर कुत्तों की तरह लड़ रहे हैं, जूतामार कर रहे हैं। हे परमात्मन्! ज्ञान का प्रकाश करने वाला जैन धर्म अपने अनुयायी में अज्ञानरूपी अंधकार उत्पन्न कर रहा है। दैव! यह क्या हो गया! आयु भर संपादित किया हुआ अनुभव वृद्धायु प्राप्त होने पर सुखदायक होने के स्थान पर कष्टदायी हो गया।

बिगड़ा न कुछ भी है अभी, बिगड़ा यदि हम सोचलें
ऐसे न निस्पृह प्राण हैं जो एक पद दुर्भर चलें !
ऐसी दशा ही यदि रही तब तो हमारा अंत है
हा!अंत!हा!हा! हंत ! हा!हा! अंत ! हा!हा! हंत है !! ॥१६१॥

बिगड़े हुये को अभी भी हम यदि प्रयत्न करें तो सुधार सकते हैं अभी तो अधिक कुछ नहीं बिगड़ा है। हमें अशक्त भी अभी नहीं हैं कि एक चरण पर भी चलना भार मालूम हो। परन्तु अगर सचेष्ट और सचेत नहीं हुये तो अंत निश्चित रूप से संनिकट है और वह अत महा शोककारी और भयंकर होगा।

नृप कल्कि के दुष्कृत्य हम हैं चाहते कहना नहीं
औ पुष्य मित्र महीप का व्यवहार है कहना नहीं।
दुष्कृत्य इनके आज पर मुद्रित हृदय पर पायगे,
जिनको श्रवण करते हुये भ्रुत आपके सूख जायगे ॥१६२॥

अवती नरेश कल्कि ने जैन और बौद्धों पर हृदय को विदीर्ण करने वाले महाभयंकर अत्याचार किये और शुङ्ग-वंश के प्रथम राजा पुष्यमित्र ने क्रुद्ध होकर जैनियों के प्रसिद्ध नगर पाटलीपुत्र को जला दिया अपने साम्राज्य में जैन साधुओं का प्रचार करने का निषेध कर दिया। आज भी जैन समाज के हृदय पटल पर व रोमांचकारी अत्याचार ज्यों के त्यों अंकित हैं जिनका वर्णन किया जाय तो श्रोतागणों के कर्णपट सूख जायेंगे।

पहिने हुये पद त्राण तक ये शीप पर ये जा चढ़े,
करने हमें ये देश वाहर के लिये आगे वढे।
हमको गिराया अग्नि में, हमको डुबाया धार में,
न विचार था उस काल में, इस काल भी न विचार में ॥२६३॥

जितराग थे, जितद्वेप थे, क्यों क्रोध हमको हो भला,
कोई न हममें से प्रथम था रण कभी करने चला,
अब ग़ैर! सब कुछ हो गया, अब ध्यान आगे का करो,
जैसे वने फिर देश का उत्थान सब मिलकर करो ॥२६४॥

इन राजाओं ने हमारी देव मूर्तियों को पददलित किया, हमको देश से वाहिर किया, जीवित जलाया, जल की धारा में बहाया, परन्तु हमने तनिक भी प्रतिकार का विचार नहीं किया और न आज हमारे ऐसे विचार हैं। हम तो राग और द्वेप को जीतने वाले थे, हममें क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता था। हम प्रथम किसी से भी रण करने का प्रस्ताव नहीं करते थे। यह सब अब जाने दीजिये। भविष्य का विचार करिये, जैसे भी बने सर्व भारतवासी मिलकर भारतवर्ष का समुत्थान और पुनरुद्धार करिये।

वेद और बौद्धमत—

श्रुतिवेद को जिन धर्म का ही वन्धु हम हैं मानते,
इच्छा तुम्हारी आपकी यदि भिन्न तुम हो जानते।
साहित्य के ये द्वीप हैं, शुचि प्रखरतर मार्तण्ड हैं,
आलोक इनका प्राप्त कर यह जग रहा ब्रह्माण्ड है ॥२६५॥

बौद्धमत को हम जैन धर्म का सहोदर समझते हैं। अगर आप नहीं समझते हैं तो यह आपकी इच्छा। बौद्धमत साहित्य का वह द्वीप है जो अनेक साहित्यमयों के एकत्र होने से बना है। बौद्धमत ज्ञान रूपी मिहिर का अपार तीव्र प्रकाश करने वाला सूर्य है। इस बौद्धमत रूपी सूर्य के प्रकाश से सर्व संसार आलोकायमान हो रहा है।

होता नहीं अवतार यदि उस बुद्ध से भगवान का
क्या हाल होता आज फिर इस चीन का जापान का।
ये हो गये अब मांसहारी दोष पर इनका नहीं
कैसे चलें व शास्त्र पर सिद्धान्त जब समझे नहीं ॥१६६॥

भगवान गौतमबुद्ध का अगर भारतवर्ष में जन्म नहीं हुआ होता तो चीन और जापान का स्वरूप कुछ इतर ही होता। चीनी और जापानी दोनों अहिंसा के एकनिष्ठ प्रचारक भगवान गौतमबुद्ध के अनुयायी होकर भी मांसाहारी हैं तो इसमें उनका दोष इसलिये नहीं कि गौतमबुद्ध के सिद्धान्तों का अर्थ इनको सही सही नहीं समझाया गया है।

ये जैन वैदिक बौद्धमत मिश्रित परस्पर आप हैं
मत एक की मत दूसरे पर अमिट गहरी छाप है।
हे बन्धुओ! ये मत सभी मत एक की संतान हैं
ये युग्ममित पारावार हित भो-दयत्त-सर समान हैं ॥१६७॥

जैनमत बौद्धधर्म और वैदिकमत परस्पर अत्यधिक मिश्रित हैं। प्रत्येक का अन्य पर गहरा प्रभाव है। हे बंधुओ! ये सर्व

सब विशेष युग में उत्पन्न हुये पाखण्ड को नष्ट करने के लिये बढ़े हुये बाल सहित अनुग हैं और कुछ नहीं। उद्देश्य एक ही है उस युग के आलसियों की बढ़ते हुये पाखण्ड और अनाचार से रक्षा करना।

हमारे पर दोषारोपण —

'जिन धर्म के कारण हुआ दुर्भाग्य भारतवर्ष है
इसका अहिंसावाद में भारी हुआ अपकर्ष है।
ये कीट तक को मारने में हिचकचाते हाय! हैं,'
क्या बन्धुओ! उत्थान साधन मात्र खड्गोपाय है?॥ ६८॥

अनेक बन्धु कहते हैं कि भारतवर्ष का पतन एक मात्र जैन धर्म के अहिंसावाद के प्रसार के कारण हुआ है, क्योंकि जैन बन्धु एक कीट और कृमि तक के मारने में भारी पाप मानते हैं तो भला भारतवर्ष पर आक्रमण करने वाली विदेशी सेनाओं पर उनकी तलवारें कैसे उठ सकती थीं?

मैं पूर्व ही बतला चुका, सब शौर्य-परिचय दे चुका,
था आत्मबल कैसा हमारा यह तुम्हें बतला चुका।
जब आत्मबल से शत्रु को हम कर विजय पाते नहीं,
तब खड्ग के अतिरिक्त साधन दूसरे रखते नहीं॥ ६६॥

जैन महावीरों के शौर्य और आत्मबल पर मैं पूर्व प्रकाश डाल चुका हूं। जब आत्मबल से शत्रु परास्त नहीं किया जा सकता था, उस स्थिति में शत्रु को परास्त करने के लिये तलवार का उपाय एक माना हुआ अंतिम साधन था।
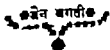
जैसा हमारा धर्म था वैसा हमारा आज है
यह मानते अविज्ञ नहीं वैसे नहीं हम आज हैं।
हम पूछते हैं आप से क्या आप वैसे हैं अभी
फिर दोष सब हम पर धरो आती तुम्हें नहिं शर्म भी॥२७०॥

जैन धर्म तो जैसा पहिले था वैसा ही आज है। यह सच-मुच सही है। कि आज हम वैसे जैनवीर नहीं हैं, परन्तु क्या आप तो पूर्वजों जैसे वीर हैं? फिर हमको ही दोष देते हो आप को क्या कुछ भी लज्जा नहीं आती?

इस बात को आगे बढ़ा झगड़ा न करना है हमें,
विषकुम्भ पातक फूट का उन्मूल खोना है हमें।
अब क्या? किसीका दोष हो यह भ्रष्ट भारत हो चुका
हम आपका यदि नाश हो तो स्वर्ग फिर भी हो चुका॥२७१॥

परस्पर दोषारोपण करके पारस्परिक कलह और फूट की वृद्धि करना नहीं चाहते हैं। पातक फूट को उन्मूलित करना है। किसी का भी दोष हो अब इससे प्रयोजन ही क्या है? भारतवर्ष तो सब भाँति पतित हो चुका है। अब तो भारत वर्ष का उत्थान तब संभव है जब कि हमारे तुम्हारे के पीछे होने वाली सब दुश्चेष्टायें बंद हो जाय।

वर्णाश्रम और वेशवपु—

हैं वर्ण चारों आश्रमी, मिलते न चाहे हैं सभी
हा! पर विकृत हो गये सब वर्णसंकर हैं अभी।
इन पूर्वजों ने व्यवस्था क्या मनोहर की रची?
द्विज जोगियों ने आज इसको गरल से बदतर करी॥२७२॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण आज भी विद्यमान हैं चाहे मृतावस्था में भले ही क्यों न हों। पूर्वजों ने वर्णव्यवस्था किन सुन्दर उद्देश्यों को लेकर रची थी? आज इन पतित और गौलकवर्णों को देखकर बड़ा दु:ख होता है। सवर्णों ने समूची वर्ण व्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

हतवीर्य क्षत्री हो भले, पर छत्रपति कहलायगा,
चाहे निरक्षर विप्र हो, पर पूज्य माना जायगा।
तस्कर भले हो प्रथम हम, पर शाह हम कहलायेंगे,
दुष्कर्म कितने भी करो, नहिं शूद्र द्विज कहलायेंगे ॥३७३॥

क्षत्री कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष भले ही वीर्यहीन क्यों नहीं होवे, कहलावेगा तो क्षत्री ही। इसी प्रकार मूर्ख ब्राह्मण भी अपने को पूज्य बनाये रक्खेगा और चोर वैश्य भी अपने को शाहूकार समझेगा। सवर्ण भले ही घृणित कर्म क्यों नहीं करें, परन्तु वे शूद्र नहीं समझे जायेंगे।

थे वर्ण सब कर्मानुसार, वंशानुगत अब हो गये,
उत्थान के यों द्वार सब हा! बंद सबके हो गये।
उन्मार्गगामी हो भले द्विज तो पतित होता नहीं,
हो ऊर्ध्वरेता, धर्मवेता शूद्र द्विज होता नहीं ॥३७४॥

कर्म के अनुसार वर्ण दिया जाता था। आज वर्ण वंशपरंपरित हो गये। ऐसा होने से उच्चवर्ण प्राप्त करने के लिये जो प्रयास करने पड़ते थे और इस प्रकार जो उन्नति होती थी, वह सदा के लिये सर्व की बन्द हो गई।

हे वैश्यवर्गीय बंधुओ! निज वर्ण परिवेश देख ले
ये गोत्र इतने वर्ण में आये कहाँ से देख ले।
जब वैश्यकुल में गोत्र को हम खोजने लगते कभी
मिलते वहाँ पर गोत्र सब द्विज शूद्र क्षत्री के सभी॥१०४॥

प्रथम वैश्यवर्ण की रचना पर ही विचार करो कि वैश्य-वर्ण में इतने गोत्र उपगोत्र कैसे उत्पन्न हो गये। हम जब कभी भी वैश्यवर्ण की रचना पर सोचने लगते हैं तो वैश्यवर्ण में ब्राह्मण क्षत्री और शूद्र सभी के गोत्र मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस वंश का जैसा कर्म होता था वह वंश उस वर्ण में रख दिया जाता था जिस का वह कर्म होता था।

थी कर्म से सब जातियें के गोत्र हैं बतला रहे;
इतिहास धार्मिक ग्रन्थ अब भी हैं यही बतला रहे।
कारण कहो फिर कौन-सा जो ये पथच्युत हो गये
ताला लगाकर द्वार पर ज्यों चोर भीतर सो गये!॥१०५॥

इतिहास और धार्मिक ग्रन्थ भी यही सिद्ध कर रहे "कि जातियों की रचना कर्मों के पीछे हुई हैं और गोत्रों की संज्ञाओं के अभ्यास से तो यह स्पष्ट अंकित होता ही है। फिर किस कारण कर्मों की प्रमुखता नष्ट हो गई और जातियों के द्वार बंद करके ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य इस प्रकार निश्चिंत बैठ गये जिस प्रकार चोर द्वार पर ताला लगाकर कक्ष में सो जाता है।

अब दृष्टि से जिन भ्रष्ट हैं पर हम नहीं छोड़ते
जो पीसता पड़ता सदा पत्थर उसी पर भोगते।

द्विज सभ्यता, आदर्शता के शृंग पर हैं चढ़ चुके,
ये पहुँच कर इस शृंग पर अधिकार पूरा कर चुके ॥३७७॥

वर्तमान में ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य आचार-विचार और कर्मों की दृष्टि से पतित हो गये हैं, परन्तु वे अपने परंपरित उच्च स्थान को नहीं छोड़ते वरन कोई सदाचारी एवं सत्कर्मी ऊपर चढ़ता हुआ दिखाई देता है तो ये उसको भी पतित करने का ही भरसक प्रयत्न करते हैं। सवर्ण आदर्शता एवं सभ्यता के शिखर पर पहुंच चुके हैं और अब उस शिखर पर यद्यपि ठहरने योग्य नहीं हैं फिर भी इन्होंने उस सभ्यता के शिखर का एकनिष्ठ समूचा अधिकार कर रक्खा है।

उन पूर्वजों के सदय उर का किस तरह वर्णन करें
जो शूद्रका भी कर पकड़ अविलम्ब द्विज सदृश करें।
पथ में गिरे को वे उठाते गोद में थे दौड़ कर,
टूटे हुये को एक करते थे सदा वे जोड़ कर ॥३७८॥

उन दयालु हृदय पूर्वजों का कीर्तन कहाँ तक करें। वे शूद्र को अपने में मिलाते थे, पापी को तुरत अपनाते थे और परस्पर पड़े हुये भेदों को, मनमुटाव को और वैमनस्य को मिटाते थे।

किस भांति छूताछूत को इस भाँति से वे मानते,
नरजाति के प्रति मनुज को जब थे सहोदर जानते।
परमात्म-सरवर की अहो! सब ने मनोहर मीन थे,
उनमें परस्पर प्रेम था, आध्यात्म शिखरासीन थे ॥३७९॥

वे पूर्वज ऊँच नीच के भेद को नहीं समझते थे वे तो

हे वैश्यवर्गीय बंधुओ! निज वंश पहिले देख ल
ये गोत्र इतने वर्ग में आये कहाँ से परख ले।
जब वैश्यकुल में गोत्र को हम सोचने लगते कभी,
मिलते वहाँ पर गोत्र सब द्विज शूद्र क्षत्री के सभी॥२७४॥

प्रथम वैश्यवर्ग की रचना पर ही विचार करना कि वैश्यवर्ग में इतने गोत्र उपगोत्र कैसे उत्पन्न हो गये। हम जब कभी भी वैश्यवर्ग की रचना पर सोचने लगते हैं तो वैश्यवर्ग में ब्राह्मण क्षत्री और शूद्र सभी के गोत्र मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस वंश का जैसा कर्म होता था, वह वंश उस वर्ग में रख दिया जाता था जिस का वह कर्म होता था।

थी कर्म से सब जातियें, ये गोत्र हैं बतला रहे
इतिहास धार्मिक ग्रन्थ सब भी हैं यही बतला रहे।
कारण रहो फिर कौन-सा जो य पराङ्मुख हो गये
ताला लगाकर द्वार पर द्विज चोर भीतर सो गये।॥२७५॥

इतिहास और धार्मिक ग्रन्थ भी यही सिद्ध कर रहे हैं कि जातियों की रचना कर्मों के पीछे हुई है और शास्त्रों की संज्ञाओं के सम्बन्ध में तो यह स्पष्ट प्रमाणित होता ही है। फिर किस कारण कर्मों की प्रमुखता नष्ट हो गई और जातियों के द्वार बंद करके ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य इस प्रकार निश्चिंत बैठ गये जिस प्रकार चोर द्वार पर ताला लगाकर कक्ष में सो जाता है।

अब दृष्टि से द्विज भ्रष्ट हैं पर वह मन नहीं खोलते
जो दीखता पड़ता नया पत्थर उसी पर मोलते।

परन्तु यह सब हमारी परस्पर की फूट का ही परिणाम था। क्या कुकर्मों का कुफल नहीं भोगना पड़ता है ?

> राजत्व भर ये यवनपति हा ! प्राण के ग्राहक रहे
> ये गौ, सुता, वधु, नारियों के थे सदा हारक रहे।
> तलवार के बल हिन्दू थे इस्लाम में लाये गये,
> आये न जो इस्लाम में, दुर्मृत्यु वे मारे गये ॥२८२॥

ये मुसलमान शासक अपने समूचे शासनकाल भर हमारे शत्रु बने रहे। इन्होंने गौ, हमारी स्त्रियों, वधु, बेटियों का अपहरण किया। तलवार का भय दिखा कर अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और अनेकों को जिन्होंने मुसलमान बनना अस्वीकृत किया, मृत्यु के घाट उतारा।

> धन, द्रव्य पर उनके लगे रहते सदा ही घात थे,
> बिछुड़े हुओं के रात के मिलते न शव हा ! प्रात थे।
> हा ! दूधपीते शिशु गणों का वह रुदन देखा न था,
> नरभूप था, यमभूप था, हमने उसे लेखा न था ॥२८३॥

ये यवन शासकगण सदा हमारे धन और सामग्री की अपने शासन में लूट करते रहे। रात्रि के बिछुड़े हुये बन्धु अपने परिजनों से पुनः प्रातः नहीं मिल सकते थे अर्थात् वे या तो मुसलमान बना दिये जाते या मार दिये जाते। माता पिता से अलग हुये छोटे-छोटे बच्चों का वह करुण क्रन्दन और हृदय विदारक दृश्य आज तक शायद ही किसी ने देखा होगा।

प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई समझते थे। परमात्मा रूपी सरोवर की वे सब मछलियाँ थे। उनमें परस्पर अत्यन्त प्रेम था। वे आत्माराम रूपी शिखर पर पहुँचे हुए थे।

> हम चार आश्रम वेद की किसने कहो रचना करी?
> कितनी मनोहर भाँति से जिसने समस्या हल करी।
> इस कार्य को भी नाभिसुत ने था प्रथम युग में किया
> वह आदि था अब अन्त है वे ऋषभमय हम अद्य या ॥२८॥

सभ्यता के आदि काल में भगवान ऋषभदेव ने वर्णों का आश्रमों की और वर्णों की सुन्दर रचना की थी। वह सभ्यता का आदि काल था और अब उस सभ्यता का अंतकाल है। वे भगवान ऋषभदेव थे और अब हम निकम्मे पुरुष हैं। हम चार आश्रम और वर्णों के महात्म्य की रक्षा नहीं कर सकते और उस सभ्यता के होते हुये अंत को नहीं रोकते हैं तो इसमें अब क्या आश्चर्य है।

यवनकाल

> शासन यवनों का यहाँ कैसा रहा इस देश में
> ऐसा कि जैसा पोप का यूरोप के था देश में।
> था दोष किसका या अशुभ फल वह हमारे कर्म का
> क्या भोगना पड़ता यहाँ दुष्कृत किये दुष्कर्म का ॥२९॥

भारत वर्ष में मुसलमानों का शासन काल यूरोप में पोपों के रहे आतंक और सार्वभौम सत्ता की स्मृति कराता है।

परन्तु यह सब हमारी परस्पर की फूट का ही परिणाम था। क्या कुकर्मों का कुफल नहीं भोगना पड़ता है?

राजत्व भर ये यवनपति हा! प्राण के ग्राहक रहे,
ये गौ, सुता, वधु, नारियों के थे सदा हारक रहे।
तलवार के बल हिन्दू थे इस्लाम में लाये गये,
आये न जो इस्लाम में, दुर्मृत्यु वे मारे गये ॥३८२॥

ये मुसलमान शासक अपने समूचे शासनकाल भर हमारे शत्रु बने रहे। इन्होंने गौ, हमारी स्त्रियों, वधु, बेटियों का अपहरण किया। तलवार का भय दिखा कर अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और अनेकों को जिन्होंने मुसलमान बनना अस्वीकृत किया, मृत्यु के घाट उतारा।

धन, द्रव्य पर उनके लगे रहते सदा ही दांत थे,
बिछड़े हुओं के रात के मिलते न शव हा! प्रात थे।
हा! दूधपीते शिशु गणों का वह रुदन देखा न था,
नरभूप था, यमभूप था, हमने उसे लेखा न था ॥३८३॥

ये यवन शासकगण सदा हमारे धन और सामग्री की अपने शासन में लूट करते रहे। रात्रि के बिछुड़े हुये बन्धु अपने परिजनों से पुनः प्रातः नहीं मिल सकते थे अर्थात् वे या तो मुसलमान बना दिये जाते या मार दिये जाते। माता पिता से अलग हुये छोटे-छोटे बच्चों का वह करुण क्रन्दन और हृदय विदारक दृश्य आज तक शायद ही किसी ने देखा होगा।

यवन शासक वस्तुतः नरक था या कृतान्त था — सचमुच हमने तो उसको नहीं देखा।

पर्दाप्रथा उस काल की हमको दिखाती याद है
वे मस्तकों में घुस जाते कौंधकर अवसाद हैं।
शासन उनका अब नहीं है याद उनकी रह गई
यह यदि मुस्लिम हिन्दुओं में मात्सर्यकारक बन गई ॥१८७॥

वर्तमान में यह पर्दाप्रथा उनके हमारे पर हुये अत्याचारों का स्मरण कराती रहती है और वे अत्याचारों की स्मृति मस्तिष्कों में बिजली-सी कौंधती रहती है। अब उनका शासन नहीं है परन्तु यह स्मृति हिन्दू और मुसलमान दोनों का सत्यानाश कर रही है।

ये मूर्तियें खण्डित यवन-व्यवहार हैं कहती रही
भूगर्भ में सोई हुई कितनी हमें हैं कह रही।
मंदिर हमारे अनगिनत मस्जिद मकबरे बन गये
हैं चिह्न जिनके आज भी बहु मन्दिरों में रह गये ॥१८८॥

हमारे मन्दिरों में जो खण्डित मूर्तियें हैं, भूगर्भ में पड़ी हुई विच्छिन्न मूर्तियाँ, हमारे मंदिर जो आज अनगिनत मस्जिद और मकबरे के रूप में विद्यमान हैं, अनेक पुनः मन्दिरों में परिवर्तित कर दिये गये हैं परन्तु फिर भी जिनमें अनगिनत मस्जिदादि के रूप के चिह्न अवशिष्ट रह गये हैं—ये सब यवनों के अत्याचारों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

अनगण्य अत्याचार हैं, जिनका न कुछ भी पार है
सब को यहाँ उद्धृत करें ऐसा न मुझको विचार है।

सम्राट अकबर को हमें सम्राट गिनना चाहिए,
उसके सदय व्यवहार का गुणगान करना चाहिए ॥२८६॥

हमारे पर हुये यवनों के अत्याचार अनत हैं और उन सब का वर्णन यहाँ करने का प्रमुख उद्देश्य भी नहीं है। सम्राट अकबर अवश्य सचमुच सम्राट था। उसने दया पूर्ण व्यवहार की आज भी हमको प्रशसा करनी चाहिए।

सम्राट बस औरग के थो। रग भी नव रग थे,
उस्ताद, काजी, मालवी, उनके सदा ही सग थे।
लाचार हो कर फिर हमें जजिया उसे देना पड़ा,
जब आ बनी थी धर्म पर उससे हमें लड़ना पड़ा ॥२८७॥

बादशाह औरङ्गजेब के ढंग विचित्र ही थे। कट्टर मुसल-मान उस्ताद, काजी और मौलवी के परामर्श बिना कोई कार्य भी नहीं करता था। उसने हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर लगाया और विपत्त हो कर हिन्दुओं को वह अपमान सूचक कर देना भी पड़ा। जब औरङ्गजेब आ[illegible] सीधा हमारे धर्म और कार्य पर ही करने लगा तो उससे [illegible] पड़े।

बृटिश-शासन—

अब है बृटिश साम्राज्य, पर वै
बहु बेटियाँ पर यवन से
ये बोलते मीठे भले,
अब लूट वैसी है नहीं, मेरा

१३

यवन शासक वस्तुतः भरत का था हमीं था। सचमुच हमने तो उसको नहीं हरा।

पद्मावती उस काल की हमको दिखाती याद है
व मकबरों में घूम आते औ' पकड़ अवसाद हैं।
शासन यवनका अब नहीं है, याद उनकी रह गई
पर यदि मुस्लिम हिन्दुओं में मालिन्यादिक बन गई ॥१६८॥

वर्तमान में वह पद्मावती हमको हमारे पर हुए अत्याचारों का स्मरण कराती रहती है और वे अत्याचारों की स्मृति मस्तिष्कों में बिजली-सी कौंधती रहती है। अब उनका शासन नहीं है परन्तु वह स्मृति हिन्दू और मुसलमान दोनों का मन मारा कर रही है।

ये मूर्तियें खण्डित यवन-व्यवहार हैं बतला रही
भूगर्भ में सोई हुई कितनी उन्हें हैं रूप रही।
मंदिर हमारे अरबयत मस्जिद मकबरे बन गये
हैं चिह्न जिनके आज भी बहु मन्दिरों में रह गये ॥१६९॥

हमारे मंदिरों में जो खण्डित मूर्तियें हैं भूगर्भ में पड़ी हुई विकलांग मूर्तियाँ हमारे मंदिर जो आज अरबयाला मस्जिद और मकबरे के रूप में विद्यमान हैं अनेक पुनः मंदिरों में परिवर्तित कर दिये गये हैं परन्तु फिर भी जिनमें अरबयाला मस्जिदादि के रूप के चिह्न अवशिष्ट रह गये हैं—ये सब यवनों के अत्याचारों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

अगणित्य अत्याचार हैं, जिनका न कुछ भी पार है
सब को यहाँ उद्धृत करें ऐसा न मुख्य विचार है।

सम्राट अकबर को हमें सम्राट गिनना चाहिए
उसके सदय व्यवहार का गुणगान करना चाहिए ॥३८६॥

हमारे पर हुये यवनों के अत्याचार अनंत हैं और उन सब का वर्णन यहाँ करने का प्रमुख उद्देश्य भी नहीं है। सम्राट अकबर अवश्य सचमुच सम्राट था। उसके दया पूर्ण व्यवहार की आज भी हमको प्रशंसा करनी चाहिए।

सम्राट बस औरंग के थे। रंग भी नव रंग थे,
उस्ताद, काजी, मौलवी, उसके सदा ही संग थे।
लाचार हो कर फिर हमें जजिया उसे देना पड़ा,
जब आ बनी थी धर्म पर उससे हमें लड़ना पड़ा ॥३८७॥

बादशाह औरङ्गजेब के ढंग विचित्र ही थे। कट्टर मुसलमान उस्ताद, काजी और मौलवी के परामर्श बिना कोई कार्य भी नहीं करता था। उसने हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर लगाया और विपक्ष हो कर हिन्दुओं को वह अपमान सूचक कर देना भी पड़ा। जब औरङ्गजेब आक्रमण सीधा हमारे धर्म और कार्य पर ही करने लगा तो उससे युद्ध भी करने पड़े।

वृटिश-शासन—

अब है वृटिश साम्राज्य, पर वैसे न इनके दाव हैं,
बहु बेटियों पर यवन से करते नहीं ये घाव हैं।
ये बोलते मीठे भले, देते हमें मिष्ठान्न हैं,
अब लूट वैसी है नहीं, मेरा यही अनुमान है ॥३८८॥

१३

भारतवर्ष में अब अंग्रेजों का राज्य है। इन अंग्रेज शासकों की चालें मुसलमान शासकों से सर्वथा भिन्न हैं। ये अंग्रेज शासक हमारी बहू-बेटियों पर भी दाँत नहीं रखते हैं। ये मधुर और हितकर शब्दों में बोलते हैं और मधुर भाव खाने को देते हैं। मेरे विचार से हमारा शोषण करने का अंग्रेजों का ढंग मुसलमानों के उस ढंग से सर्वथा भिन्न है।

हैं कोर्ट मुनसिफ खुल रहे होता जहाँ पर न्याय है
हम लार्ड परिषद तक चलें यदि हो गया अन्याय है।
इस लार्ड परिषद का हमें है लाभ कितना मिल चुका
जब लक लंदन भले बर्बाद धन जन कर चुका ॥१८७॥

अंग्रेजों के शासनकाल में न्यायालयों की एक अद्भुत व्यवस्था है। मुनसिफ कोर्ट से लगाकर लंदन में स्थित लार्ड परिषद तक अनेकों न्यायाधिकरण हैं। हम भारतवासियों ने अनेक बार लार्ड परिषद के द्वारों न्याय प्राप्त किया है और वहाँ यहान हमको लंदननगर के दर्शन करने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ है। धन और मनुष्य तो भले ही बर्बाद हुये हों।

है पास में पैसा अगर, सब काम चल कर आयगी
दोष ढकने पर कलम के रोशनी लग जायगी।
आवरे अब आग की हमें इनकी कृपा से मिल रही,
है इस कलम के सामने अब देवमाया कुछ नहीं ॥१८८॥

अंग्रेजों के शासनकाल में अनेक सुविधायें हैं। एक मात्र धन की आवश्यकता है। आपके सब कार्य यंत्र कर देंगे। अगर

पास में धन है तो बिजली का बटन दबाने पर भवन को जगा-मग करने वाला दीप्त प्रकाश बिखर पड़ेगा, रेडियोयंत्र देश-विदेश के समाचार सुना देगा। इस बिजली के बटन ने तो देवताओं के चातुर्य्य को भी परास्त कर दिया है।

इनके कलायें पास में हैं सुर, असुर, अमरेश की,
हम देखते हैं नेत्र से कितनी दया है ईश की।
मृत को जिलाना हाथ में अभी आया इनके नहीं,
अतिरिक्त इसके और कोई काम बाकी है नहीं ॥२६१॥

देवता राक्षस और इन्द्र जिन यन्त्रों का उपयोग करते हैं वे सब यंत्र आज इन अंग्रेज शासकों के पास में है। परमात्मा का आभार मानते हैं कि अंग्रेज शासक होने के कारण हम भारतवासियों को ऐसे यंत्र कम से कम नहीं बनाने दिये जाँय तो भी देखने का सुअवसर तो मिला है। केवल मरे हुये को ये जीवित नहीं कर सकते हैं, शेष सब बातें इनके अधिकार की हैं।

यह रेल, वायर की कहो है जाल कैसी बिछ रही,
हैं अम्बु-थल-नभयान की चालें मनोहर लग रही।
रसचार का व्यापार का श्री राम के भी राज्य में—
साधन नहीं था इस तरह जैसा मिला इस राज्य में ॥२६२॥

रेल, टेलीफोन, वायुयान, मोटर, साइकिल और जहाँज आदि की सर्वत्र भारतवर्ष में फैली व्यवस्थायें सहसा चित्त को हर लेती हैं। इन अंग्रेज शासकों के शासन काल में

वैभव भोग करने की और धन का उपार्जन करने की जैसी सुविधा है वैसी सुविधा तो रामराज्य में भी नहीं थी (भला क्यों होवे।)

> है भूरि भाग्य के सूचक सारे देश भर में घूम रहे
> निज स्वामियों के प्रति हमें सद्भक्ति हैं सिखला रहे।
> यह भूत छूताछूत का कितना भयंकर भय है
> हम तो पराभव पा चुके अब भागता अस्पृश्य है ॥२१३॥

भारतवासियों को अपने स्वामी के प्रति सद्भक्ति अर्थात् स्वामीभक्ति का एक पाठ पढ़ाने वाले भारतवर्ष में ये सहस्रों सूअर घूम रहे हैं। छूताछूत की महामारी को अनेक वर्षों के कठोर परिश्रम से भी हम तो नहीं हटा सके थे इन अंग्रेज शासकों का शासन का ढंग और इनकी रेल तार मोटर बस सिनेमा आदि की व्यवस्था ही इस ढंग की है कि यह छूताछूत की महामारी स्वतः नष्ट हो रही है।

> कानून परिषद में हमारे शूद्र हैं जाने लगे
> फिर भी न जाने क्यों नहीं अच्छे शुद्धि लगने लगे?
> सुविधा हमें सब दे रहे हैं लोग ये हैं कह रहे—
> "निजराज्य दे देंगे तुम्हें अवसर नहीं हैं सह रहे" ॥२१४॥

विधान परिषद में अब तो शूद्र भी सदस्य बनकर जा सकते हैं और जाते हैं फिर भी शान्त नहीं होता ऐसे भले अंग्रेज शासक क्यों नहीं अच्छे लगते हैं? इनके शासन काल में हमको अनेक सुविधाएँ हैं और ये स्वयं कह रहे हैं कि हम यह

सुअवसर देख रहे हैं जिस दिन हम भारतवासियों को स्वराज्य दे देंगे।

शासन हमें इन नरवरों का आज भाता क्यों नहीं,
दुर्भाव हममें हो भले, दुर्भाव इनमें तो नहीं।
यदि है हमारे कुछ जलन उर में उसे कह दे यहां,
ये स्वामि हैं, हम दास हैं, सब हैं क्षमा भूलें यहां ॥३६५॥

ये इतने कल्याणकारी और हितचिंतक शासक भी, ईश्वर जाने क्यों नहीं अच्छे लगते हैं। इनके हृदय में तो कोई दुर्भाव प्रतीत नहीं होते दुर्भाव हमारे हृदयों में इनके प्रति भले ही हों। इस पर भी अगर हम इनसे जलते हैं तो जलने का सर्व कारण इनके समक्ष निवेदन करने में कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि ये तो स्वामी हैं और हम इनके गुलाम हैं, गुलाम स्वामी को अपना दुःख नहीं कहे तो और किसको कहेगा; हमारे सर्व अपराध यहां क्षतव्य हैं।

सबसे प्रथम यह प्रार्थना तुम देश के होकर रहो,
इस दीन भारतवर्ष के तुम पुत्र सब होकर रहो।
करके उपार्जित धन यहां अन्यत्र यों फूको नहीं,
धन-द्रव्य भारतवर्ष का अन्यत्र जाने दो नहीं ॥३६६॥

आप शासकों से हमारी प्रथम प्रार्थना यह है कि इस दीन भारतवर्ष के आप सर्व शासकगण हितचिंतक पुत्र बनकर रहें और यहां जो धन आप उपार्जित करें वह अन्य देशों में व्यय

नहीं करें और व सर्व मार्ग भी बंद कर दें जिनसे भारतवर्ष का धन और द्रव्य अन्य देशों को जा रहा है।

हैं अन्य देशों में कला कौशल धड़ाधड़ बढ़ रहे
कल कारखाने नित्य अब हर देश में हैं खुल रहे।
सुविधा न इनकी है हमें अन्यत्र जैसी देखते
हा! हंत! भी रहना पड़ मुर्दे दूसरों का पेखते ॥२६७॥

हे समाज के शासको! प्रत्येक अन्य देशों में कला कौशल की धुआंधार उन्नति हो रही है और प्रतिदिन नवीन नवीन ढंग के कल कारखाने खुल रहे हैं। भारत वर्ष में नहीं तो वैसी कला कौशल की उन्नति ही है और नहीं कारखाने खोलने की वैसी स्वतंत्रता और सुविधा ही है। बड़ा दुःख होता है कि हम हर दृष्टि में दूसरों के मोहताज हैं।

जिनके हमारे बन्द हैं सब मार्ग भी हैं बन्द से
परतन्त्र के हम कोष में हैं फिर रहे पशुवृन्द से।
जब तक न भारत वर्ष को सुविधा न दा! ही आयगी
तब तक न यह दासत्व कीचड़ बेड़ियें कट पायेंगी ॥२६८॥

हम एक पशुगृह में बंद पशुओं के समान परतंत्र हो कर फिर रहे हैं। हमको अपने विचारों का प्रकाशन करने की और अभिलषित मार्ग ग्रहण करने की भी स्वतंत्रता नहीं है। जब तक भारतवासियों को वे सब सुविधायें जो एक स्वतन्त्र देश के निवासियों को होती हैं नहीं दी जावेंगी तब तक यह भारतवर्ष गुलाम ही बना रहेगा।

विद्या न वैसी मिल रही जैसी हमें अब चाहिये,
अज्ञान तम कहते हुए कैसे वढे वतलाइये?
कौशल, कला, व्यापार में हम ठेट से निष्णात थे,
हम घट गये, वे बढ़ गये, जो ठेट से बदजात थे ॥३९९॥

वर्तमान् समय में हमको जैसा शिक्षण मिलना चाहिये वैसा शिक्षण नहीं मिल रहा है। फिर वतलाइये युग के प्रतिकूल शिक्षण लेकर हम कैसे उन्नति कर सकते हैं। कला कौशल और व्यापार में हम अनत भूत काल मे निपुण थे। परन्तु यह देखकर दु'ख होता है कि हम तो अवनत हो गये और वे जो असभ्य और मुर्ख थे हम से आगे वढ गये।

सरकार का उपकार फिर भी बहुत कुछ देखो हुआ,
इनकी कृपा से आज इतना देखने को तो हुआ।
परतन्त्र के ये कोट जिस दिन देश से उड जायँगे,
शुभ दिन हमारे देश के फिर उस दिवस जग जायँगे ॥४००॥

अत में फिर भी हमको यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि बृटिश सरकार ने हमारे पर अनत उपकार किये हैं, जिनकी एक मात्र कृपा से हम इस सीमा तक तो पहुच सके हैं। भारतवर्ष का भाग्य उस दिवस को खुलेगा, जिस दिवस इसको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी।

हम आज—

वैसे न दिन अब हाय! हैं, वैसी न रातें हैं यहाँ,
अब हाय! वैसे नर नहीं, वैसी न नारी हैं यहाँ।

हा ! स्वर्ग-सा वह मूल भारत मूल सदृश रह गया
कण मात्र भी अब उस छटा का शेष है नहिं रह गया ॥४ १॥

है वायु भी बहती वही, आनन्दप्रद वैसी नहीं
ऋतुराज पावस ग्रीष्म की भी बात है वैसी नहीं।
बदली हुई हमको हमारी मातृभूमी दीखती
हा ! पूर्व-सी वैसी कृषी उसमें न होती दीखती ॥४०२॥

हाय ! यहीं तो अब बसे थे सुहावन दिन हैं और यहां थे वैसी आनंददायिनी रात्रियें हैं। पूर्वजों जैसे गुणधाम नहीं तो वे पुरुष हैं और नहीं वे वैसी साध्वी स्त्रियें हैं। हाय ! स्वर्ग के समान सर्वसुखों से भरा हुआ वह भारतवर्ष अब नहीं है। उस भूतकाल की उस अनुपम शोभा का अंश मात्र भी अब अवशिष्ट नहीं रहा है।

पवन जो भूत काल में बहता था अब भी वही बहता है लेकिन वैसा सुख कर नहीं बसंत वर्षा और ग्रीष्म ऋतुयें भी अब वैसी नहीं हैं। समस्त भारत भूमी हमको एक दम परिवर्तित हुइ सी दिखाई देती है। अब भारतभूमी में वैसी कृषि भी नहीं होती प्रतीत होती है।

> अघचार पापाचार हिंसाचार मिथ्याचार हैं
> रसचार हैं रतिचार हैं सबके बुरे व्यवहार हैं।
> हम दीन हैं मतिहीन हैं नहिं मद्य पर आधीन हैं
> दासत्वता में पूरता से हाय ! अब स्वाधीन हैं ॥४०३॥

सर्व भारतवासी शूद्रकर्म, पाप, हिंसा और झूठे कर्म करते हुये दिखाई देते हैं, वैभवभोग में, व्याभिचार में अनुरक्त हैं ? सर्व भारतवासियों के व्यवहार बड़े बुरे हैं। हे परमेश्वर ! अब तो हम सर्व प्रकार से दीन हैं, निर्बुद्धि हैं, । स्त्रीलपटी हैं और गुलामी और नौकरी में ही आसक्त हैं।

वर्तमान खण्ड

गाती रही तू भूत भव तक लेखनी उत्साह भर
रोना है तुझसे जायगा अब आज का दिन दाहकर।
निस्तेज हैं, निश्चेष्ट हैं नहिं नाड़ियों में रक्त है
अब श्वाँस भी रुकने लगी अंतिम हमारा वक्त है ।। १ ।।

हे लेखनी! तू अब तक गौरव भरे भूत काल का वर्णन प्रेम पूर्वक लिखती रही परन्तु इस काल के दुःखद वर्तमान को तू देखकर ऐसी विकल हो जायगी कि इसका वर्णन करना तो दूर रहा रो भी न सकेगी। हम अशक्त हैं असमर्थ हैं नसों में रक्त भी नहीं रहा है श्वाँस की गति भी मन्द पड़ रही है ऐसा प्रतीत होता है अब हमारा अन्तिम समय सन्निकट आ गया है।

क्या बंधुओं! हमको कहाने का मनुज अधिकार है!
दर दर हमें दुत्कार है। धिक्! धिक! हमें धिक्कार है!
कटुकर लगेंगे आपको ये वाक्य हैं जो कह रहा
पर क्या करूँ? लाचार हूँ मेरा हृदय नहीं रह रहा ।।२।।

हे भ्राताओ! क्या हमको (ऐसी स्थिति में) मनुष्य कह लाने का अधिकार है? हमको अनन्त धिक्कार हैं कि हम मनुष्य फिर भी हमारा दर दर अपमान होता है। मेरा यह

निवेदन यद्यपि आप वधुओं को अप्रिय लगेगा, लेकिन क्या करूँ? विवश हूँ, मुझसे निवेदन किये विना रहा नहीं जाता।

दयनीय हा! इस दुर्दशा का हे विभु! कहाँ छोर है?
इस ओर भी हम हैं नहीं, नहिं नाथ! दूजी ओर हैं।
हम में विषैली फूट है, हम में वढ अवचार है,
हैं रोग ऐसे वढ रहे, जिनका न कुछ उपचार है ॥३॥

हे भगवन्! इस करुणाजनक दुर्दिवस की भी कहीं सीमा है? हे प्रभु! न हम इस ओर (मृतजनों में) ही हैं और न उस ओर (जीवतजनों में) ही हैं। हम में घातक फूट फैली हुई है, अत्याचार वढा हुआ है और ऐसे ऐसे नाशक दुर्व्यसन और प्रथायें वढी हुई हैं कि जिनको निर्मूल करने का हमारे पास में सवल उपाय भी नहीं है।

है अज्ञता-श्यामा-अमा सम्यक् हमें घेरे हुये,
हैं नाथ! हम रतिकामिनी के कक्ष में सोये हुये।
एकान्त हो, तमभार हो, रति रूपकी-सहवास हो,
उस ठौर पर कल्याण की क्या नाथ! कोई आश हो ॥४॥

हे भगवन्! हमको अज्ञानता रूपी काली निशा ने घेर रक्खा है और सुन्दर कामातुर स्त्रियों का हमको सग प्राप्त है। हे परमात्मन्! उस स्थान पर कैसा कल्याण-कुशल जो एकान्त हो, अंधकार से ढका हुआ हो और जहाँ सुन्दर रमणी प्राप्त हो।

गुर्जर व मालव देश के हम शाह थे सरदार थे,
सौराष्ट्र, राजस्थान के आमात्य थे सूदार थे।

हिंसक तथा या जैन हैं, या नारि नर भी हैं नहीं,
क्योंकि हमारे कार्य तो नर-नारि सम खलु हैं नहीं ॥७॥

हम शाहूकार हैं या चोर हैं, मनुज हैं या राक्षस हैं, स्त्री हैं या पुरुष हैं शूद्र हैं या वैश्य या क्षत्री, हिंसावादी हैं या अहिंसावादी, या हम स्त्री भी नहीं और पुरुष भी नहीं, क्योंकि हमारे कर्म सचमुच न पुरुषों के और न स्त्रियों के ही।

अविद्या

क्यों सूत्र ढीले पड गये ? क्यों अवगुणों में ढक गये ?
क्यों मन-वचन अरविंद पर पाले शिशिर के पड़ गये ?
निज जाति, धन, जन, धर्म का क्यों ह्रास दिन-दिन हो रहा ?
हम चेतते फिर क्यों नहीं ? क्या रोग विभुकर ! हो रहा ? ॥८॥

हमारी व्यवस्थायें कैसे शिथिल हो गई ? हम में अवगुण किस प्रकार भर गये ? मन और वचन रूपी कमलों पर तुषार वृष्टि कैसे हो गई ? प्रति दिन अपनी जाति की, धन की, मनुष्यों की और धर्म की क्षति कैसे हो रही है ? हे परमात्मन् ! हम ऐसे कैसे रोग से ग्रस्त हैं कि कुछ भी सचेतना नहीं होती ?

हममें विषय का जोर क्यों ? हम में बढा अतिचार क्यों ?
उन्मूल हमको कर रहा है अध श्रद्धाचार क्यों ?
घातक प्रथायें, रीतियों के घोर हम हैं अङ्क क्यों ?
हम आप अपने ही लिये उत्कीर्ण करते खड्ड क्यों ? ॥९॥

हममें विषय-वासना क्यों बढी हुई है अमर्यादित आचारों

का प्रकोप क्यों हो रहा है? घातक अन्ध विश्वास हमारा सर्वनाश करने पर क्यों तुला हुआ है? विनाशी प्रथायें एवं रीतियें इतनी प्रचलित क्यों हो रही हैं? हमारे गिरने के लिये हम ही गड्ढ क्यों खोद रहे हैं?

अतिव्यय हमारे में अधिक क्यों आप से हैं बढ़ रहे?
असमेल-अनुचित शिशुप्रणय हममें अधिक क्यों पढ़ रहे?
हममें सुशिक्षा की व्यवस्था नाम का भी क्यों नहीं?
क्यों सो रहे पुन नींद हैं? हम जागते हैं क्यों नहीं ॥१॥

हमारी आप की अपदा व्यय अधिक क्यों हो रहे हैं? वृद्धविवाह बालविवाह असंगतविवाह का प्रचार अधिकाधिक क्यों बढ़ रहा है? हमारी समाज में सुशिक्षण की व्यवस्था किंचितमात्र भी क्यों नहीं है? हे परमेश्वर! ऐसी कैसी दीर्घ निद्रा हम सो रहे हैं? हम जाग्रत क्यों नहीं हो रहे हैं?

क्यों आज अब को 'अर' को अर 'पोल' को रज लिख रहे?
है चार पट लिखना जहाँ 'चौपट' वहाँ क्यों लिख रहे?
सुत को सुता क्यों लिख रहे? क्यों बन रहे नादान हैं?
इस ज्ञान अज्ञापन गेह में हम क्यों अजब हतज्ञान हैं?॥११॥

हम इतने अज्ञान कैसे हैं कि जहाँ अजमेर लिखना चाहिये वहाँ 'आजमर' लिख रहे हैं और रोज के स्थान में रज और चार पट लिखना है वहाँ चौपट लिख रहे हैं, सुत की सुता लिख रहे हैं। इस अज्ञापन विश्व में हम इस प्रकार ज्ञान विहीन कैसे विचरण कर रहे हैं?

इस अवदशा का बंधुओ ! क्या हेतु होना चाहिए ?
क्या द्वेष, मत्सर, राग को जड़ हेतु कहना चाहिए ?
इनका जहाँ पर जन्म है—जड़हेतु सच्चा है वही,
इनकी अविद्या मातृ है, जड़हेतु अवनति का वही ॥१२॥

हे भ्राताओ ! हमारी इस दुर्दशा का मूल कारण क्या है? क्या पारस्परिक द्वेष, इर्षा या स्नेह को हम इस दुर्दशा का मूल कारण कह सकते हैं ? मेरे विचार से हमारी दुर्दशा का मूल कारण वह है जहाँ इन पारस्परिक राग-द्वेष और इर्षा का जन्म होता है। सचमुच हमारे इस पतन का मूल कारण अविद्या है जो इन अवगुणों की एक मात्र जननी है।

आर्थिक स्थिति

एकाक्ष का अंधे जनों में मान बढ़ता है यथा,
कंकाल भारतवर्ष में श्रीमंत जन हम हैं तथा।
कुछ मोड़ कर ग्रीवा सखे ! तुम पूर्व वैभव देखलो,
फिर दीन हो श्रीमंत या जल कल बहा कर लेखलो ॥१३॥

अंधे मनुष्यों में जिसप्रकार काने का मान बढा हुआ होता है ठीक उसी प्रकार इस आज के दीन भारत की दीन जातियों में हमारा मान बढा हुआ है। परन्तु हे मेरे मित्रो। कुछ श्रम उठाकर अपने अतीत के वैभव को तो अवलोको और फिर अश्रु बहाकर बतलाओ कि अब तुम दीन हो या श्रीमंत हो।

हे बन्धुओ! गणना हमारी लख तेरह है अभी
कोटीश जन लखपति बन हममें मिलें कितने अभी?
मैं भी रहा भ्राता तुम्हारा जानता सब भेद हूँ
अब बोझसे गृह पोत को मैं बन रहा गुरुतर हूँ ॥१४॥

हे भ्राताओ! हम आज भी संख्या में तेरह लख हैं। हमारे में कितने धनी कोटीश और लखपति हैं—यह मैं भली भाँति जानता हूँ। मैं आपका ही भ्राता हूँ मुझसे कुछ भी अज्ञात नहीं है आज मैं अपने घर का मिथ्या मद ढोने के लिये घर का बोझ बन रहा हूँ।

हम पाँच प्रतिशत भी नहीं श्रीमन्त पद के योग्य हैं
चालीस प्रतिशत भी नहीं हम पेट भरने योग्य हैं।
पैंतीस प्रतिशत आत्मजा को बेच कर हैं जी रहे;
अवशिष्ट रहते बीस विष मारे क्षुधा के पी रहे ॥१५॥

हमारे में पाँच प्रतिशत मनुष्य श्रीमन्त कहलाने के योग्य हैं कठिनता से चालीस प्रतिशत मात्र उदर भरने के योग्य मिलेंगे। पैंतीस प्रतिशत ऐसे मनुष्य हैं जो कन्याविक्रय कर अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं और शेष रहते बीस प्रतिशत क्षुधा के मारे अनेक अनुचित ढंगों से अपनी जीवन लीला समाप्त करते जा रहे हैं।

अपव्यय

हा! जाति निर्धन हो चुकी—क्या ध्यान हमको है भला?
ऐसे में यह भी ध्यान विषय भोगों पर है चला।

सहस्रों गुण्डे धनवान बन गये हैं। प्राचीन मन्दिर सैकड़ों की संख्या में पूजन की समुचित व्यवस्थायें न होने के कारण उजड़ रहे हैं और इस पर भी हमारी मूढता देखिये कि नूतन मन्दिरों की संख्या दिनो दिन बढ रही है जब कि हमारा समाज दिनोंदिन घटता जा रहा है।

अब धर्म के है कार्य में प्रतियोगितायें चल रहीं,
बढकर हमारे हो महोत्सव योजनायें फल रहीं।
हा! जाति निर्धन हो चुकी, व्यापार चौपट हो चुका,
पड़ धर्म भी प्रतियोगिता में भ्रष्ट सारा हो चुका ॥२१॥

अब हम लोग धर्म कार्यों में भी व्यय करते समय परस्पर होड़ाहोड़ कर रहे हैं और वे ही अतिव्ययशालिनी योजनायें बहुमत से पास की जाती हैं। हा! दुःख! समाज कंकाल हो गया, व्यापार-व्यवसाय चौपट हो गये, और इस प्रकार की होड़ाहोड़ में पड कर स्वय धर्म भी सर्वदृष्टि से भ्रष्ट हो गया।

हम मूर्ख हैं अनपढ तथा नहिं सोच भी हम कुछ सकें,
फिर व्यर्थ व्यय, अपयोग को क्या समझ भी हम कुछ सके,
हम वैश्य शाहूकार हैं, जल-सा न धन फिर क्यों बहे,
वे श्रेष्ठि पूर्वज मर गये! मणि कपि करों में क्यों रहे ?॥२२॥

ऐसी दशा में जब कि हम अज्ञान हैं, अशिक्षित हैं, और न विचारवान हैं;भला धन के अपव्यय और दुरुपयोग के प्रश्नों को समझ भी कैसे सकते हैं। हम वैश्य हैं, शाहूकार हैं फिर पानी के समान धन क्यो न व्यय हो ? हा! हमारे श्रीमन्त

चाहे पास में धन संपत्ति कुछ भी न हो, इससे मान में कोई अधिक कमी नहीं आ जाती अथवा धन कुशलीनता ऐसे अवसरों पर अति व्यय करने में ही सिद्ध है। मृतक-भोजन द्वारा सहस्रों बाल विधवायें भोजन तक की भिखारिन बन गई हैं कितने ही कुटुम्ब निर्धन हो गये हैं फिर भी मृतक भोजन देने की प्रथा में कोई विशेष कमी दृष्टिगोचर नहीं होती।

मेले महोत्सव तीर्थयात्रा अरु प्रतिष्ठा कार्य में
उद्यापनादि दीक्षादि में शोभाविवर्धक कार्य में—
हतज्ञान हो हम आप से व्यय बहु गुणित हैं कर रहे
सत्कर्म को दुष्कर्म कर निर्धन स्वयं हैं बन रहे ॥१५॥

हम मेलों के अवसरों पर, महोत्सवों में, तीर्थयात्राओं में उद्यापनों के अवसरों पर दीक्षादि के समयों पर, और शोभावर्धक एवं प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले धर्म कार्यों पर हम विवेक और बुद्धि हीन होकर इतना अपव्यय कर रहे हैं कि इन धर्मकार्यों को भी हम परिणाम की दृष्टि से दुष्कर्म बना रहे हैं।

हम मन्दिरों के आय-व्यय को आँक हम सकते नहीं
क्या तीर्थ धन खाकर बनी हैं बन गये गुण्डे यहीं।
मन्दिर पुराने सैकड़ों पूजन बिना हैं सड़ रहे
हम नव रहे हर वर्ष हैं पर चैत्यगृह हैं बढ़ रहे ॥१६॥

हमारे मन्दिरों पर होते आय-व्यय का ऐक्यावलोकन करना भी अति कठिन है। हम मन्दिर तीर्थों के द्रव्य को खाकर

है कि उसको उसकी कामक्रीड़ा में विलंब न हो और सुन्दर इसलिये कि उसकी पापलीला का भ्रम न खुलने पावे।

वेश-भूषा

निज वेश-भूषा छोड़ना यह देश का अपमान है,
क्या हाय! अब अनुकरण में ही रह गया समान है।
जो देश खलु ऐसा करे, वह देश जीवित है नहीं,
यदि चढ गया रग लाल तो फिर श्वेतपन वह है नहीं॥२५॥

अपने देश का रहन-सहन, वेष-भूषा बदल देना अपने देश का अपमान करना है। दुःख! क्या अब अन्य देशों का अनुकरण करने में ही हम भारतवासियों का मान रह गया है। जो देश अन्य देश का दिग्मूढ होकर इस प्रकार अनुकरण करता है वह देश वस्तुतः जीवित नहीं है। यदि लाल रंग एक बार चढ़ गया तो फिर वह श्वेतता प्राप्त नहीं होगी।

इस वृद्ध भारतवर्ष का यह वृद्ध भूषावेश है,
चारित्र-दर्शन-ज्ञान का यह पूत! पार्थिव वेश है।
हम दूसरों की कर नकल अब सिद्ध यह हैं कर रहे,
जन्मे नहीं हम पूर्व थे, हम जन्म अब हैं धर रहे॥२६॥

इस वृद्ध भारतवर्ष की यह वस्त्र सभ्यता अतिम और वृद्ध है। हमारे धारण किये जाने वाले वस्त्रों के आकार-प्रकार एवं ढंगों से हमारे चरित्र, विवेक और ज्ञान का परिचय विशद रूप से होता जाता है। हमारे वस्त्र चारित्र-दर्शन और ज्ञान

पूर्वज तो मर गये और उनका धन हम बंदरों के हाथोंमें पड़ गया

अपयोग

किस काम में हम ध् ग दें धन—देखते नहिं कार्य है;
परिणाम तब उस द्रव्य का होता नहीं शुभ भार्य है।
कुछ द्रव्य की करना व्यवस्था है हमें आती नहीं
हैं अन्य की हम राय फिर पर भी हमें भाती नहीं ॥१३॥

धन का समुचित उपयोग करना भी हम लोगों को नहीं आता है। किस कार्य में धन का किस प्रकार कैसा उपयोग करना चाहिए यह कार्य हम नहीं ढूँढते हैं; फिर वस्तुओं उस विचारहीन होकर किये गये धन क उपयोग का फल शुभ कैसे हो सकता है ? हम लोगों को न तो धन की व्यवस्था ही करनी आती है और न हम इतने विचारशील हैं कि धन की व्यवस्था करने में हमें अन्य की संमति अच्छी लगे।

उत्साह में आकर अहा! हम शिरियालय खोल दें;
होकर प्रभावित शीघ्र ही हम दान-शाला खोल दें।
धर्मार्थ भोजन-भवगृह यदि खोलते देरी कर
उसमा धर्मगोपासना में हम विलम्ब भारी करें ॥१४॥

हम प्रेरित होकर या किसी के व्याख्यान से प्रभावित हो कर विद्यालय और दानशालायें इतनी शीघ्रता एवं उत्साह के साथ खोल देते हैं जैसे कामी पुरुष आये हुये धर्म कार्य को सुन्दर और शीघ्र करना चाहता है। वह शीघ्र इसलिये करता

दिये जायेंगे तब तक हमारा साम्राज्य भारत में दृढ नींव नहीं पकड़ सकेगा और हम देखते हैं कि वे आज तक इसी मतव्य को दृष्टि में रखकर शासन-कार्य करते रहे हैं।

हम छोड़ कर हैं वेश भूषा देश लज्जित कर रहे,
अपमान संस्कृति का हमारी हम स्वय हैं कर रहे।
पूर्वज हमारे स्वर्ग मे आकर अगर देखें हमें,
मैं सत्य कहता हूँ सखे। पहिचान नहिं सकते हमें ॥२९॥

हम इस प्रकार अपने वेष-भूषा को परिवर्तित कर अपने देश को लज्जित कर रहे हैं और हम स्वय अपनी सभ्यता एव संस्कृति का अपमान कर रहे हैं। मेरे मित्रो। मैं सत्य कहता हूँ, अगर पूर्वज आकर हमको देखे तो वे सचमुच हमको पहिचान नहीं सकेंगे कि हम उनकी संतान हैं।

नर नारि हैं या नारि नर—यह वेश कहता भी नहीं,
'नर-वेश' नर का भी नहीं, 'रति-वेश' रति का भी नहीं।
नर-वेश भी जब है नहीं, नहिं नारियों का वेश है,
यह कौन-सा फिर देश है, यह तो न भारत देश है! ॥३०॥

पुरुष (अब) स्त्री बन गया है या स्त्री (अब) पुरुष बन गई है। इस वेष से कुछ यह भी तो स्पष्ट नहीं हो सकता। न पुरुष का वेष पुरुष का है और न स्त्री का वेष स्त्री का रहा है। और न (दोनों का) पुरुष-वेष है और न स्त्री वेष। यह फिर ऐसा कौन-सा देश है, यह भारतवर्ष तो प्रतीत नहीं होता।

दिये जायँगे तब तक हमारा साम्राज्य भारत में दृढ नींव नहीं पकड़ सकेगा और हम देखते हैं कि वे आज तक इसी मतव्य को दृष्टि में रखकर शासन-कार्य करते रहे हैं।

हम छोड़ कर हैं वेश-भूषा देश लज्जित कर रहे,
अपमान संस्कृति का हमारी हम स्वयं हैं कर रहे।
पूर्वज हमारे स्वर्ग से आकर अगर देखें हमें,
मैं सत्य कहता हूँ सखे! पहिचान नहिं सकते हमें ॥२६॥

हम इस प्रकार अपने वेष-भूषा को परिवर्तित कर अपने देश को लज्जित कर रहे हैं और हम स्वयं अपनी सभ्यता एवं संस्कृति का अपमान कर रहे हैं। मेरे मित्रो! मैं सत्य कहता हूँ, अगर पूर्वज आकर हमको देखें तो वे सचमुच हमको पहिचान नहीं सकेंगे कि हम इनकी संतान हैं।

नर नारि हैं या नारि नर—यह वेश कहता भी नहीं,
'नर-वेश' नर का भी नहीं, 'रति-वेश' रति का भी नहीं।
नर-वेश भी जब है नहीं, नहिं नारियों का वेश है,
यह कौन सा फिर देश है, यह तो न भारत देश है! ॥३०॥

पुरुष (अब) स्त्री बन गया है या स्त्री (अब) पुरुष बन गई है। इस वेष से कुछ यह भी तो स्पष्ट नहीं हो सकता। न पुरुष का वेष पुरुष का है और न स्त्री का वेष स्त्री का रहा है। और न (दोनों का) पुरुष-वेष है और न स्त्री वेष। यह फिर ऐसा कौन-सा देश है, यह भारतवर्ष तो प्रतीत नहीं होता।

खान पान

भाइयो! हम जैन हैं यह मान सकते नहीं
ऐसे कभी भी जैन के तो कर्म हो सकते नहीं।
हम मांस निर्मित निस्य हैं भोजन विदेशी खा रहे
दुष्नाम कर भी धर्म का हम जैन हैं कहला रहे ॥२१॥

हे बन्धुओ! हमारा आहार-आचार अवलोकन कर मनुष्य यह विश्वास नहीं कर सकते कि हम जैन हैं। जैसे हमारे कर्म हैं वैसे कर्म एक जैन के तो नहीं हो सकते। विदेशी भोजन-सामग्री जो प्रायः मांसादि के सम्मिश्रण से बनती है हम रुचि के साथ उसका उपयोग कर रहे हैं—इस प्रकार हम अहिंसा-रक्षक जैन धर्म को कलंकित कर जैनी कहला रहे हैं।

विस्की 'बरबर्डी' 'ब्रान्डी-म्हाइन' हमें रुचिकर लगे;
आपान अम न-चीज के बिस्कुट हम मधुकर लगे।
हममें शराबी मांसप्रिय में भेद अब क्या रह गया
अब खान पीन मात्र में जैनत्व सब है रह गया ॥२२॥

हम जैन होकर विस्की बरबर्डी और ब्रान्डी आदि मादक पदार्थों का उपयोग करते हैं आपान-अम न आदि अण्डों के बिस्कुटादि खाद्य वस्तुओं का भी उपयोग करते हैं जिनका उपयोग करना जैन-धर्म की दृष्टि से निषिद्ध है। अब बतलाइये! हम लोगों में और शराबी मांसाहारियों में क्या अन्तर है? क्या सब जैनत्व एक मात्र जल छान कर पीने में ही सिमिट गया है?

फैशन

ये युवक हैं या युवतियें-पहिचान में आता नहीं,
पहिने हुये ये पेन्ट हैं, साया तथा पत्ता नहीं।
सिर पर चमकती माँग है, नहिं मूँछ मुँह पर हैं कहीं,
नाटक-सिनेमा की कहीं ये नायिकायें हैं नहीं ॥३३॥

आधुनिक युवक और युवतियों के वस्त्र और अंगों का शृंगार परस्पर ऐसा मिलता-सा हो गया है कि यह भी प्रतीत नहीं होता कि यह व्यक्ति युवक है या युवती। पेंट और साया के प्रकार में थोड़ा-सा अन्तर है, दोनों के शिरो पर माँग है, दोनों के मुँहों पर मूँछ नहीं है। शंका हो जाती है कि कहीं ये नाटक और सिनेमा गृहो में अभिनय करने वाली अभिनेत्रिये तो नहीं है।

सर्वांग इनके वस्त्रमें सब को प्रदर्शित हो रहे,
निर्लज्जता की अवतरित ये मूर्ति सच्ची हो रहे।
हा! आर्य-जगती! आज तेरा शील चौपट हो गया,
व्यभिचार से हम दूर थे-नैकट्य उसमे हो गया ॥३४॥

इन युवक और युवतियों के सर्व अंग इनके वस्त्रों में सब को स्पष्ट दिखलाई देते हैं। सचमुच आज के युवक और युवती निर्लज्जता की साकार प्रतिमायें हैं। हा! आर्यजगती! आज तेरी शिष्टता उन्मूल हो गई। हमारे युवक और युवती जो व्यभिचार से कोसों दूर रहते थे आज व्यभिचार के निकट बस रहे हैं।

खान-पान

भाइयों! हम जैन हैं, यह मान तक सकते नहीं
ऐसे कभी भी जैन क्या तो व्यर्थ हो सकते नहीं।
हम मांस निर्मित नित्य हैं भोजन विदेशी खा रहे
दुष्काम कर भी धर्म का हम जैन हैं कहला रहे ॥११॥

हे बन्धुओ! हमारा आहार-आचार अवलोक कर मनुष्य यह विश्वास नहीं कर सकते कि हम जैन हैं। जैसे हमारे कर्म हैं वैसे कर्म एक जैन के तो नहीं हो सकते। विदेशी भोजन सामग्री प्रायः मांसादि के सम्मिश्रण से बनती है हम रुचि के साथ उसका उपयोग कर रहे हैं—इस प्रकार हम अहिंसात्मक जैन धर्म को कलंकित कर जैनी कहला रहे हैं।

विस्की 'बरखी' 'ब्रांडी-श्याम्पेन' हमें रुचिकर लगें।
आपान क्रम न-भील के बिस्कुट हमें मधुकर लगे।
इसमें शराबी मांसभक्षी में भेद क्या रह गया
जल छान पीने मात्र में जैनत्व सब है रह गया ॥१२॥

हम जैन होकर विस्की बरखी और ब्रांडी आदि मादक पदार्थों का उपयोग करते हैं आपान-क्रम में आदि मदेरों के बिस्कुटादि खाद्य वस्तुओं का भी उपयोग करते हैं जिनका उपयोग करना जैन-धर्म की दृष्टि से निषिद्ध है। अब बतलाइये। हम लोगों में और शराबी मांसाहारियों में क्या अन्तर है? क्या सब जैनत्व एक मात्र जल छान कर पीने में ही सिमिट गया है?

फैशन

ये युवक हैं या युवतियें-पहिचान में आता नहीं,
पहिने हुये ये पेन्ट हैं, साया तथा पत्ता नहीं।
सिर पर चमकती माँग है, नहिं मूँछ मुँह पर हैं कहीं,
नाटक-सिनेमा की कहीं ये नायिकायें हैं नहीं ॥२३॥

आधुनिक युवक और युवतियों के वस्त्र और अंगों का शृंगार परस्पर ऐसा मिलता-सा हो गया है कि यह भी प्रतीत नहीं होता कि यह व्यक्ति युवक है या युवती। पेंट और साया के प्रकार में थोड़ा-सा अन्तर है, दोनों के शिरों पर माँग है, दोनों के मुँहों पर मूछ नहीं है। शंका हो जाती है कि कहीं ये नाटक और सिनेमा गृहों में अभिनय करने वाली अभिनेत्रियें तो नहीं है।

सर्वांग इनके वस्त्रमें सब को प्रदर्शित हो रहे,
निर्लज्जता की अवतरित ये मूर्ति सच्ची हो रहे।
हा! आर्य-जगती! आज तेरा शील चौपट हो गया,
व्यभिचार से हम दूर थे-नैकट्य उसमे हो गया ॥२४॥

इन युवक और युवतियों के सर्व अंग इनके वस्त्रों में सब को स्पष्ट दिखलाई देते हैं। सचमुच आज के युवक और युवती निर्लज्जता की साकार प्रतिमायें हैं। हा! आर्यजगती! आज तेरी शिष्टता उन्मूल हो गई। हमारे युवक और युवती जो व्यभिचार से कोसों दूर रहते थे आज व्यभिचार के निकट बस रहे हैं।

में अपनी संतान का विवाह कर उन्हें निर्बल बनाते हैं अथवा य इस प्रकार यमराज को निमंत्रण देकर अपनी संतान भेंट करते हैं।

ये जाति के अभिशाप हैं निर्मूल ये हैं कर रहे
संतान भावी को तथा हैं हीन-दुखिया कर रहे।
यदि हाल जो ऐसा रहा—मिट एक दिन हम जायेंगे।
इन पापियों के पाप का फल हाय! कटु हम पायेंगे ॥४०॥

ऐसे माता पिता जाति के कुठार हैं जो जाति को जड़ से उखाड़ रहे हैं। ये अपनी संतान का बाल विवाह करके जाति की भावी संतान को हीन और दुःखी बना रहे हैं। यदि यही गति-विधि रही तो समझिये हमारा एक दिन अस्तित्व ही मिट जायगा और यह होगा कि इन पापियों के पाप कर्मों का दुष्फल इस प्रकार हमको भुगतना पड़ेगा।

है रोग इतना ही नहीं कुछ और हैं लग रहे
अनमेल वय में वृद्ध वय में प्रथम फिर हैं पग रहे।
बहु पत्नि-पीड़न की प्रथा है आज इसमें दीखती
इस व्यथा को हैं सब पक्ष की बाल-नारियाँ चीखती ॥४१॥

बाल विवाह ही एक मात्र बीमारी हो सो बात नहीं है। बीमारियां अन्य भी कई हैं। अनमेल विवाह, वृद्धविवाह और बहुविवाह का भी जोर अति अधिक है। अधिक क्या कहें—अब हमारी जाति के सब समय के घर उजड़ने लग गये हैं।

ये बाल विधवायें हजारों दे रहीं कटु शाप हैं
बालक विधुर हो फिर रहे हैं देखते निज आप हैं।

वृद्धायु के दुष्प्रणय ने हा! बल-हमारा हर लिया,
हा! युवकदल के सत्व को कामी कुकुर ने हर लिया!! ॥४२॥

ये बाल विवाह के प्रताप से सहस्रों बालविधवायें जाति को कोश रही हैं और अनेक युवक विधुर होकर फिर रहे हैं। इस पर फिर वृद्ध विवाह ने भारी संकट उपस्थित कर रक्खा है। कामी कुत्तों की तरह वृद्ध विवाह कर युवकों का अधिकार अपहरण कर रहे हैं।

अवनत रहेगी जाति वह, जिसको कि ऐसा हाल है,
आजाय उसको मृत्यु कब—अवगत नहीं वह काल है।
मेरे युवक! अब आँख खोलो-ध्यान अब कुछ तुम करो,
इन कुक्कुरों की संघठन, नृपशक्ति से वश तुम करो ॥४३॥

जिस समाज की ऐसी स्थिति है, वह समाज सदा अवनत ही रहेगा। उस क्षण का पता नहीं। कब उसका अंत हो जाय। मेरे युवको! नेत्र खोलो, और समाज की इस अवनत दशा पर कुछ ध्यान दो। इन कामी वृद्ध कुत्तों को संगठन के बल से या राज्याज्ञा के बल से वश में करो

संबन्ध जो हैं असम वय में, अल्प वय में कर रहे;
बहु पाणि पीड़न की प्रथा पर जो मनुज हैं अड़ रहे।
वे मातृ हो या पितृ हो या हो प्रबल बलधर भले,
प्रतिकार तुम उनका करो—वे नाश करने पर तुले ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य अपना या अपनी संतान का विवाह अनमेल वय में, अल्प वय में करते हैं तथा वे मनुष्य जो बहुविवाह
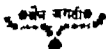
में अपनी संतान का विवाह कर हम निर्बल बनाते हैं अथात् व इस प्रकार यमराज को निमंत्रण देकर अपनी संतान भेंट करते हैं।

ये जाति के अभिशाप हैं निर्मूल ये हैं कर रहे
संतान भावी को सदा हैं दीन-दुखिया कर रहे।
यदि हाल जो ऐसा रहा—मिट एक दिन हम जायेंगे।
इन पापियों के पाप का फल हाय! कटु हम पायेंगे ॥४०॥

ऐसे माता पिता जाति के कुठार हैं जो जाति को जड़ से उखाड़ रहे हैं। ये अपनी संतान का बाल विवाह करके जाति की भावी संतान को दीन और दुखी बना रहे हैं। यदि यही गति-विधि रही तो समझिये हमारा एक दिन अस्तित्व ही मिट जायगा और यह होगा कि इन पापियों के पाप कर्मों का दुष्फल इस प्रकार हमको भुगतना पड़ेगा।

है रोग इतना ही नहीं; दुख कई हैं जग रहे
अनमेल वय में वृद्ध वय में प्रणय फिर हैं पग रहे।
बहु पाणि-पीडन की प्रथा है आज हममें दौड़ती
हम क्या कहें हैं अत यह की काल-घड़ियाँ चौकती ॥४१॥

बाल विवाह ही एक मात्र बीमारी हो सो बात नहीं है। बीमारियें अन्य भी कई हैं। अनमेल विवाह वृद्धविवाह और बहुविवाह का भी जोर अति अधिक है। अधिक हम क्या कहें—अब हमारी जाति के अंत समय के घंटे बजने लग गये हैं।

ये बाल विधवाएं हजारों दे रहीं कटु शाप हैं
बालक विधुर हो फिर रहे हैं देखते नित आप हैं।

वृद्धायु के दुष्प्रणय ने हा ! बल-हमारा हर लिया,
हा! युवकदल के सत्व को कामी कुकुर ने हर लिया!! ॥४२॥

ये बाल विवाह के प्रताप से सहस्त्रों बालविधवायें जाति को कोश रही हैं और अनेक युवक विधुर होकर फिर रहे हैं। इस पर फिर वृद्ध विवाह ने भारी संकट उपस्थित कर रक्खा है। कामी कुत्तों की तरह वृद्ध विवाह कर युवकों का अधिकार अपहरण कर रहे हैं।

अवनत रहेगी जाति वह, जिसको कि ऐसा हाल है,
आजाय उसको मृत्यु कब—अवगत नहीं वह काल है।
मेरे युवक! अब आँख खोलो-ध्यान अब कुछ तुम करो,
इन कुक्कुरों को सघठन, नृपशक्ति से वश तुम करो ॥४३॥

जिस समाज की ऐसा स्थिति है, वह समाज सद अवनत ही रहेगा। उस क्षण का पता नहीं। कब उसका अत हो जाय। मेरे युवको ! नेत्र खोलो, और समाज की इस अवनत दशा पर कुछ ध्यान दो। इन कामी वृद्ध कुत्तों को सगठन के बल से या राज्याज्ञा के बल मे वश में करो

सबन्ध जो हैं असम वय में, अल्प वय में कर रहे,
वहु पाणि पीड़न की प्रथा पर जो मनुज हैं अड रहे।
वे मातृ हो या पितृ हो या हो प्रबल बलधर भले,
प्रतिकार तुम उनका करो—वे नाश करने पर तुले ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य अपना या अपनी सतान का विवाह अनमेल वय में, अल्प वय में करते हैं तथा वे मनुष्य जो बहुविवाह

के पवित्र होने पर भी आप रक्षित रह चुके हैं ? हाय ! श्रीमंत ! आप में ५० प्रतिशत दीन-हीन भिक्षुक बन चुके हैं। अब श्रीमंतों का व्यापार केवल सट्टा, फाटका और जूआ है। अन्य सब व्यापार-धन्धे इनकी दृष्टि में लाभ रहित हैं।

तुम कल्प तक में बधुओ ! सट्टा न करना छोड़ते,
फिर ओलियें तो वस्तु क्या ! बाकी न कुछ हा ! छोड़ते।
यदि दीपमाला-पर्व पर जो द्यूत क्रीडा हो नहीं—
हा ! अपशकुन हो जायँगे-श्री तुष्ट संभव हो नहीं ॥५२॥

पावन पर्वाधिराज पर्यूषणपर्व के कल्प दिवसों में भी ये श्रीमन्त सट्टे आदि बन्द नहीं करते हैं, तो फिर अन्य पर्व, ओलियों आदि का इनके निकट मान ही क्या है ? अगर दीपावली महोत्सव पर ये श्रीमंत जूआ न खेलें तो इनकी दृष्टि में यह अपशकुन है और संभव है लक्ष्मी संतुष्ट न हो।

रसचार में, रतिवास में है दिन तुम्हारा जा रहा,
लेटे हुये हो महल में, तन में नशा है छा रहा।
शतरंज, चौपड़, ताश के अभिनय रसद हैं लग रहे,
किलकारियों से महल के छज्जे अहो हैं बढ़ रहे। ॥५३॥

आपका सर्व दिन आनन्द भोग में और स्त्री निवास में व्यतीत होता है। प्रासाद में आप मदमस्त होकर लेटे रहते हैं। शतरंज, चौपड़ और ताश के आनन्ददायी कौतुक आपके समक्ष होते रहते हैं और मित्रों के कलनादों से प्रासादों के छज्जे ढहते से रहते हैं।

१६

श्रीमन्त ! आप अपनी पत्नि को छोड़कर बम्बई और सितारे में रहते हैं। पत्नि को संग में रखने की आपके निकट कोई आवश्यकता भी नहीं, क्योंकि आप श्रीमंतों को हर नगर, शहर में पत्नियें मिल जाती हैं और तब फिर पत्नि संग रखने का व्यय आप व्यर्थ क्यों सहन करें। उधर आपको थोड़े व्यय में पत्नियें मिल जाती हैं और इधर आपकी पत्नी भी सन्तानवृद्धि करती रहती है। आप बड़े भाग्यवान् हैं—धनवृद्धि के साथ में इस प्रकार वंशवृद्धि भी होती रहती है।

है कौनसा ऐसा व्यसन जिसका न तुमको रोग हो,
दुष्कर्म वह है कौन सा जिसमें न कुछ संयोग हो।
था बहुत कुछ कहना मुझे, कहना न पर है आ रहा,
है दुर्व्यसन, दुष्कर्म में जीवन तुम्हारा जा रहा ॥५७॥

ऐसा कौन सा व्यसन है जिसमें आपको अत्यधिक प्रेम न हो और ऐसा कौनसा दुष्कर्म है जिसकी क्रिया में आपका सहयोग न हो—मुझे आपको बहुत कुछ कहना था, परन्तु वह सब मुझको कहना नहीं आता (अतः संक्षेप में इतना ही समझिये कि) आपका समस्त जीवन दुष्कर्मों और दुर्व्यसनों में ही व्यतीत हो रहा है।

श्रीमन्त हो, नहिं आपको तो लुब्ध होना चाहिए,
है नीति का यह वाक्य, निंदक निकट होना चाहिए।
आस्वाद भोगानन्द में तब तक तुम्हारी भक्ति है,
उद्धार संभव है नहीं—क्षय हो रही सब शक्ति है ॥५८॥

आप भीम व (बड़े) हैं क्रोध न करना चाहिए। वैसे नीति भी यही कहती है कि निन्दक को सदा निकट रखना चाहिए। हे भीमजी! जब तक राजभोग एवं वैभवलीला में आपकी आसक्ति है, तब तक कल्याण की कोई संभावना नहीं। आपकी सारी शक्ति शनैः शनैः नष्ट हो रही है।

यह मानना अवमानना—इच्छा तुम्हारी आपकी
मामा व—आशातीत तो होगी बुरी गत आपकी।
यदि अब दशा ऐसी रही—जीने न फिर दिन पायेंगे
इतिहास से जग के हमारे नाम भी कट जायेंगे।।५५।।

हे श्रीमंत! आप मेरी संमति का मान करें अथवा अपमान यह आपकी इच्छा पर है; परन्तु इतना निवेदन और उचित है कि अगर आपने मेरे इस कथन को ठुकरा दिया तो आपकी भारी दुर्दशा होगी। यदि ऐसी ही दशा बनी रही तो अब आप अधिक जीवित न रहने पायेंगे और विश्व के इतिहास में हमारे नाम भी मिट जायेंगे।

जितने कलह हैं जाति में इस भाँति म पुष्पित हुए
पर तीर्थ मंदिर मोक्ष तक विस्तृत अरघ लंबित हुए
ये सांप्रदायिक रूप जिनके नित भयंकर हो रहे
वे कलह सब हैं आपके—बस आपके हैं हो रहे।।५६।।

समाज में जितने भी झगड़े फैले हुए हैं और व बढ़कर पर तीर्थमंदिर मोक्ष विषयों तक पहुँच गये हैं—व सब आपके कारण हैं। वे झगड़े इस प्रकार के भयंकर साम्प्रदायिक रूप

नित्य धारण कर रहे हैं। श्रीमत! ये सब काले कर्म आपके हैं और आपमें इनको बल मिल रहा है।

जिस ठौर पैसा चाहिए, तुमको न देना है वहाँ,
देना तुम्हे उस ठौर है, अति अधिक पैसा है जहाँ।
उपयोग करना द्रव्य का तुमको तनिक आता नहीं,
जब तक उपार्जन न्याय मे होगा न, आवेगा नहीं ॥६१॥

जहाँ पैसा व्यय करना आवश्यक है, आप वहाँ पैसा व्यय न करके वहा व्यय करते हैं जहाँ प्रस्तुत में अति अधिक पैसा जमा है आपको किंचित मात्र की द्रव्य का उपयोग करना नहीं आता और यह तब तक नहीं आवेगा जब तक आपकी धन कमाने की क्रिया न्याय पूर्ण न होगी अर्थात् नीति और सिद्धात यह कहते हैं कि सत्य की कमाई सत्य में ही व्यय होती है।

तन में कमी है रक्त की या मांस तन में है नहीं,
तुम रक्त कपि का चूसलो, इसमें तुम्हे कुछ है नहीं।
तुम जैन होकर यों अहिंसा धर्म का पालन करो;
धिक्कार तुमको लच्च है, क्यों धर्म को श्यामल करो ॥६२॥

अगर आपकी देह में रक्त की कमी हो जाती है या मास की कमी पड जाती है तो आप चिकित्सकों की समति से बदरों का रक्त चूसने में कोई हिचक नहीं खाते। आप जैन होकर इस प्रकार अहिंसात्मक जन धर्म का पालन करते हैं—आपको लच्चो धिक्कार हैं, क्यों धर्म को कलंकित करते हो।

ऐसे हमें श्रीमन्त पर क्या गर्व करना चाहिए?
शिल बाँधकर इनके गले जल में डुबोना चाहिए।

जिनके घरों में धर्म से संसृष्ट कुछ रहता नहीं।
ऐसे जनों से जाति का सम्बन्ध भी रहता नहीं॥६३॥

हे सज्जनो! क्या ऐसे श्रीमन्त हमारे निकट अभिमान की वस्तु हैं। ऐसे श्रीमन्तों को तो यही उचित है कि उनकी ग्रीवाओं में शिलायें बांधकर जलाशयों में डुबो दिया जावें। जिन पुरुषों के मानसों में धर्म से कुछ भी राग नहीं रहता ऐसे पुरुषों से संसार एवं जाति का भी कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

ये दीन जायें भाड़ में (बस हमें कुछ है नहीं
वे पंक्ति में हमकी कहीं भी व्यक्ति कोई हैं नहीं।
हम धान्य-सुखसम्पन्न हैं न—क्यों किसीका दुःख करें
क्या दीन ने हमको दिया था दीन का न दुःख हरें॥६४॥

वे दीन व्यक्ति भले दुनियाँ से उठ जाएं इसकी श्रीमन्तों को कोई चिन्ता नहीं। ये दीन श्रीमंतों की श्रेणी में कोई व्यक्ति नहीं हैं। श्रीमंत धन-धान्य से पूर्ण हैं और सुखी हैं वे किसी दीन की चिन्ता क्यों करें। दीन व्यक्ति ने उनको क्या दिया कि जिससे वे उसका दुःख दूर करने के लिये प्रयत्न करें।

इनके भरोसे बैठना अब तो भयंकर भूल है
क्या शेष रहे अब हमारी!—आप ये निर्मूल हैं!
बेड़ा हमारा पार क्या ये ही करेंगे—सच कहो
हा! हन्त! आशा अंत तक! अब है न संशय कुछ अहो॥६५॥

अगर सज्जनों! आप यह सोचते हैं कि ये ही श्रीमंत आपकी समाज का उद्धार करेंगे तो आप भारी भूल करते हैं। ये स्वयं

नष्ट हो रहे हैं, आपकी रक्षा फिर भला ये क्या करेंगे। वधुओ! सच कहिए क्या आप यह विश्वास रख कर बैठे हैं कि ये श्रीमंत ही जाति की नाव पार उतारेंगे? अगर आपका ऐसा विश्वास है तो हा! हत! अंत समय आगया! अब कोई शंका न रही।

इनके वहाँ पर मान है श्रीमंत बिन होता नहीं,
धनहीन भाई को वहां दुत्कार है, न्योता नहीं।
हम किस तरह से हाय! इनसे तुम कहो आशा करें,
दुत्कार, ठोकर द्वार पर इनके सदा खाया करें? ॥६६॥

ये श्रीमंत श्रीमंतों का ही संमान करते हैं। निर्धन को इनके वहाँ पर कोई मान नहीं मिलता, उसका निरादर होता है। वधुओ! आप ही वतलाइये, ऐसी स्थिति में हम निर्धन इन श्रीमंतों से क्या आशायें रक्खें? क्या आप यह कहते हैं कि फिर भी इनसे आशायें रख कर हम इनके द्वारों पर दुत्कार और ठोकरें नित्य खाते ही रहें।

श्रीमन्त की सन्तान

यह कौन हैं? नहि जानते? श्रीमन्त की सन्तान हैं,
नङ्गे, निरक्षर, मूर्ख हैं, पाषाण, पशु, हनुमान हैं।
अक्षर न सीखा बाप ने, अक्षर न सीखा आपने,
मर्याद है कुल की निरक्षरता, न छोड़ा आपने॥ ॥६७॥

मित्र गण! आप! कौन हैं? क्या आप नहीं जानते हैं। आप श्रीमन्त कुमार हैं। आप नङ्गे हैं, निरक्षर हैं, मूर्ख हैं,

पापाश हैं, पशु हैं और हतमान हैं। आप के पिता भी ने भी एक अक्षर नहीं पढ़ा और आपने भी एक अक्षर नहीं सीखा है। आपके कुल की मर्यादा निरक्षरता है उसको आपने नहीं तोड़ा है।

आलस्य विषयानन्द के व कुव्यसन के धाम हैं,
बढ़कर पिता से हों न सुत इसमें न होता नाम है।
हैं अर्थ जिनका में पड़े हैं नाम सुमरें क्व रहे
आर्या पती विमुखा इधर रस हैं इधर व व रहे ॥ ॥६८॥

आप ! आलस्यता के विषय भोग के और कुव्यसनों के घर हैं। इन विषयों में जब तक पुत्र पिता से बढ़कर न निकले तब तक गौरव ही क्या ? आप अब निश्चित हैं वेश्याओं के साथ और मुजरा कर रहे हैं। स्वपत्नि तो इधर (घर में) दुखित होकर मूर्छित पड़ी है परन्तु आप इधर वेश्या को रस पहुँचा रहे हैं।

ये बोलने पर पति के क्वचित् बिना नहि बोलत
मृतभाव जब तक हो न यह तब तक न उसको छोड़त।
हा ! हंत ! आपकी पति है, हा ! बहुत के ये यार हैं
स भी विचारे क्या करें। रतिभाव से लाचार हैं ॥६९॥

ये अपनी पत्नि से क्वचित् बिना बात नहीं करते और जब तक वह मर्तमृत न हो जाए, तब तक उसको मुक्त बाहर करते। हा ! हंत ! आपकी भाभी आपकी पत्नि है भगिनी के आप प्रेमी हैं। जब कामदेव आपको विवश करता है तो फिर आप भी क्या करें इसमें आपका दोष ही क्या है ?

इनको न व्यय की है कमी, इनपर पिता का प्यार है ;
भट, भाण्ड भड़वे, धूर्त इनके मित्र सगी-यार हैं।
शतरंज जूआ, ताश के कौतुक अहर्निश लेख लो,
कलकंठियों में गूँजते प्रासाद इनके पेख लो !॥७०॥

आप पर आपके पिता श्री का अपार स्नेह है, अत-आप को व्यय करने के लिये धन की कोई कमी नहीं। भट, भाण्ड, भड़वे और धूर्त आपके मित्र, सहचर और सखा हैं। आपके प्रासादों में रातदिन शतरंज, जूआ और ताशों के कौतुक होते रहते हैं और सुन्दरांगनाओं के कोमल स्वरों से प्रासाद गूंजित रहते हैं।

मेले, महोत्सव, पर्व पर इनके नजारे देखिये,
चल, चाल, नखरे, नाज इनके उस समय अवलोकिये।
हा ! आर्य जगती ! यह दशा हो जायगी, जाना न था
होंगे पतित इतने तुम्हारे पुत्र यह जाना न था !! ॥७१॥

इन श्रीमन्त कुमारों का वैभव देखना हो तो मेले, महोत्सव और पर्वों के अवसरों पर इनके रंग-ढंग देखिये। उन अवसरों पर इनके नाज-नखरे चल चाल अवलोकनीय हैं। हा! आर्य जगती ! यह स्वप्न में भी नहीं समझा था कि तेरी यह दयनीय अवस्था हो जायगी, तेरी संतान इतनी पतित हो जायगी।

पढना-पढाना सीखना तो निर्धनों का काम है,
सच पूछिये तो पठन-पाठन ब्राह्मणों का काम है।
होकर बडे इनको कहीं भी नौकरी करनी नहीं,
तब श्रम वृथा फिर पुस्तकों में है इन्हें करनी नहीं !! ॥७२॥
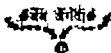
ये श्रीमंतकुमार ऐसा समझते हैं कि पढ़ना-पढ़ाना तो निर्धनों का कर्म है और अगर अधिक सोच पूछते हैं तो इनके निकट यह मास्टरों का कर्म है। ये अति अधिक मानते हैं इनको नौकरी करके जीवन-निर्वाह करने की आवश्यकता नहीं है; फिर व्यर्थ ही ये पढ़ने-पढ़ाने का परिश्रम क्यों करें।

यौवन जहाँ इनको हुआ बस मूत्र मानो चढ़ गया
प्रत्येक इनके अङ्ग में बस काम आमर्द बन गया।
हर बात में हर काम में बस काम इनको दीखता
हा! पत्नि भावज बहन में अंतर न इनको दीखता ॥१०७॥

इन श्रीमन्त कुमारों को युवावस्था के प्राप्त होते ही मद का भूत चढ़ जाता है। इनके अङ्ग-अङ्ग में कामदेव व्याप्त हो जाता है। प्रत्येक विषय में प्रत्येक कर्म में इनको कामदेव के ही दर्शन होते हैं। हा! इनकी कामेच्छायें इतनी तीव्र हो जाती हैं कि इनको अपनी भार्या भाभी और भगिनी में भी कुछ अंतर प्रतीत नहीं होता।

ये हैं यथाविधि गीत के नर्तनकला ज्ञाता बने,
रखते इन्हें रतिभोग अच्छा है नहीं भाती इन्हें।
लेकर प्रिया को संग में नाटक-सिनेमा देखते
तात्पर्य मेरा है यही—बस काम मद में मग्न ते ॥१०८॥

ये श्रीमन्त कुमार संगीत विद्या के पंडित हैं नृत्यकला विशारद हैं और स्त्री का वर्णन करने में इनको कुछ भी हिचक नहीं। प्रियतमा को संग लेकर नाटक सिनेमा देखते फिरते हैं।

इतना लिखने का अर्थ यही है कि इनकी दृष्टि में यह समस्त संसार कामदेवमय है।

क्षण मात्र में तुम देख लो इनकी जवानी सो गई,
वे दिन वसंती अब नहीं, पतझड़ इन्हें है हो गई।
वे नाज-मुजरे मर गये, मद-चंग मरे सब साथ में,
धन-मान-पत सब उड़ गये, भिक्षा रही है हाथ में ॥७५॥

बन्धुओ! अवलोकिये! इन श्रीमंतकुमारों की वह तूफानी युवावस्था क्षण मात्र में निकल गई, वे वसंतीदिवस चले गये, अब तो इनको पतझड़ ऋतु है वे प्रेमी और प्रेमीकाओं के नाज और मुजरे भी अब नहीं रहे और न कोई संगी ही रहा। धन, प्रतिष्ठा और विश्वास सब विनष्ट हो गये। एक मात्र भिक्षा हाथ में रह गई।

इनके परन्तु महापतन का मूल कर करता कहाँ?
चटशाल जाने से इन्हें थी रोकती माता जहाँ।
ऐसे पिता-माता महारिपु हैं, इन्हें धिक्कार है,
क्या नाथ! यह सब आपको अब हो रहा स्वीकार है?॥७६॥

परन्तु यह देखना चाहिये कि इन श्रीमंतकुमारों का यह महापतन कहाँ से प्रारंभ होता है। मेरे विचार में जहाँ इनकी माताये इनको विद्यालय में पढने जाने से निरुत्साही करती थी और रोकती थीं, वहाँ से ही इनका पतन आरंभ होता है। ऐसे मातापिता शत्रु हैं, उनको धिक्कार है। हे परमात्मन्! क्या ये सब दयनीय बातें आपको भली तो लग रही हैं?

नैया हमारी य निकालेंगे भँवर से क्या ? कहो !
क्या बुद्धि पर शिल पड़ गये ? हा! थक रहे, दो क्या? अहो!
इस भाँति की संतान से उत्थान क्या हो जायगा ?
हो जायगा—इनका भला यदि जन्म ही हो जायगा ॥७७॥

हे प्रभुओ ! क्या ये ही भीमसेन्यकुमार समाज की डूबती नाव को तेराय गे ? क्या स्वप्न की बात कर रहे हैं अपकी मति पर पत्थर तो नहीं पड़ गये ? ऐसी सन्तान से क्या उन्नति कभी सम्भव है ? यह सन्तान समाज की उन्नति तब कर सकेगी जब इसका फिर से नया जन्म होगा ।

निर्धन

हे भारत ! तेरी हाय ! यह कैसी बुरी गत हो गई !
हा ! चन्द्रिका से क्यों बरस काली अमा तू हो गई !
हे बन्धुओ ! यह क्या हुआ ! क्या तुम न चेतोगे अभी !
हे नाथ ! दिन वे चन्द्रिकायुत क्या न लौटेंगे कभी !॥७८॥

हे भारत ! तेरी यह अवस्था किस प्रकार हो गई । तेरा यह ज्योत्स्ना-भरा रूप अमावस्या-सा काला कैसे हो गया ? हे भ्राताओ ! यह क्या हो गया ? क्या आप को अब भी चेतना न आयगी ! हे भगवान् ! हमारे वे ज्योत्स्ना-भरे दिन फिर लौट कर क्या नहीं आवेंगे ?

पच्चास प्रतिशत पूर्ण निर्धन हैं तुम्हें मैं क्या कहूँ
पर दैन्य अम्लान दुखरा का कुछ न वर्णन कर सकूँ ।

कहने लगा अब हाय ! क्या आवाज तुम तक आयगी।
प्रासादमाला चीर कर क्या त्राण-लहरी लायगी ॥ ॥७६॥

हे बधुओ ! यह पूर्व ही बतला चुका हूँ कि आप में पच्चास प्रतिशत मनुष्य निर्धन हैं। परन्तु उन निर्धनों की दयनीय दशा का, उनके करुणक्रंदन का कुछ भी वर्णन नहीं कर सका। वह वर्णन अब करने बैठा हूँ। क्या मेरी आवाज आप तक पहुँच सकेगी। क्या महालयों की श्रेणी को चीर कर मेरी अशक्त ध्वनि आपके कर्णों तक पहुंच पायगी ?

ये भी कहाते सेठ हैं, पर पेट भरता है नहीं।
स्वीकार इनको मृत्यु है, दैन्यत्व स्वीकृत है नहीं।
निर्लज्ज होकर तुम मरो, ये लाज से मरकर मरें,
तुम अधिक खाकर के मरो, हा! ये क्षुधित रहकर मरें॥ ॥८०॥

वैसे तो ये निर्धन बन्धु भी सेठ कहलाते हैं, परन्तु इनका उदर भरना भी अति हो रहा है। ये मरना स्वीकृत करेंगे, लेकिन इनको दीनता प्रकट करना स्वीकृत नहीं। आप निर्लज्ज होकर अपना जीवन समाप्त कर रहे हैं, और ये आपके बन्धु-गण लाज के मारे मर रहे हैं। आप अधिक खाकर मर रहे हैं और ये भूखे मर कर मर रहे हैं।

जिस जाति में श्रीमंत हो—कैसे वहाँ धनहीन हों,
दयवंत हो धनवंत यदि—कैसे वहाँ पर दीन हों।
मनहत पर इस जाति श्रीमंत जन हैं दीखते,
फिर क्यों न निर्धन बंधु उनके ठोकरों में लीखते ॥ ॥८१॥
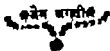
जिस जाति में धनाढ्य पुरुष हों, उस जाति में धनहीन पुरुषों का होना आश्चर्य की बात है यदि धनाढ्य सहृदय पुरुष हों तो कोई भी व्यक्ति वहाँ दीन मिल ही नहीं सकता। परन्तु इस जाति के श्रीमन्त सहृदय नहीं हैं, फिर क्यों न उनके निर्धन भाई ठोकरों में दुखित होते हुये दिखते हैं।

कहते हमें भी सेठ हैं जो शायद अभिराम है
बक्काल बनिया वणिक भी उनके भले अपमान हैं।
क्या अर्थ है श्रीमन्त को इस ओर क्यों देखें भला
ऐसा अगर न कुछ [illegible] हो जाय भला ॥८४॥

इन निर्धन बन्धुओं को भी सेठ कहा जाता है और इनको शाह की उपाधि भी है। बक्काल, बनिया और वणिक जैसे तुच्छ अपमान वाले शब्दों से भी इनको ही संबोधित किया जाता है। श्रीमन्त को क्या प्रयोजन है कि वे इस प्रकार से होते हुए अपने हुए इनके तिरस्कार एवं अपमान के प्रति ध्यान दें। अगर श्रीमन्त जन इस ओर तनिक भी दृष्टि कर दें तो इनकी यह दयनीय स्थिति क्षणमात्र में विलीन हो जाय।

श्रीमन्त के आश्रय पै दीन ही एक धाम हैं;
उनके मनोरथ काम के सब भाँति ये प्रद काम हैं।
इस हेतु ही समझ हमें न दीन रखना चाहते
वे नींव इनकी—महल की मंजिल उठाना चाहते ॥८५॥

श्रीमन्त वर्गों का वैभव इन दीनों पर ही तो आश्रित है। इनकी कामनाओं को कल्पवृक्ष के समान सदा पूर्ण करने वाले

ये दीन ही हैं। सभव है, इसी कारण से अगर श्रीमन्त इन निर्धनों को कंकाल रखना चाहते हो तो कोई आश्चर्य नहीं। श्रीमन्त अपने वैभव-भवन की नीम में दीनों को पाट कर दूसरी मंजिल उठाते हैं।

निर्धन किसी भी एक दिन श्रीमन्त यदि बन जायँगे;
दश पाँच कन्या का हरण श्रीमन्त फिर कर पायँगे?
बालक कुँवारे निर्धनों के आयु भर फिरते रहे।
उस ठौर नव-नव पाणि-पीड़न शाह जी करते रहें। ॥८४॥

यदि किसी एक दिन परमात्मा की अनुकपा से ये दीन, निर्धन बन्धु श्रीमन्त हो जावें तो क्या ये श्रीमन्त इस प्रकार पाँच-पाँच, दश दश कन्याओं का अपहरण कर सकते हैं? निर्धन युवक, हम देखते हैं आयु भर अविवाहित फिरते हैं और इन श्रीमन्तों के नव नव विवाह हो जाते हैं।

फिर क्यों न कर ये क्रय सुता का प्रीत कर सुत के करें?
निर्वंश होते मनुज कहिये क्या न फिर अनुचित करें?
इस पाप के विस्तार के श्रीमंत ही अवतार है,
श्रीमन्त सयम कर सकें—नाव फिर तो पार है। ॥८५॥

इस स्थिति में, बन्धुओ! आप ही बतलाइये, निर्धन मनुष्य फिर क्यों न कन्या विक्रय करेंगे। जब उनका वंश ही निर्मूल होता दिखाई देता हो तो फिर कौनसा अनुचित कर्म वे करने में हिचकावेंगे। इस बढे हुये पापाचार के प्रवर्तक ये श्रीमन्त पुन

है। अगर भाव व संयम धारण कर सकते हो तो समाज की डूबती नाव किनारे लग सकती है।

क्या अन्य धनाभाव में व्यापार यह अनिवार्य है?
अतिरिक्त इसके निर्धनों को क्या न दूजा काम है?
क्यों बेचकर तुम भी सुता को पुत्र की शादी करो
हा! क्यों न तुम निर्धन मनुज मिलकर सभी व्यापी हरो॥२०॥

निर्धन मनुष्य के निकट धन के अभाव के कारण कोई भी व्यापार व्यवसाय संभव है न रह जाता हो परन्तु क्या यह उचित है कि अगर निर्धन धनाभाव के कारण कोई धंधा न कर सके तो यह कन्याविक्रय का धंधा उसके लिये करना आवश्यक हो जाता है। निर्धन बंधुओ! आप कन्या को बेचकर पुत्र का विवाह क्यों करते हैं? आप सब निर्धन मिलकर एक संघ और विधान क्यों नहीं बना लेते? ऐसा करके आप इस संकट को क्यों नहीं दूर करते हैं?

होते हुये शुभ बुद्धि के यदि हो सुता फिर बेचते
धिक् !धिक् ! तुम्हें शतबार है! आमिष सुता का बेचते
हे! पुरुष का पुरुषार्थ ही कर्तव्य जीवन धर्म है
धीर कर विपदावरण को पार होना कर्म है।।२१।।

अन्य उपाय होते भी अगर आप कन्या-विक्रय करते हैं तो आपको सहस्रों बार धिक्कार है! पुरुष का पुरुषार्थ ही जीवन है धर्म है और कर्तव्य है। विपत्तियों के हटाने में ही मनुष्य का मनुष्यपन है।

श्रीमत का ही दोप है—ऐसा न माई! जानिये,
अस्सी टका अपने पतन में दोप अपना मानिये।
तुम चोर हो, मक्कार हो, झूठे तुम्हारे काम हैं,
वक्काल, वणिया, मारवाड़ी ठीक ही तो नाम हैं॥८८॥

आपकी इस दयनीय स्थिति की स्थिरता के मूल एव सर्व कारण ये श्रीमंतजन ही हैं, ऐसी नहीं कहिये। आप स्वय अपनी इस दारुण दशा के अस्सी प्रतिशत उत्तरदायी हैं। आप चोर हैं, धूर्त हैं और झूठे व्यवसायी हैं। इस दृष्टि से आपके वक्काल, वणिया और मारवाड़ी नाम उपयुक्त ही हैं।

श्रीमत जैसी आय तुमको जब नहीं है हो रही,
श्रीमत की फिर होड़ करने की तुम्हें लग क्यों रही।
प्रतियोगिता के फाँस में वुलवुल तुम्हारी फँस गई,
सब पख उसके कट गये, सारी बदन में छिल गई॥८९॥

हे निर्धन वन्धुओ! जब श्रीमतों के समान आपकी आय नहीं है फिर आप उनकी व्यय में समानता क्यों करने की चेष्टा करते हैं? श्रीमतों के साथ आप इस प्रकार की प्रतियोगिता में ऐसे बुरे फँस गये हैं कि अब मुक्ति भी कठिन प्रतीत होती है और आप इतने अशक्त हो चुके हैं कि अब आपमें समलने की भी शक्ति नहीं रही है।

था एक दिन ऐसा कभी—हममें न कोई दीन था
पुरुपार्थ-प्राण थे सभी-सकता नहीं मिल हीन था।
पर आज हमको पूर्व भव तो भूल जाना चाहिए,
संपन्न होने की हमें कुछ युक्ति गढना चाहिए॥९०॥

यह भी एक समय था जब हम सबके सब संपन्न और पुरुषार्थी थे हम में कोई भी व्यक्ति दीन-हीन नहीं था। इन बातों का अब हम दुःख करना भूल जायें और कुछ ऐसा उपाय करें कि फिर सभी संपन्न और सुखी हो जावें।

साधु-मुनि

अवनितल भर के साधुओं को देखते हम आज हैं
आदर्श अब तो साधु मुनि फिर भी हमारे आज हैं।
तप त्याग संयम शील में अब भी न इनके सम कहीं
कुछ एक ऐसे भी श्रमण हैं अपर जिनके सम नहीं ॥८१॥

जब हम संसार भर के सब मतों के साधु और मुनियों से हम हमारे साधु मुनियों की तुलना करते हैं तब तो हमारे साधु-मुनि इस गिरती हुई दशा में भी आदर्श हैं। तप त्याग संयम और शील में हमारे साधु समाज के समान अब भी अन्य किसी मत का साधु समाज नहीं निकलेगा और हमारे कुछ एक साधु-मुनि तो इतने आदर्श हैं कि अन्य साधुसमाज का कोई भी साधु जिनकी समता में नहीं आ सकता।

पर वेषधारी साधुओं की भूरि संख्या हो गई।
यह साधु की आदर्श बस थी ज्योति तम में खो गई।
यह साधु तो मेरे कथन से रुष्ट होंगे के नहीं
जो नाम धारी साधु से कुछ भीति मुझ को है। नहीं ॥८२॥

परन्तु फिर केवल वेषधारी साधुओं की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई कि आदर्श साधु अगर कोई है भी तो दिखलाई

ही नहीं पड़ता जैसे घने अंधिकार में कोयला और रत्न कठिन तया पहिचान ने में आते हैं। आदर्श साधु तो मेरे वर्णन से कभी भी क्रोधित नहीं हो सकते और मात्र वेषधारी ठग-साधुओं से मुझको कोई भय नहीं।

वदन तुम्हें शतवार है, तुम धर्म के पतवार हो।
पर वेषधारी साधुओं! तुम आज हम पर भार हो।
तुमने उठाया था हमें, तुमने चढाया है अहो।
क्यों आज शिल पर शृंग से तुमने गिराया है, कहो ?॥६३॥

हे साधु-मुनि! आपको सैकड़ों प्रणाम हो। आप हमारे धर्मनाव के पतवार हैं। परन्तु, हे वेषप्रियसाधुओ! आज आप हमारे पर भार स्वरूप हैं। एक समय था जब कि आपने इस समाज को उठाया था और उन्नति के इतने ऊँचे शृंग पर चढाया था। आज आपने उसी समाज को उन्नति के उस ऊँचे शृंग से तलहटी पर पड़ी शिला पर क्यों ढकेल दिया ?

क्यों श्रावकों के दास गुरुवर! आप यों हैं हो गये ?
क्यों त्याग-संयम शीलवित् होकर अनाड़ी हो गये ?
हमको लड़ाना ही परस्पर आपका अब काम है।
मिलने न पावें हम कभी, यह आपका मुख काम है !! ॥६४॥

हे गुरुदेव! आप श्रावकों के अनुचर कैसे हो गये ? आप तप, त्याग, संयम के धनी होकर इनके पतित कैसे हो गये ? गुरुदेव! हम श्रावकबन्धुओं को परस्पर लड़ाना ही अब आपका काम रहा है और हम परस्पर स्नेहपूर्वक कभी नहीं मिलने पावें—यह अब आपका मुख्य कर्म रहा है।

अब साधु तुम हो नाम के, वे साधु अब तुम हो नहीं !
हा ! साधु गुण तुम साधु में अब देखने तक को नहीं।
तुम क्रोध के अवतार हो, तुम मान के अवतार हो !
संसार मायामय तुम्हारा, लोभ के आगार हो ।।८४।।

अब आप वे साधु (पूर्व साधुओं के प्रति संकेत है) नहीं हैं। नाम-मात्र के साधु हैं। साधु का एक भी गुण दिखलाई देने मात्र को भी आप में नहीं है। आप क्रोधी मानी, लोभी और मायाविप परले सिरे के हैं।

भगवान्-पद के प्राप्ति की इच्छा करो में जग गई
सम्राट पद पाकर तथा इच्छा ठिकाने लग गई।
भगवान हो सम्राट हो तुम जगद्गुरू आचार्य हो !
भगवान पर कर लग रहे भगवान् कैसे आर्य ! हो ।।८५।।

अब आपमें अपने नामों के साथ 'भगवान' शब्द जोड़ने की तीव्र इच्छायें जगी हुई हैं। सम्राट (आचार्यसम्राट, 'शब्द' जोड़ने से आपके सब मनोरथ क्या पूर्ण हो गये ? थोड़े समय के लिये हम यह भी मान लेते हैं कि आप भगवान हैं सम्राट हैं, जगद्गुरू हैं और आचार्य हैं परन्तु यह बतलाइये इधर आप भगवान, सम्राट बनकर विराजमान हैं और उधर भगवान की मूर्तियों के दर्शनों पर कर लगे हुए हैं। हे आर्य ! आप कैसे भगवान हैं ?

मुनिवेष धारने से कभी मन साधु होता है नहीं
जैसा हृदय में भाव है—बाहर झलकता है नहीं।

तपप्राण, त्यागी साधु तुम में बहुत थोड़े रह गये ;
भरपेट खाकर लोटने वाले सभी तुम रह गये ॥ ९७ ॥

केवल साधु का वेष धारण करने से मन साधु नहीं बन जाता। हृदय में जैसे भाव होंगे, बाहर वैसे ही प्रकट रूप में आवेंगे। अब आप में गुरुदेव! त्यागी और तपस्वी साधु बहुत कम रह गये हैं। अब अधिक संख्या अधिक भोजन करके सोने वालों की है।

गिरते न गुरुवर! आप यों—अज्ञान हम होते नहीं।
धन, धर्म, पत, विश्वास खोकर आज हम रोते नहीं।
अभिप्राय मेरा यह नहीं, सब आपका ही दोष है,
कुछ काल का, कुछ आपका औ कुछ हमारा दोष है ॥९८॥

गुरुदेव! अगर आप इतने पतित नहीं होते तो हम भी जो आपके अनुवर्ती हैं, इतने अज्ञान आज नहीं होते, धन, धर्म, मान और विश्वास खोकर हम आज हाथ मलते नहीं रह जाते। परन्तु इस सब का यह अर्थ नहीं कि हमारे इस पतन में सब दोष आपका ही है, नहीं, कुछ काल का दोष है, कुछ आपका दोष है और कुछ हमारा दोष है।

साध्वी

हे साध्वियो! वन्दन तुम्हें यह भक्त दौलत कर रहा,
पर देख कर जीवन तुम्हारा हाय! मन में कुढ रहा।
आत्माभिसाधन के लिये संयम लिया था आपने,
संयम, नियम को भूल कर, कर क्या दिया यह आपने ॥९९॥

हे साध्वी महाराज ! आपको मेरा नमस्कार हो। परन्तु आपका यह पतित जीवन देखकर मेरा हृदय अति दुःखी हो रहा है। आपने आत्मकल्याण करने के लिये यह साधुपन ग्रहण किया है लेकिन संयम नियमों को विस्मृत कर आपने यह क्या कर डाला ?

तुममें न गृहस्थी में मुझे अन्तर तनिक भी दीखता
वह मोह माया जाल तुमको आप में भी दीखता।
तुम छोड़कर मात सभी भ्रात सभी प्रिय पालती
सम्प्रदाय आर्यें ! मूढ़कर ममत्व कर प्रिय पालती ॥१ ॥

हे साध्वी महाराज ! मुझको आप में और एक गृहस्थ की में कुछ भी अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता। आप भी मोह माया और अनेक बन्धनों में फँसी हुई दिखलाई पड़ती हैं। आपने यद्यपि संसार में अपना सब प्रकार संबंध तोड़ दिया है परन्तु फिर आप इसमें अपना सब प्रकार का सम्बन्ध निभा रही हैं। हे आर्य ! आप सम्यक्त्व को ठुकरा कर मोहादि विषयों को हर प्रकार से पाल रही हैं।

तुम पति विहीना नारियों की रक्षक बनी हैं बन गई
अथवा य विधवा नारियों की अग्रग परिषद् बन गई।
परिषद् बनूं तो देश के स्वार्थ आती काम है
पन्थान्ध यह क्या बन गयी? इनको अमर विश्राम है ॥१ १॥

हे साध्वी महाराज ! यह साध्वीसमाज आप स्त्रियों की जिनको पतियों ने घर से तिरस्कृत कर बहिष्कृत कर दिया है

एक सुन्दर सेना बन गई है या विधवा स्त्रियों ने अपना अलग समाज स्थापित किया है। समाज और सेना तो देश के हित काम आती है। क्षमा करिये! यह मैंने क्या कह डाला। आपने तो वस्तुतः संसार मे विश्राम ग्रहण किया है।

तुममें न कोई पंडिता, विदुषी मुझे हैं दीखती।
जैसी चली गृहवास से, वैसी अभी हो दीखती।
आर्या कहाती आप हो, आर्यत्व तुम में है कहाँ।
तुममें अनाथा, भिक्षुकी में कुछ नहीं अन्तर यहाँ॥ ॥१०२॥

आप में मुझको एक भी साध्वी ऐसी नहीं दिखाई देती जो पंडिता और ज्ञाता हो। आप ठीक वैसी ही अब हैं जैसी आप पति का घर छोड़ते समय थीं। आप कहाती तो आर्या हैं, परन्तु वह आर्य भाव आप में कहाँ है? मुझको तो आप में और एक अनाथा भिक्षुकी में कोई भी अन्तर नहीं दिखाई देता।

धन, मान परिजन, गेह, पति त्यक्त तुम होकर चुकी,
उर में भजन पर है वहाँ-स्वाहित स्वकर से कर चुकी।
अवकाश पर भी धर्म की चर्चा तुम्हें भाती नहीं,
घरवास के अतिरिक्त बातें हा! तुम्हें आतीं नहीं!! ॥१०३॥

आप परिवार, संपति, मान, घर और पति से अपना सांसारिक संबंध का विच्छेद कर चुकी हैं परन्तु फिर भी आपके हृदय में उन्हीं का भजन रहता है। दुःख की बात है आप घर छोड़ कर फिर भी इस प्रकार घर के प्रति ही अनुरक्ता हैं;आपने अपना सर्वनाश कर डाला, न आत्म कल्याण ही कर

सकीं और न घर की ही रहीं। अवकाश के समय भी आपको धर्म चर्चा करना अच्छा नहीं लगता। पति-पत्नि से संबंध रखने वाली बातों के अतिरिक्त आपको कुछ और नहीं भाता।

छड़ने लगो जब तुम परस्पर वह छटा तो पेक्ष्य है।
जो हृदय हैं वचन तुम्हारे पात्र शर सम क्षेप्य हैं।
कर-पाद भी उस काल में करते गदा का काम हैं।
मुख-यंत्र की तो क्या कहूँ ?—वह तो कला का धाम है!! ॥१०४॥

आप जिस समय साध्वी-साध्वी परस्पर लड़ने लगती हैं, वह शोभा तो एक अति दर्शनीय है। इनके धनुष हैं पात्र तीर हैं। लड़ते समय आप वचनों को धनुष के समान आड़ा तान कर पात्रों को तीर के समान उस पर होते हुये अपने प्रतिपक्षी पर फेंकती हैं। वचनों और पात्रों के टूट जाने पर फिर आप अपने हाथ और पैरों से भीम की गदा का काम लेती हैं। मुख यंत्र की तो महिमा ही अवर्णनीय है। वह तो कला का अद्भुत धाम है जो देखते ही बनता है।

संयमव्रता इन साध्वियों का यह पतन ! हा ! हंत ! हा !
वह कर चुकीं थीं मोक्ष की जो तपन में भी हैं न हा !!
श्री संघ को इस भाँति से विभु ! मग्न करना था नहीं।
सम्मत्व का वैमरम में से भाव हरना था नहीं !! ॥१०५॥

इन संयम की मुर्ई साध्वियों का यह अधःपतन है भगवान्! असहनीय है। हा! हमारा सर्वनाश हो गया। ये साध्वियें पति का घर छोड़ते समय यह प्रतिज्ञा करके चली थीं कि हम

मोक्षसाधन करेंगी, लेकिन देखते हैं यह तो साँतवे नरक के भी योग्य तो नहीं हैं। इतना इनका पतन हो गया है कि इनको तपन जैसे घोर नरक में स्थान नहीं मिलेगा। हे परमात्मन्! श्रीसंघ का इस प्रकार तो पतन करना उचित नहीं था। जैनत्व में से नग्नत्व अर्थात् निर्लेप निर्मोह भाव को नहीं निकालना था। जैनत्व में से अगर सत्यतत्व निकल जाय तो वह जौ का भूषा रह जायगा।

श्रीपूज्य-यति

श्रीपूज्य, यति जिनका अधिक सम्राट से भी मान था,
किस भाँति अकबर ने किया यतिहीर का समान था।
पर आज ऐसे गिर गये ये—पूछना कुछ है नहीं,
अब दोष—आकर हैं सभी—वह त्याग-तपबल है नहीं॥१०६॥

एक समय था जब ये श्री पूज्य और यतिगण सम्राट से भी अधिक माने जाते थे। प्रसिद्ध बादशाह अकबर ने जो विजय हीर सूरीश्वर जी महाराज का समान किया, उनके आदेशों और उपदेशों का पालन किया इतिहास इसका साक्षी है। परन्तु आप ये इतने पतित हो गये हैं, कि कुछ कहने की बात नहीं! अब ये सर्व अवगुणी और दोषी हैं। वैसा त्याग और तप अब इनमें नहीं है।

अनपढ तथा ये मूर्ख हैं, औ घोर विषयासक्त हैं।
भंगी, भगेड़ी, कामरत नर आज इनके भक्त हैं।

दुर्मंत्र-मंत्र कुतंत्र में श्रीपूज्यपद अब रह गया।
नारीजगत इस जाल में फँस कर वहीं ही रह गया॥१७॥

ये श्रीपूज्य और यतिगण सब के सब इस समय अपढ़ हैं मिथ्याद्रष्टि हैं और घोर विषयी और व्यसनी हैं। इनके भक्त भी अब भंगी भंगेड़ी (भंग पीने वाले) और कामी मनुष्य होते हैं। ये श्रीपूज्य और यति अब यंत्र-मंत्र और तंत्र का ही एक मात्र कार्य करते हैं और इस प्रकार स्त्रीसमाज को आकृष्ट कर अपनी कामलिप्साये शांत करते हैं। स्त्री जगत इनके इस मोहकी जाल में ऐसा फस गया है कि हिल भी नहीं सकता है।

कुलगुरु

ये आज कुलगुरु सब हमारे लोभ भिक्षुक हो गये।
हो क्यों न भिक्षुक दीन विद्याहत अब ये हो गये।
ये पड़ गये सब लोभमें, व्यसनी रसिक से हो गये।
आदर्श कुलगुरु अब यहां हैं भृत्य हमसे हो गये॥१८॥

आज हमारा कुलगुरु समाज भी दीन और भिक्षुक है। यह समाज दीन और भिक्षुक क्यों न होवे जब इसके पूज्य व्यक्ति विद्याहीन हों। यह समाज भी व्यसनों में लोभ में रसानंद में फस गया है। आदर्श समझे जाने वाले हमारे कुलगुरु आज देखिये नौकरों जैसी चेष्टायें करते हैं।

———

तीर्थस्थान

ये तीर्थ मंगल-धाम हैं, ये मोक्ष की सोपान हैं,
उन पूर्वजों की तप तपस्या, मुक्ति के ये स्थान हैं।
अपवर्ग साधन के जहाँ होते रहे नित काम हैं,
अब लेख लो, होते वहाँ रस चार के सब काम हैं ॥॥१०६॥

ये तीर्थस्थान मंगलगृह एव मोक्ष मार्ग हैं, पूर्वजों की तपोभूमि हैं, मुक्तिस्थल हैं अर्थात् उन पर अनेकों केवल ज्ञानियों ने मुक्ति प्राप्त की है। इन तीर्थस्थानों में आदि में मोक्ष प्राप्ति के ही पुण्यकर्म होते रहे हैं, आज इन्हीं तीर्थों में इस लोक के आनंददायी कार्य होते हैं।

रस-भोग भोजन के यहाँ अब ठाट रहते हैं सदा।
गुण्डे दुराचारी जनों के यूथ फिरते हैं सदा।
मेलादि जैसे पर्व पर होती वसंती मौज है!
सर्वत्र मधुवन वीथियों में प्रेयसी-प्रिय खोज है॥ ॥११०॥

अब इन तीर्थस्थानों में विशाल भोजनों का, वैभवपूर्ण भोग और व्यवहारों का ही आयोजन सदा रहता है, गुण्डों के तथा कुकर्मियों के झुण्ड चक्कर लगाते रहते हैं, मेले, महोत्सवों पर तो एक विशेष रसदायी छटा छूट जाती है। ऐसे पर्वों पर (यह देखा जाता है कि) प्रिय और प्रेयसी के समिलन तीर्थों के सर्वस्थल में सुलभ और सुविधतया होते हैं।

प्रतिवर्ष लक्षों का वृथा धन खर्च इनमें हो रहा।
हा! देवधन काम यों लक्षों जनों का हो रहा।
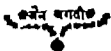
अति व्यय अरु वैषम्य के अब तीर्थ मेले मूल हैं।
पर न उनकी भूल है, इसमें हमारी भूल है॥१११॥

इन तीर्थों में प्रतिवर्ष लाखों रुपयों का धन व्यर्थ व्यय किया जा रहा है। इस प्रकार अति व्यय कर लाखों मनुष्य देवदर्शन पाने का अवसर प्राप्त कर रहे हैं और आनन्द भोग कर रहे हैं। वस्तुतः अब इन तीर्थ स्थलों में होने वाले मेले महोत्सव ही अति व्यय अनाचार और फूट के कारण हैं। परन्तु बन्धुओ! इसमें इन तीर्थ स्थलों का अपराध नहीं है हमारा अपराध है।

अब देखते हैं नेत्र हमको ढूँढ सब पण्डे अहा।
अब वे तपोवन हैं नहीं, जगता सन्तोष ही नहीं।
अब दर्श भी बिन द्रव्य के भगवान के संभव नहीं।
अब ईशके दरबार में उत्कोच बिन अवसर नहीं॥११२॥

इन तीर्थों की यह पतितावस्था देखकर मन् यह कहते हैं। अब वे तीर्थ वे तपोभूमि नहीं रहे अब तो यहाँ आने पर कामवश आगत होता है। विषाद फिर यह हुआ कि अब बिना कर दिये भगवान् के दर्शन भी नहीं करने दिये जाते। हा! अब तो ईश्वर के दरबार में भी घूँस बिन किसी का प्रवेश नहीं।

मन्दिर और पुजारी

मन्दिर न अब हमको कहो नहिं ईश के आवास हैं।
पण्डे-पुजारी ईश हैं, दर्शक बिचारे दास हैं।

अड़ना, अकड़ना, डाँटना, इनके सदा के काम हैं।
बस माल खाना, मस्त रहना, लोटना अभिराम हैं ॥ ॥११३॥

अब इन चैत्यालयों को मन्दिर मत कहो, ये अब ईश्वर के घर नहीं रहे। इन मन्दिरों में अब पण्डे और पुजारी ईश्वर तुल्य हैं और दर्शकगण दासतुल्य हैं। पण्डे और पुजारियों का दर्शकों से अड़ना, अकड़ना और इनको डाटना अब इन मन्दिरों के नित्यकर्म हैं। इन मन्दिरों की सेवा पूजा और व्यवस्था करने वालों के निकट अब मिष्टान्न उड़ाना, मदमस्त रहना और गद्दी तक्कियों पर लोटते रहना ही सुन्दर है।

सौंदर्य्य के प्यासे दृगों के खूब लगते ठाट हैं।
ये ईश के आवास अब सौंदर्य्य के ही हाट हैं।
हा! ईश के आवास में होती अनङ्गोपासना।
प्रत्यक्ष अब इन मंदिरों में दीखती दुर्वासना ॥ ॥११४॥

अब इन मन्दिरों में परमहंस भक्तों का आवागमन न होकर सुन्दरता के प्रेमी नेत्रवालों का झुरमुट-सा लगा रहता है। वस्तुत अब ये ईश्वरालय सुन्दता की दुकानें ही हो गई हैं। अर्थात आशय यह है कि दर्शनार्थ आनेवाले स्त्री और पुरुष विभुमूर्ति के दर्शन करना भूल कर परस्पर की सुन्दरता को निहारते हैं और प्रेम में चव भी जाते हैं। सुन्दरता के प्रेमी और प्रेमिकाओं को यहाँ मिलने का अच्छा अवसर मिलता है। हे भगवन्! अब तो प्रकट रूप से सचमुच इन मन्दिरों में दुर्वासना जग रही है।

साम्प्रदायिक कलह

हा! चन्द्रिका के राज्य में कैसी अमा है छा गयी!
दिन राज्य में कैसी तमिस्रा की विभा है छा गयी!
देखो सुधा में हा! गरल का भाव है भरने लगा!
बन्धुत्व में शत्रुत्व का सब भाव हा! बढ़ने लगा!! ॥११५॥

यह कैसा आश्चर्य है कि चन्द्रिका की उपस्थिति में अमावस्या का घोर बढ़े, दिन की उपस्थिति में रात्रि की काली घड़ियें बढ़ने लगे। देखिये! अमृत में विष का भाव भर रहा है भ्रातृभाव में रिपुभाव बढ़ रहा है।

जो चढ़ चुका है शृंग पर फिर निम्नगा भी है वही
कैसे बढ़े फिर शृंग से जब और आगे है नहीं।
ऐसी दशा में लौटना होगा परम अनिवार्य है
पर हाय! हम तो गिर पड़े भिड़कर परस्पर आर्य! है ॥११६॥

जो पर्वत की शिखा पर चढ़ेगा वही उतरेगा। आगे बढ़ने को जब स्थान ही नहीं है तब आगे कैसे बढ़ेगा उसके लिये पुनः लौटना ही परम अनिवार्य होगा। परन्तु हाय! हम तो लौटे नहीं (ऊपर ही) परस्पर लड़कर-भिड़कर नीचे को एक दम धम से गिर पड़े।

मतभेद में शत्रुत्व के यदि भाव जो भरने लगे
करते वहाँ विषपान के फिर देखलो मरने लगे।
अमृत तक पयमान तब विषमूत होंगे देख लो
परिमल, मधुमत्-भाग कीट भी विषयुक्त न होंगे देखलो ॥११७॥

परस्पर विवाद और विचारों में मत भेद तब तक उत्कर्ष एवं सत्य शोध करने के लिये हैं, जब तक विवाद और मतभेद में शत्रुत्व का भाव नहीं भरता है। यदि मतभेद के कारण शत्रुत्व की भावनाएँ पैदा हो गई तो बस फिर आप वहाँ विष के झरने ही झरते हुये देखेंगे। उस परिस्थिति में पड़कर अन्न, जल और वायु भी विषाक्त हो जावेंगे और ऐसे विषाक्त वातावरण में पल कर क्रिमि, कीट, पशु-पक्षी मनुष्य, वृक्ष-वनस्पति सब विष के घट बन जावेंगे।

हा! आज ऐसा ही हमारी जाति का भी हाल है।
प्रत्येक बच्चा, प्रौढ़ इसका हाय! तक्षक व्याल है।।
होकर सशंकित व्याल तो निज को बचाकर काटते।
रिपु को बुलाकर गेह पर हम गेह कर मे पाटते।। ।।११८।।

हमारी समाज का वातावरण ठीक ऐसा ही विषाक्त है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति भुजग बना हुआ है। भुजग तो फिर भी उस दशा में काटता है जब कि उसे यह शंका हो जाती है कि यह प्राणी मेरे प्राणों को हरना चाहता है या मुझे भारी आघात पहुँचाना चाहता है। इतनी शंका हो जाने पर भी भुजग अपनी प्राण रक्षा का प्रथम ध्यान रखता हुआ उसे काटता है, परन्तु हम तो अपने प्रतिपक्षी को निमंत्रण देकर घर पर बुलाते हैं, और उसके साथ में बंध कर अपने ही हाथों से अपना घर दाह कर मरते हैं।

ये श्वेतपट धारी, दिगम्बर हैं परस्पर लड़ रहे,
इस भाँति लड़ते हैं कि मानो हैं मरणहित अड़ रहे,

इनको सहोदर हाय ! हम सोचो भला कैसे कहें
मन्दिरों के ही सामने पद-त्राण जब इनमें बहें ॥११८॥
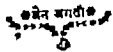
देखिये ! ये श्वेताम्बर और दिगम्बर बन्धु परस्पर लड़ रहे हैं। इनके इस प्रकार लड़ने के ढंग से यही विश्वास होता है कि ये वस्तु प्राप्त करने के लिये परस्पर लड़ रहे हैं। आप ही कहिए कि हम यह कैसे मानें कि ये परस्पर भाई हैं, जब ईश्वर के (मन्दिर) समक्ष ही हम इनमें परस्पर पद-त्राण (जूते) चलते हुये देख रहे हैं।

होकर पुजारी एक के ये हाय ! अबलों से लड़े ।
फिर क्यों न इनके देव पर हा ! हाय दुखों के पड़े ।
धिक्कार कैसे जैन हैं ! क्या जैन के ये काम हैं ।
गतराग हो, गतद्वेष हो जो—जैन उसका नाम है ॥१२ ॥

ये दोनों एक ही धर्म के अनुयायी हैं और फिर इस प्रकार लड़ रहे हैं। फिर आप ही बतलाइये, इनके मन्दिरों पर क्यों न दूसरे अधिकार करें। इन्हें धिक्कार है ये कैसे जैन हैं ! एक जैनधर्मावलम्बी के ऐसे कर्म तो नहीं हो सकते हैं। जैन तो वह है जो राग-द्वेष से सर्वथा रहित हो।

हर एक अपने बन्धु को है शत्रु कट्टर मानते।
इनसे भले तो श्वान हैं जो अंत मिलना जानते।
गतराग है निर्मोह संयम लक्ष्य इनका मुक्ति है
इस हेतु ही इनमें कहीं बढ़ती नहीं अनुरक्ति है। ॥१२१॥

ये परस्पर प्रत्येक को कट्टर दुश्मन समझते हैं। इनमें तो

कुत्ते ही अच्छे हैं जो परस्पर लड़कर कभी एक तो हो जाते हैं। सम्भव है ऐसा भी हो सकता है कि ये मोह-राग से रहित अपना परमधर्म और मोक्ष की प्राप्ति अपना लक्ष्य समझते हैं अतः ये परस्पर प्रेमबन्ध में नहीं बन्धते हों और परस्पर यों एक दूसरे को इस जीवन से मुक्ति देना उचित समझते हैं।

लड़ते हुये इस भाँति दोनों सर्वहत हैं हो चुके।
कोटी सहोदर मर चुके हा! द्रव्य कोटी खो चुके।
निर्धन, पतित निर्वंश होकर हाय! अब हैं रो रहे।
इनके घरों को देख लो बैठक मृतक के हो रहे॥ ॥१२२॥

इस प्रकार दोनों बंधु परस्पर लड़कर अपना सर्वनाश कर चुके। इनके इस पारस्परिक कलह में इनके करोड़ों बन्धु अपनी जीवन-लीला व्यतीत कर चुके और इनका करोड़ों का द्रव्य व्यय हो चुका। अब ये दीन हीन और अल्पसंख्यक हो कर रोने लगे हैं। आप इनके घरों को अवलोकेंगे तो इनके घर आपको प्रत्यक्ष शोक भरे प्रतीत होंगे।

ये व्यूह रचना में नहीं निष्णात हमको दीखते
अभिमत हमारा मानलें—ऐसे नहीं हैं सीखते।
यदि सत्य ही निर्वंश करना बन्धु को हैं चाहते,
वे एक दल के फूँक दे दल फूट, जय हैं चाहते॥ ॥१२३॥

ये हमको सफल योद्धा भी प्रतीत नहीं होते। हमारी सम्मति मानलें ऐसे भी ज्ञात नहीं होते। फिर भी इतना तो कहूँगा कि अगर ये परस्पर अपने एक दूसरे बंधुसमाज को निर्वंश

१८

करना ही चाहते हैं तो इन्हें सर्वप्रथम यह चाहिए कि अपनी अपनी दलसमाज में फैली हुई घातक फूट को नष्ट कर व सुसंगठित होवें। इनमें जो दलसमाज प्रथम अपने दल की फूट को नष्ट कर आगे बढ़ेगा वह ही अवश्य विजयी होगा।

भो! देखते हो क्या दिगम्बर! चार तुममें भेद हैं
आशा न तुम जय की करो तुम में यहाँ तक छेद हैं।
तुम से अधिक ह श्वेताम्बर छलबलविक्षत हो रहा
बाहर तथा भीतर अहो! यमचक्र गतिमय हो रहा ॥१२४॥

हे दिगम्बर बंधुओ। क्या आपको यह ज्ञात है कि आप में भी चार दल हैं? जहाँ तक ऐसी फूट है आप जय की आशा न रक्खें। आप से भी अधिक इस श्वेताम्बरदल में फूट है। हा! यह यमचक्र बाहर और भीतर सर्वत्र चल रहा है।

बाईसपन्थी, मूर्तिपूजक मूर्ति पर मुखपत्ति पर
हैं लड़ रहे दोनों परस्पर हाय! अपनी शक्ति भर।
मुखपत्ति हो मुख पर चढ़ी या हो तथा कर में भले,
करते रहें उपयोग उसका यावत् अमरावर चलें ॥१२५॥

ये स्थानक वासीबंधु और मूर्तिपूजक बंधु मूर्ति और मुखपत्ति के प्रश्नों पर परस्पर अपनी अपनी सर्वशक्ति लगाकर लड़ रहे हैं। मुखपत्ति चाहे हाथ में हो चाहे मुख पर लगी हो— ध्येय यह होना चाहिए कि जब जब ओष्ठ हिले उसका उपयोग हो। मेरी दृष्टि में यह पारस्परिक कलह इस प्रकार

३१

किसी भी रूप में समझ लेने पर अब सदा के लिये शांत हो सकता है।

अब अर्थ पूजा का करें, जिस पर कि हम हैं लड़ रहे ?
आखात जिसके हेतु हैं गहरे परस्पर पड़ रहे।
आतिथ्य, रक्षण, मान औ औचित्य इसके अर्थ हैं,
अनुसार श्रद्धा, भक्ति के बहु रूप हैं, बहु अर्थ हैं ॥१२६॥

अब लीजिये दूसरा कारण 'मूर्तिपूजा' का जिसपर कि हम इस प्रकार लड़ रहे हैं और जिसके कारण हमारे मानसों में अंतर का भारी आखात बढ़ता जा रहा है। पूजा का अर्थ अतिथि का समान, आप्त की रक्षा गुणों का मान और आप्त का यथाविधि समादर है। फिर पूज्य के प्रति पुजारी की श्रद्धा भक्ति का तोल पूज्य के समान, रक्षण, आतिथ्य और समादर के अनेक रूप, ढग और क्रम बना देता है।

जल, अन्न गृह, पट, वायु हैं आधार इस तन के सदा,
अनुसार मात्रा के बढ़ेगे निमिष जीवन के सदा।
चिरकाल रखने के लिये ज्यों चित्र मण्डित चाहिए,
जीवन बढ़ाने के लिये बस उचित साधन चाहिए ॥१२७॥

हे बंधुओ! हम इसका सत्कार जल, अन्न, पवन, भवन और वस्त्रादि से करते हैं और ये ही इसके जीवन के आधार हैं। अब जैसी और जिस मात्रा में ये उपकरण इसको प्राप्त होंगे वैसा ही और उस प्रकार का इसका दीर्घ या अल्प जीवन बनेगा। वही चित्र अधिक जीवित रहेगा, जो भली भाँति

संचित होगा। तात्पर्य यह है कि जैसी वस्तु हो, उसके जीवन को बढ़ाने के लिये भी वस्तु के अनुकूल और उचित साधन जुटाने चाहिये।

> इस दृष्टि से जिनमूर्ति जीवन उपकरण ढूँढ़ गये
> प्रासाद दीपक, धूपगृह साधन उचित समझे गये।
> ज्यों स्नान भोजन वस्त्र से तुम देह की पूजा करो
> अनुकूल साधन प्राप्त कर दीर्घायु की आशा करो ॥१८८॥
>
> त्यों मूर्ति भी दीर्घायु हो—ऐसे न जिनके भाव हैं ?
> है बिंब करुणासिंधु का—फिर क्यों न पूजा भाव हैं ?
> इस भाँति पूजाभाव दिन दिन मूर्ति में दृढ़ हो गये
> फिर भावपूजा भाव बढ़कर द्रव्यपूजा हो गये ॥१८९॥

ईश्वर की मूर्ति दीर्घायु हो—यही भावनाएं लेकर ऐसे साधन सोचे गये जो बिम्ब को चिरस्थिर रख सकें। मूर्ति का प्रासाद्य मूर्तिस्थापन करने के लिये मन्दिर, दीपक और धूप ये आदि आवश्यक साधनों में से माने गये। जिस प्रकार हम स्नान भोजन आदि करके सुन्दर वस्त्रों का परिधान करके इस देह की पूजा करते हुये दीर्घायु होने की आशा रखते हैं उसी प्रकार ऐसे किस व्यक्ति की भावनाएं नहीं होंगी कि बिंब दीर्घायु हो। अतिरिक्त इसके फिर जब बिम्ब परमात्मा का हो तब फिर पूज्य भाव क्यों नहीं बढ़ेंगे। इस प्रकार पूजाभाव उत्तरोत्तर प्रतिदिन मूर्ति के प्रति दृढ़तर होते गये और कालान्तर में जाकर ये पूजाभाव बढ़ते बढ़ते इतने बढ़ गये कि उसका रूप

ही शनैः शनैः परिवर्तित होने लगा और ये अन्त में द्रव्यभाव बन गये।

प्रस्तरविनिर्मित मूर्तियें जिनराज के शिव बिंब हैं,
संसार में जिनराज केवल मात्र धर्म अवलम्ब हैं।
उनके भला फिर बिम्ब का सम्मान क्यों नहिं हो पड़ा,
फिर शिल्प भी इस बिंब की सोपान पर ऊंचा चढ़ा ॥१३०॥

ये मूर्तियें जिनेश्वर भगवानों के कल्याणकारी बिम्ब हैं, जो इस असार संसार में एक मात्र सहारे हैं। ऐसे महोपकारी जिनेश्वर भगवानों के बिम्बों का सम्मान भला क्यों नहीं बढ़ा-चढ़ा हो और फिर ये मूर्तियें ही तो शिल्प कला का उत्कृष्ट नमूना हैं अर्थात् शिल्प इन चित्रों पर ही भलीभांति अपने सत्य रूप को चित्रित कर सका है।

जिनराज के जब बिंब हैं जब शिल्प के ये चित्र हैं,
अतएव हमसे हो नहीं सकते कभी भी भिन्न हैं।
रक्षार्थ इनके सब हमें साधन जुटाने फिर पड़े,
रक्षण तथा संचय इन्हें मंदिर बनाने फिर पड़े ॥१३१॥

महोपकारी जिनेश्वर के बिंब होने के कारण और शिल्प के उत्कृष्ट नमूने होने के कारण ये मूर्तियें हमारे से अभिन्न नहीं की जा सकतीं। अतः इन दृष्टियों से हमको प्रेरित होकर इनकी रक्षा का उपाय करना पड़ा और वे सब ही साधन एकत्रित किये गये जो इनकी रक्षार्थ आवश्यक समझे गये और इनको प्रतिष्ठित करने के लिये हम को मन्दिर भी बनाने पड़े।

मैं मानता हूँ आज अति ही द्रव्य-पूजा बढ़ गई
रूढ़स्थान होकर भक्तिपूजा अन्ध श्रद्धा बन गई।
पर अर्थ इसका यह नहीं—हम मूर्ति मन्दिर तोड़ दें;
हम उचित श्रद्धा में न क्यों हाँ! अंध श्रद्धा मोड़ दें ॥१२२॥

यह मैं स्वीकार करता हूँ कि आज द्रव्य-पूजा एक विकृत रूप धारण कर चुकी है। पुजारियों की भक्तिभावनाएँ अविवेक के कारण अन्धश्रद्धा में परिणित हो गई हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम मूर्तियों को तोड़ दें और मन्दिरों को ढाह दें। हमको अपनी बढ़ी हुई और बढ़ती हुई अन्धश्रद्धा का विवेकपूर्ण श्रद्धा में परिवर्तन करना चाहिए।

तुम मूर्ति कहते हो जिसे मैं शास्त्र भी कह दूँ उसे
तुम मूर्ति कह सकते उसे मैं शास्त्र कहता हूँ जिसे।
है एक कागज का बना दूजा बना पाषाण का;
यह वाक्तन भगवान का वह भाव है भगवान का ॥१२३॥

आप जिसको मूर्ति कहते हैं मैं उस वस्तु को शास्त्र कह सकता हूँ और जिस वस्तु को मैं शास्त्र कहता हूँ आप भी उसको मूर्ति कह सकते हैं। शास्त्र और मूर्ति में अन्तर केवल इतना ही है कि एक कागज का बना हुआ है और अन्य प्रस्तर का। शास्त्र भगवान के अभिवचनों का मन्त्र है और मूर्ति उन्हीं भगवान का चित्र है।

आदर्शता पर शुल्क का फिर प्रश्न है रहता नहीं
रज का कभी वह मूल्य है जो मूल्य कंचन का नहीं।

विश्वेश की यह मूर्त्ति है, इसका न कोई मूल्य है,
जिसमे हमारा राग हो, उसके न कोई तुल्य है ॥१३४॥

व्यवहार में आने वाली वस्तुओं का तो बाजार भाव ही होता है लेकिन प्रासाद रूप से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का मूल्य उनके कर्ता के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। मुझे अच्छी प्रकार स्मरण है कि महात्मा गाँधी के कर कमलों से बनाया हुआ निमक सन् १९२९ में अजमेर में सौ रुपये तोला से ऊपर बिका था। आदर्शता अमूल्य है। कभी कभी धूल का वह मूल्य होता है, जो हेम का नहीं होता। यह मूर्त्ति भी सच्चिदानंद परम परमेश्वर भगवान का बिंब है अत इसका मूल्य अकल्पनीय है। जिस व्यक्ति वस्तु के समान हमारे लिये संसार में कोई अन्य नहीं है, चाहे भले ही उस व्यक्ति, वस्तु से ससार में उत्तम उत्तम व्यक्ति, वस्तु क्यों न हो।

ये शास्त्र, आगम-निगम हैं विद्वान जन के काम के,
पर बिंब तो अज्ञान के, विद्वान के सम काम के।
साहित्य की भी दृष्टि से दोनों कला के अ श हैं,
मन मैल धोने के लिए ये अंबुकुल-अवतंश हैं ॥१३५॥

ये शास्त्र, आगम आदि तो सपढ विद्वान जन के उपयोग के लिए हैं, परन्तु मूर्त्तियों से अज्ञानी पुरुषों को एव विद्वान जनों को समान लाभ पहुँचता है। वैसे फिर साहित्य की दृष्टि से दोनों शास्त्र और मूर्त्ति कला के भाग हैं। हृदय में शास्त्रों के स्वाध्याय, श्रवण से और मूर्त्ति के दर्शन-स्पर्शन से आप्त

भावों का जागरण होता है। मनोविकारों का परिमार्जन करने के लिए इस प्रकार ये दोनों शास्त्र एवं मूर्त्ति उत्तम गंगाजल हैं।

> आगम है वही शिव मार्ग का जो ज्ञान दे
> शिव मार्ग जो शंकर गये वह शिव उनका भान दे।
> उत्थान उन्नति के लिए दोनों अपेक्षित एक से
> हैं भूत भारतवर्ष के इतिहास दोनों एक-से ॥१२६॥

अर्थात् आगम वह वस्तु है जो शिवमार्ग का उपदेश निर्देश करता हो और मूर्त्ति वह वस्तु है जो शिव मार्ग में होकर गये हुए महापुरुषों की स्मृति कराकर दर्शकों को प्रभावित करे। इस दृष्टि से आध्यात्मोन्नति के लिए दोनों एक से आवश्यक हैं। दोनों भारतवर्ष के अतीत काल के (में हुए महापुरुषों के चरित्र को प्रदर्शित करने वाले) समान मान् के इतिहास हैं।

> समयज्ञ थे पूर्वज हमारे भूत भावी काल के
> सब के लिए थे रख गये साधन सभी सब काल के।
> विद्वान को होंगे विदित आचार आगम पाठ से
> होंगे प्रभावित अपढ़ जन इन मूर्त्तियों के ठाट से ॥१२७॥

हमारे पूर्वज भूत वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता थे। अतः वे हमारे लिए सब कालों में उपयोगी हितकारी साधन रख गये हैं। विद्या का युग हो चाहे तम आपदा नृत्य करती हो हमको आचार भ्रष्ट होकर धर्मोन्मुख होने से रोकने के साधन तो सब काल में एक रूपत्र विद्यमान हैं। विद्वान उन ग्रन्थों को पढ़ कर अपना आचार जान सकते हैं और मूर्खजन

मूर्त्तियों के दर्शन-स्पर्शन, गुण कीर्त्तन, श्रवणादि से ईश्वर भक्ति की ओर आकर्षित रहकर आचार-मार्ग में चलते हैं।

पूज्या तथा सम्माननीया हर तरह हैं मूर्त्तियां—
ये भाव हों जब ही बढ़ेगी प्रीतियां, फल कीर्त्तियाँ
नूतन कलह फिर है मचाया एक तेरह पंथ ने,
ठुकरा दिये प्रस्ताव सब संयोग के इस पथ ने ॥१२८॥

अब पाठक वृंद भली भांति समझ गये होंगे कि हर प्रकार से मूर्त्तियां हमारे निकट पूज्या एवं सम्माननीया हैं। जब हमारे ऐसे भाव होंगे तब ही हम सब में परस्पर प्रीति होगी एवं हमारी यश-कीर्त्ति बढ़ेगी। तेरहपथ ने एक नूतन झगड़ा और खड़ा कर दिया है और संयोग कराने की सब ही बातें इस पथ ने हा ! ठुकरा दी हैं।

इन सब कलह की डोर है गुण्डे जनों के हाथ में,
ये भूत कैसे लग गये शाश्वत हमारे साथ में।
रहते हुये न दम्भियों के मेल हो सकते नहीं,
पारस्परिक मत भेद के ये रोग घट सकते नहीं ॥ ॥१२९॥

इन सब झगड़ों की डोर गुण्डे जनों के करों में है। हे भगवन् ! हमारे पीछे ये अनोखे भूत सदा के लिये कैसे लग गये ? इन दम्भियों के जीवित रहते न तो कोई परस्पर मेल होने की ही संभावना है। और न इन मतभेदों की कमी होने की कोई आशा है।

विभुवीर के अनुयायियो ! ओ दिग्पटो ! श्वेताम्बरो !
मेरे सहोदर बन्धुओ ! दुर्मृत्यु तो यों मत मरो !

सब में हृदय, मन ज्ञान हैं हैं आत्म सब में एक ही।
ऐसी दशा में पल लगेगा मेल करते एक ही ॥१४०॥

हे भगवान महावीर के अनुयायी दिगंबर एवं श्वेतांबर। हे मेरे आत्म भ्राताओं! इस प्रकार कुमृत्यु का आलिंगन तो मत करिये। हम सब में हृदय है, मन है और ज्ञान भी है तथा आत्मा सब में एक ही है ऐसी स्थिति में (मेरे विचार में) परस्पर मेल एक पल भर में स्थापित किया जा सकता है।

कुशिक्षा

शिक्षा कहें अथवा इसे कुल्टा कहें या वंचिनी
कुलनाशिनी वन हारिणी मार्तण्डवती मंचिनी।
शिक्ष! तुम्हारा नाश हो भिक्षा सिखाती हो हमें
भिक्षुक बनाकर हाय! रे! घर-घर फिराती हो हमें ॥१४१॥

वर्तमान शिक्षा विद्यार्थी को कुल्टा के सदृश सदा कुमार्ग में आकृष्ट करती रहती है भ्रष्ट कर उसके कुल का नाश करती है वाशिक्षय करवाकर वन हरती है प्रावण्य का पाठ पढ़ाती है और वंचिनी सा व्यवहार करती है। शिक्ष! तुम्हारा नाश हो! हमको भिक्षा का पाठ पढ़ाती हो और भिक्षुक बना कर हमसे घर घर भिक्षा मँगवाती हो।

अभ्यास्य देशों के पढ़ाव जा रहे इतिहास हैं—
इस भाँति से की आज संस्कृति का दिनोदिन ह्रास है।
अवएव शास्त्राभ्यास में मन हा! कभी लगता नहीं
आत्माविक्षेपाभ्यास से मन हा! कभी थकता नहीं ॥१४२॥

हम भारतीय विद्यार्थियों को अन्यान्य प्रदेशों के बढ़ा चढ़ा कर झूठे झूठे गौरव भरे ऐतिहासिक ग्रन्थ इस ढंग से पढ़ाये जाते हैं कि हमारी आर्य संस्कृति का शनैः शनैः नाश हो जाय। इसी का यह प्रतिफल है कि आज हमारा धर्मग्रंथों के स्वाध्याय में मन नहीं लगता है और चरित्र को भ्रष्ट करने वाले उपन्यास और कहानी ग्रंथ पढ़ते हुये वह थकित नहीं होता।

निज पूर्वजों के वाक्य, बल में अब न श्रद्धा है हमें,
ईसा, नपोलिन पूर्वजो में दीखते नहिं हैं हमें।
ये सब कुशिक्षा के कुफल हैं। हा! हत! हम भी मनुज हैं!
शिक्षा, विनय में गिर गये—सब भाँति अब तो दनुज हैं ॥१४३॥

अब हमको हमारे पूर्वजों के अनुभवपूर्ण एवं आप्त वाक्यों में तथा उनके महा पराक्रमों में विश्वाश नहीं रहा। हमारे पूर्वजों में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं दिखाई देता कि जिसको हम ईसा और नपोलियन के समतुल समझें। हे भगवान्! ये सब कुशिक्षा के परिणाम हैं। हा! हमारा सर्वनाश हो गया। क्या हम भी मनुष्य हैं? शिक्षा में और पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-विनय में हम इतने पतित हैं कि अब तो हम सर्व प्रकार से दैत्य से असभ्य और जगली हैं।

प्राकृत तथा संस्कृतविदों के मान घटते जा रहे,
हर वर्ष बी० ए० एम० ए० बढते हुये हैं जा रहे।
यदि हो न बी०ए०, एम०ए० रक्खो कहाँ हैं नौकरी,
डिगरी बिना हम निर्धनों को है कहाँ पर छोकरी! ॥१४४॥

अब संस्कृत और प्राकृत के विद्वानों का मान उत्तरोत्तर न्यून होता जा रहा है। प्रतिवर्ष सहस्रों युवक बी० ए० और एम० ए० उत्तीर्ण कर रहे हैं। यदि आजकल बी० ए० और एम० ए० उत्तीर्ण न हो तो नौकरी नहीं मिल सकेगी और हम निर्धनों का विवाह भी भग्न होगा।

प्राचीन प्राकृत एवं भाषा सीखते हम भी नहीं
इनके सिखाने की व्यवस्था सब कहीं है भी नहीं।
फिर देश के प्रति सब कहो अनुराग कैसे जग सके?
दासत्व के कैसे कहो फिर भाव उर से भग सके? ॥१४५॥

हम भी संस्कृत और प्राकृत के अध्ययन की ओर कुछ भी आकर्षित नहीं होते हैं और न इन भाषाओं के सिखाने की कहीं भी सम्यक् व्यवस्था ही है। फिर सब कहें हमारा देश के प्रति (पूर्वजों के प्रति) श्रद्धाभाव कैसे बढ़े और दासता के ये दुष्प्रभाव हमारे संस्कारित भ्रमित हृदय से कैसे बाहर निकलें।

जापान, लन्दन, फ्रान्स में शिक्षार्थ हम हैं जा रहे
भारत हम हैं साथ में डेकी प्रणय कर आ रहे।
शिक्षा त्रिया के साथ में सखी प्रिया भी मिल गई
हम मैन इंगलिश बन गये बस मुक्ति भी मिल गई ॥१४६॥

हम विद्याध्ययन करने के लिए जापान, लन्दन, फ्रान्सादि प्रदेशों में जा रहे हैं। विद्याध्ययन समाप्त कर जब देश को प्रत्यावर्तित होते हैं उस समय हम उन प्रदेशों की सखियों को अपनी विवाहिता पत्नि बनाकर साथ में ला रहे हैं। प्रियतमा शिक्षा के साथ ही साथ हमको इस प्रकार नारी प्रियतमा भी

मिल जाती है और अगर हमको यहाँ फिर 'मुनफा' मिल जाय तो बस हमारे अंग्रेज बनने का गौरव प्राप्त करने में कुछ भी निःशेष नहीं रहा।

जो पा चुके शिक्षा यहाँ, उनको बुभुक्षा मिल गई।
हा! भाग्य उनके खुल गये, यदि रोटियां दो मिल गई।
नीचा किये शिर रात दिन श्रम, काम वे करते हैं,
फिर भी विचारे स्वामियों के झाडते जूते रहे ॥१४७॥

जिन हमारे बंधुओं ने भारतवर्ष में ही शिक्षा प्राप्त की, उनके पल्ले में बुभुक्षा पड़ी। वे अपना सौभाग्य समझेंगे अगर उन्हें दो रोटियाँ मिल गई। हमारे ये बंधु मस्तिष्क झुकाये रातदिन परिश्रम, काम करते रहेंगे और इस पर भी उच्चपदाधिकारियों एवं स्वामियों की क्षुद्र सेवाओं में भी हर समय उपस्थित रहेंगे और डाट-फटकार सहते रहेंगे।

आराम में बस प्रथम नम्बर एक अड्वोकेट हैं,
ये बन्धु आपस में लड़ाकर भर रहे पाकेट हैं।
ये भी विचारे क्या करें, इसमें न इनका दोष है,
जैसी इन्हें शिक्षा मिली, वैसा करें—निर्दोष है ॥१४८॥

भारतवर्ष में ही विद्याध्ययन समाप्त करने वालों में से एक वकीलसमुदाय आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है। ये हमारे बन्धु परस्पर बन्धुओं को लड़ाने का और झगड़े बढ़ाने का व्यवसाय करते हैं और जेबें खूब गर्म करते हैं। परन्तु वस्तुतः इस घृणित व्यवसाय के अपनाने में इनका, मेरी दृष्टि से दोष नहीं है। ये निर्दोष हैं— वैसा ही ये करेंगे जैसी इनको शिक्षा मिली है।

शिक्षण-संस्थायें

विद्याभवन, नटशाल हैं या रोग के आवास हैं-
वैमनस्य मत्सर द्वेष के या साम्प्रदायिक वास हैं।
पौशाल कारावास हैं अभियुक्त हैं बालक यहाँ
य घूमते हंटर लिये शिक्षक सभी जेलर यहाँ ॥१४९॥

ये इन हमारी शिक्षण-संस्थाओं को हम विद्याभवन कहें, कि नटशाला कहें, कि या रोगशाला कहें या वैमनस्य-मत्सर-द्वेष प्रवर्धनशाला या साम्प्रदायिकशाला कहें। ये संस्थायें कारागार हैं बालकगण कैदी हैं और ये हंटर हाथ में लेकर घूमनेवाले शिक्षक महोदय जेलर महानुभाव हैं।

विद्याभवन तो नाम है विद्या न है पर नाम को
विद्यार्थियों को मिल रही विद्या यहाँ हरिनाम की।
यदि शिष्य-गणना ठीक है शिक्षक न पूरे हैं यहाँ
शिक्षक अगर भरपूर हैं तो शिष्य थोड़े हैं यहाँ ॥१५०॥

ये नाम के विद्याभवन हैं। नाम लेने भर को भी यहाँ विद्या नहीं है। विद्यार्थियों को नाम मात्र भी विद्या नहीं दी जाती है। यदि (कभी) विद्यार्थियों की गणना समुचित है तो शिक्षकों की कमी होगी और अगर शिक्षक समुचित संख्या में हैं तो विद्यार्थी बहुत थोड़े होंगे—ऐसी इन शिक्षण-संस्थाओं की व्यवस्थायें हैं।

गुरु-शिष्य दोनों की जहाँ गणना उचित मिल जायगी
तुमको वहाँ पर आपदा पर अर्थ की मिल पायगी।

आर्थिक कठिनता हो नहीं—ऐसे न गुरुकुल आज हैं,
कुत्सित व्यवस्था देखकर आती हमें भी लाज है ॥१५१॥

अगर किसी विद्यालय में शिक्षक और शिष्य उचित संख्या में है तो वहाँ आर्थिक कष्ट आपको सदा मिलेगा। आज हमारी समाज में ऐसा कोई गुरुकुल नहीं है जहाँ आर्थिक कठिनाई नहीं हो। इस प्रकार की अव्यवस्थायें देखकर हमको भी शर्म आती है।

संपन्न यदि सद्भाग्य से विद्याभवन हो हा! कहीं,
हा! दुर्व्यवस्थित,पतित उस सा अन्य मिलने का नहीं।
सब कार्य कर्ता चोर हैं, दलबंधियों के जोर हैं,
शिक्षक गणों की पट रही, शिक्षक सभी गुणचोर हैं॥१५२॥

यदि अहोभाग्य से कोई विद्यालय सम्पन्न होगा तो अव्यवस्थित उसमें बढ़कर (इस भूमण्डल पर) अन्य नहीं मिलेगा। सब कार्यकर्ता चोर होंगे, दलबंधियाँ होंगी और शिक्षकगण गुणचोर होंगे जो इस प्रकार की अव्यवस्था से लाभ उठाते होंगे।

वैसे न गुरुकुल आज हैं। वैसे न विद्यावास हैं।
वैसे न कुलपति, शिष्य हैं। होंगे न-ऐसी आश है!
यदि कक्ष में पैसा नहीं, मिलती न शिक्षा है यहाँ।
निर्धन जनों के भाग्य में तो मूर्ख रहना है यहाँ॥॥१५३॥

अतीत काल के आदर्श गुरुकुलों के समान न तो आज गुरुकुल ही हैं और न विद्यालय ही हैं। वैसे कुलपति और

विद्यार्थी भी नहीं हैं और भविष्य में (ऐसे आदर्श) इनसे ऐसी कोई आशा भी प्रतीत नहीं होती। आज तो शिक्षा उसी के भाग्य में है, जिसके पास द्रव्य है। यहाँ निर्धनों के भाग्य में आज मूर्ख रहना ही लिखा है।

व्यवहार व्यवसाय के सिवा होती न शिक्षा है यहाँ।
बस साम्प्रदायिक सैन्य ही तय्यार होता है यहाँ।
पटशाल छात्रावास गुरुकुल फूट के सब बीज हैं।
इनकी कृपा से हो रहे हम हा! अकिंचन चीज हैं।।१४८।।

इन शिक्षणसंस्थाओं में केवल व्यवसायात्मक एवं व्यवहारात्मक शिक्षण के अतिरिक्त कोई शिक्षण नहीं होता। साम्प्रदायिक-सैन्य ही यहाँ सजाये जाते हैं। ये सब ही प्रकार की शिक्षण-संस्थायें फूट के बीजस्वरूप हैं एक मात्र इनकी कृपा से ही आज हम इतने पतित हो रहे हैं।

आश्चर्य क्या रतिचार भी गुरुशिष्य में समय मिले।
हा! क्यों न ऐसे गुरुजनों में मूढ़-शिक्षण सब मिले।
शिक्षक गणो! तुम धन्य हो! हे तंत्रियो! तुम धन्य हो।
निर्दोष बच्चों के अहो! माता-पिता! तुम धन्य हो।।१४९।।

कोई आश्चर्य नहीं अगर इन संस्थाओं में गुरुजनों का शिष्यों के साथ वासना भरा प्रेम मिले। हा! ऐसे दुष्चरित्र गुरुजनों से संसार की सब ही मूढ़नात्मक शिक्षायें क्यों नहीं दी जानी चाहिए। शिक्षकगणो! संस्था के मंत्रियो! निर्दोष बच्चों के अहो मातापिताओ! तुम सब को धन्य है।

चालक यहाँ सब मूर्ख हैं, आता न अक्षर एक हा !
यदि अड़ गये—मर जायँगे—देंगे न जाने टेक हा !
इनमें अधिकतर धेनु से भोले तुम्हें मिल जायँगे,
विश्वास देकर दुष्टगण जिनको अहर्निश खायँगे ॥१५६॥

इन शिक्षणसंस्थाओं के संचालक सब के सब (अधिकतर) मूर्ख हैं, निरक्षर हैं और यदि किसी बात पर अड़ गये तो मरना उन्हें स्वीकृत है परन्तु टेक नहीं जाने देंगे चाहे संस्था उन्मूल ही क्यों न हो जाय। इनके चालकों में अधिकतर गौ से भी भोले भाले मिलेंगे जिनको दुष्टगण विश्वास देकर रात दिन छलते रहेंगे।

विद्याभवन आये दिवस हर ग्राम में हैं खुल रहे,
फिर बैठ जाते फेन-से हैं, दीप-से हैं बुझ रहे।
यह जैन गुरुकुल सादड़ी का बंद हा! कैसे हुआ,
इसको न थी कोई कमी, यह भग्न गति कैसे हुआ ॥१५७॥

आये दिन प्रत्येक ग्राम, नगर में विद्यालय खोले जा रहे हैं और शीघ्र ही चंचल दीपक और जल के बुदबुदों की तरह पुनः बन्द होते जा रहे हैं। श्री नाथूलाल जी गोदावत जैन गुरुकुल छोटी सादड़ी (मेवाड़) जिसको किसी बात की कोई भी कमी नहीं थी, बड़ा दुःख है, कैसे बन्द हो गया?

होगा भला इनसे नहीं, हे भाइयो! खोलो नयन,
हा! ये न विद्यावास हैं, हैं ये सभी रोगायतन।
जब तक व्यवस्था एक विध सब की न बनने पायगी;
उत्थान तरुवर शाख हा! तब तक न फलने पायगी ॥१५८॥

१६

हे बन्धुओ ! इन साम्प्रदायिक शिक्षा संस्थाओं से समाज और देश का कल्याण नहीं होगा। इनको विद्यावास कहना मिथ्या है। ये सब के सब समाज के हित रोगालय हैं। जब तक इन सब संस्थाओं की व्यवस्था अखिल समाज की दृष्टि से एक-सी नहीं होगी तब तक यह निश्चित है कि उन्नति का वृक्ष कभी भी फूल कर फलवान नहीं होगा।

शिक्षा न दीक्षा है यहाँ आलस्यता उन्माद हैं
अपकर्म चौर्य्याचार हैं स्वच्छंदता अपवाद है।
कितनेक शिक्षणभवन हैं जो गर्वपूर्वक कह सकें।
हम धर्मसेवी भक्त इनमें देश को हैं भर सकें ॥१८९॥

सत्य तो यह है कि ये शिक्षण-संस्थायें नाम मात्र की हैं। शिक्षा का और नियमनिष्ठता के शिक्षण का यहाँ वस्तुतः प्रबंध नहीं। यहाँ देखने को मिलता आलस्यता और उन्माद के दृश्य, अनुचित व्यय और चौर्य्यकर्म के नाटक और निरंकुशता और परनिंदा के अभिनय। ऐसे कितने विद्यालय हैं जो गर्व पूर्वक यह कहने का साहस रखते हो कि हमने इतने देश भक्त धर्मसेवी विद्यार्थी देश को दिये हैं।

तुमको हमारे गुरुकुलों में यह नयापन पायगा
जिस जाति के बालक सिवा बालक अपर नहिं पायगा।
नहिं जाति के नहिं देश के नहिं धर्म के यह काम के।
वे स्वयंसेवक हाट हैं अध्यापकों के काम के ॥१९०॥

हे बन्धुओ ! आपको हमारे इन शिक्षण-संस्थाओं में एक

विशेषता अवश्य मिलेगी और वह यह कि हमारी जाति (जैन) के अतिरिक्त अन्य जातियों के लड़के वहाँ (सम्भवतः) आपको नहीं मिलेंगे। ये संस्थायें नहीं जाति के लिये उपयोगी हैं, नहीं देश और धर्म के लिये लाभदायक हैं। मेरे विचारों में ये संस्थायें अध्यापकजनों के लिये भरण-पोषण की दुकाने हैं।

आदर्श पण्डित, योग्य शिक्षक यदि कहीं मिल जायगा
या रह सकेगा वह नहीं, या वह निकाला जायगा।
चरित्र में ये भ्रष्ट उसको हाय! रे! बतलायँगे।
षड्‌यन्त्र ऐसे ही यहाँ चलते हुये नित पायँगे ॥१६१॥

अगर भाग्य से कोई योग्य, विद्वान और आदर्श अध्यापक इन संस्थाओं में आ पड़ेगा तो या तो इनकी अव्यवस्था और विकृत प्रकृति देखकर वह स्वयं ही निकल जायगा या फिर वह हटाया जायगा। हटाते समय उसको चरित्रहीन होने की घोषणा की जायगी। आये दिन ऐसे ही सुन्दर सुन्दर षड्यन्त्र इन शिक्षण संस्थाओं में होते हुये आप अनुभव करेंगे।

विद्वान्

हम विज्ञ प्राकृत के नहीं, विद्वान संस्कृत के नहीं।
विद्वान आङ्गल के नहीं, हम विज्ञ हिन्दी के नहीं।
हममें न कोई 'गुप्त' से 'हरिऔध' से हैं दीखते।
दीखें कहाँ से! बालपन से हाट करना सीखते ॥ १६२ ॥

हमारी (जैन) समाज में प्राकृत, संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी के विद्वान नहीं हैं। महाकवि मैथिली शरण गुप्त और
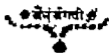
कविसम्राट पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के समान एक भी विद्वान् नहीं है। होवे भी तो कैसे ! हमारे लड़कों को बचपन से ही तुकालबारी करना सिखाया जाता है।

> विख्यात होने हो रहे जिनको न कुछ भी ज्ञान है
> अपवाद अपयश रात दिन करना जिन्हों का ध्यान है।
> यदि भाग्य से विद्वान कुछ हरि नाम को पा जायँगे
> तो साम्प्रदायिक रोग से पर मस्त तुमको पायँगे ॥ १६३ ॥

हमारी समाज में अल्पज्ञ और अनुभवहीन अनेक लेखक हैं जिनका एक मात्र ध्येय परनिन्दात्मक और अपवादात्मक कार्य करने का है। यदि कहीं भाग्य से कोई विद्वान् भी होगा तो वह भी साम्प्रदायिक रोग से तो मस्त ही मिलेगा।

> हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा आज होने जा रही।
> इसमें है साहित्य जिसका जाति वह बढ़ जा रही।
> यह आज प्राकृत देव भाषा के लिये अनुदार है
> हिन्दी न भाती हो जिसे जीवन उसी का भार है ॥ १६४ ॥

आज हमारी हिन्दी भाषा राष्ट्रभाषा बनने जा रही है। जिस जाति का इस युग में हिन्दी में साहित्य नहीं होगा वह जाति अवश्य पिछड़ रही है। वर्तमान युग प्राकृत और संस्कृत भाषाओं से अनुकूल है। जिस जाति का हिन्दी भाषा में साहित्य नहीं रचा जा रहा है वह जाति अपने ही जीवन को अपने ही लिये भार बना रही है।

पत्रकार

लेखनकला कुछ आगई, कुछ युक्ति देनी आगई,
प्रारभ करने पत्र की अभिलाष मन में छा गई।
सवाद झूठे दे रहे—ये विष-वमन हैं कर रहे,
पाताल में जड़ पतन की ये और दृढ़ हैं कर रहे ॥ ॥१६५॥

कुछ कुछ लेख लिखने का अभ्यास हो गया, कुछ युक्तियों का प्रयोग आगया, बस पत्र प्रकाशित करने की भावना पैदा होगई। एमे अयोग्य लेखक, देख लीजिये, अपने पत्र में मिथ्या सवाद रहे हैं और समाज में विष फैला रहे हैं और इस प्रकार ये समाज के पतन की जड़ को और अधिक गहरी और सुदृढ बना रहे हैं।

ये व्यक्तिगत आक्षेप करने से नहीं हैं चूकते,
टुकड़ा न कुछ मिल जाय तो ये श्वानवत हैं भूकते।
छींटें उड़ाना ही प्रमुख है प्राय इनका काम रे।
झूठी प्रशसा कर सकें या जाँय यदि कुछ दाम रे। ॥१६६॥

ऐसे अनुभवहीन एव अयोग्य पत्रसम्पादक किसी की व्यक्तिगत निन्दा करने से नहीं चूकते और जब तक श्वान की तरह इनको भी कुछ टुकड़ा न मिल जाय तब तक ये इनके पत्रों में चिल्लाते रहेंगे। निंदा, अपवाद, खण्डन और वह भी असभ्य ढग से करना इनका प्रमुख कर्म है। यदि कुछ पैसे इन्हें दे दिये जाय तो ये मिथ्या प्रशसा के भी पुस्तक बाघ सकते हैं।

प्रतिकार, मत्सर, द्वेष की जलती घरो में आग है,
वे जाति हित क्या कर सकें जिनके सदन में दाग है ॥१६६॥

ये उपदेशक महोदय चाहे व्यसनी हो, चाहे परस्त्रीगामी हो, परन्तु उपदेश करते समय तो ये सचमुच सच्चे भक्त ही प्रतीत होते हैं। इनके हृदयों में प्रतिकार भावनायें, पारस्परिक राग-द्वेष के भाव, अनल से भी प्रखर और ज्वालमुख रहते हैं। वे भला समाज, देश एव जाति का क्या कल्याण करेंगे, जिनके हृदय ही निरदाग नहीं हैं।

ऐसे अकिंचन जाति का नेतृत्व नेता कर रहे।
हर युक्ति से, हर भाँति से ये सिद्ध उल्लू कर रहे।
इनके अखाड़े भीम सेनी भूरि सख्यक लग रहे।
ये तो सहोदर पर चलाने वार अवसर तक रहे !! ॥१७०॥

ऐसे अयोग्य एव दुराचारी नेता हाय ! हमारी समाज का नेतृत्व सभाले हुये हैं। ये हर प्रकार से और हर यत्न मे अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। सर्वत्र देखिये, इनके अखाडे लग रहे हैं और ये अपने बन्धु पर प्रहार करने के लिये उचित अवसर की चिन्ता में निम्न हैं।

विद्वान् इन उपदेशकों में एक मिलता है नहीं,
ये सब अधूरे, मूर्ख हैं, इनमें न पडित है कहीं।
आचार, शिष्टाचार की तो बात ही है तीसरी,
है श्वान हर दम भूँकता, पर पूँछ कब सीधी करी ॥१७१॥

इन उपदेशक नेताओं में आपको एक भी व्यक्ति विद्वान्

नहीं मिलेगा। ये सर्प के सब अपूर्व मतिहीन हैं और नाश हैं। इनके आचरण और शिष्टाचार को देखते हुए बड़ी ग्लानि उत्पन्न होती है। वस्तुतः कुत्ता भूँकता ही रहता है, लेकिन किसी कुत्ते की पूँछ सीधी हुई हो यह आज तक किसीने न देखा और न सुना।

उपदेश करने का आहो! उद्यम करो तुम चलको
उद्यम-गाजे का छाड़ना, कपिकूदना तुम छोड़दो।
भू-कम्प आसन कर रहा, घन-गर्जना से कर रहे
जन कर्ण भेदी तालियों की गड़गड़ाहट कर रहे ॥१७२॥

कुछ इन उपदेशक और नेताओं के व्याख्यान देने के ढंग को भी तो देखिये। इनका गदहे के समान मुँह फाड़-फाड़ कर और जोर से चिल्लाना बंदर के समान आसन पर कलाँगें भर भर कर रहना, आसन (स्टेज) का कंपित होते रहना और इनके लेक्चरों पर जनता का कर्णभेदक तालियों की गड़गड़ाहट करना।

गोले उगलते श्वाँस हैं मुँह से निकलती आग है
चिनगारियाँ हैं आँख में ज्वालामुखी-सा राग है।
तन से पसीना बह रहा तन का न इनको भान है
घंटे खिसकते जा रहे, जिनका न कुछ भी ध्यान है ॥१७३॥

इनके मुँह में से अग्नि पड़ रही है श्वाँस अग्नि के गोले बर्सा रहे हैं नेत्रों में अग्निकण भर रहे हैं और इनकी वाणी में ज्वालामुखी का हृदय विदारक राग बज रहा है बदन से

पसीना ढल रहा है, इनको अपनी देह की भी शुद्धि-बुद्धि नहीं है, घंटे व्यतीत होते चले जा रहे हैं, जिनका इन्हें कुछ भी ध्यान नहीं है—ये हैं इनके व्याख्यान देते समय के रोचक दृश्य।

मेरा न है अभिप्राय—आकर्षण न होना चाहिए,
व्याख्यानदाता बस प्रथम आदर्श होना चाहिए।
अभिव्यक्त करने की कला चाहे भले भरपूर हो,
वह क्या करेगा हित किसी का त्याग जिसमे दूर हो ॥१७४॥

उक्त कथन से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आकर्षण पैदा न किया जाय। मैं आकर्षण का सर्वथा विरोध करता हूँ, यह बात नहीं। परन्तु आकर्षण से सहस्रों गुण मूल्यवान और महत्व की वस्तु है—व्याख्यानदाता का आदर्श होना। विषय समझाने की कला चाहे व्याख्यानदाता में कितनी भी क्यों न हो अगर उसका जीवन जनता की दृष्टि में पतित है, वह असयमी है, लोभी है तो उसका कोई भी कला पूर्ण व्याख्यान जनता को लाभदायक नहीं हो सकता।

संगीतज्ञ

सगीत ज्ञाता आज गायक रढियों से रह गये।
गायन सभी हा! ईश के गायन मदन के बन गये।
सुनकर उन्हे अब भावना विसुभक्ति की जगती नहीं।
कामाग्नि उठती भडक है मन आग हा! बुझती नहीं ॥१७५॥

संगीत के आचार्य भी आज वेश्याओं की भाँति संगीत कला का व्यापार करने लग गये। गायन भी ईश्वर भक्ति की भावनाओं से रहित होकर काम भावनाओं से भरे होने लग गये जिसको सुनकर आज ईश्वर की भक्तिभावनाओं के उत्पन्न होने के स्थान में कामाग्नि भड़कती है और मन के तल में प्रज्वलित अग्नि कभी भी शांत नहीं होने पाती।

गायक रिझाने ईश को अब गान हैं गाते नहीं।
वे भक्ति भावों को जगाने गान हा! गाते नहीं।
श्रीमंत जनके ईश हैं उनको रिझाना है उन्हें।
दुर्वासना मनमथ की उनकी जगाना है उन्हें॥ १७५॥

अब संगीतज्ञ ईश्वर का कीर्तन करने के लिये भक्ति की भावनाएँ पैदा करने के लिये भजन स्तवन नहीं करते हैं। आज इन संगीतज्ञों के श्रीमंत ही ईश्वर हैं और इन श्रीमंत-ईश्वर को प्रसन्न करना तथा उनकी कामेच्छा को प्रदीप्त करना ही एक मात्र उनका ध्येय है, कर्त्तव्य रह गया है।

संगीत अब बाजार है हा! शक्ति हो तो क्रय करो!
तुम गीत में गीतज्ञ माहक को रुचे वह लय भरो!
संगीत भी अब हो गये हा! वस्तु पोषक की अहो!
कविता कवीश्वर कर रहे धमुत्सुक माहक के अहो!॥१७६॥

हा! अब संगीत बाजार में विक्रय होने वाली वस्तुओं में से एक वस्तु हो गया है। पास में पैसा हो तो संगीत क्रय करो। हे भारतवासी गायको! आप भी माहकों की अभिरुचि

देख कर गीत में लय भरा करिये! हा! हंत! आज गायन उदरपूरण करने के अर्थ हो गया। महाकवि महोदय भी, देखिये गायकों की रुचि को ध्यान में रख कर कविता की रचना कर रहे हैं!

मृत को जिलाने की अहो! सगीत में जो शक्ति थी।
हा! गायकों के कण्ठ से जो फूट पड़ती भक्ति थी।
वह गायकों के पेट के हा! फेर में पड़ पच गई।
उत्सव सजाने की हमारी चीज अब वह बन गई॥ ॥१७८॥

सगीत में जो मुर्दों में प्राण फूँकने की शक्ति थी, गायकों की कल ध्वनियों में से जो ईश्वरभक्ति फूट पड़ती थी हा! वह गायकों के उदरपोषण के चिंतन में पड कर नष्ट हो गई। सगीत अब केवल हमारे उत्सव सजाने की वस्तु रह गया है।

साहित्य प्रेम

साहित्यिकों का भाव तो हा! क्यों भला होने लगा,
दो एक हो, उनसे भला हा! अर्थ क्या सरने लगा!
वे भी अगर होते कहीं शशि, सूर तो सतोष था,
जिनवर्ग कोई काल में हा! एक कोविद-कोष था!! ॥१७९॥

हमारी समाज में साहित्यिकों का अस्तित्व तो भला होने क्यों लगा? नाम मात्र के एक दो साहित्यिक व्यक्ति हो तो उनसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। वे भी अगर एक, दो ही होकर भी तुलसीदास (सूर्य्य) और सूरदास (चन्द्र) होते

तो भी हम पर्याप्त लाभ लेते । हा ! किसी समय में यह हमारा संपूर्ण समाज ही एक विद्वान् वर्ग था ।

साहित्य का आनंद हमको हाट में ही रह गया !
हा ! नव सृजन साहित्य का अब बाट में ही रह गया !
विद्वान् कोई भाग्य से यदि हाट पर आ जायगा
दुत्कार के वह साथ में दो चाट मुँह पर खायगा ।।। ।।१८७।।

अब साहित्य का आनंद हमको दुकानदारी में ही मिलने लग गया है । बाटों (तोले) की व्यवस्था भिन्न भिन्न प्रकार से करने में हमको वह आनंद आता है जो एक साहित्यिक को भिन्न नवीन और नवीन शैली की साहित्य रचना में आता है तो हम उसका निरादर तो करते हैं ही कभी कभी उसकी मुँह पर दो चाट मारकर पूजा कर देते हैं ।

लिखना हमें निज नाम भी पूरा अभी आता नहीं !
साहित्य में फिर नाम करना किस तरह आता कहीं !
ऐसी निरक्षर जाति में विद्वान् फिर कैसे बढ़े !
साहित्य दुर्गमगढ़ पर यह जाति हा ! कैसे चढ़े ! ।।१८८।।

इसी का फल समझिये कि आज हम लोगों में से अधिकांश को अपना नाम भी शुद्ध लिखना नहीं आता । तब फिर हम साहित्य के क्षेत्र में पद प्राप्त कैसे कर सकते हैं और पद प्राप्त करना जाने भी दो कैसे जाय ? ऐसी निरक्षर जाति में विद्वानों की संख्या कैसे बढ़ सकती है और ऐसी निरक्षर जाति

साहित्य के महान् दुर्गम पर्वत पर कैसे आरोहण कर सकती है।

साहित्य जीवन गीत है, साहित्य जीवन प्राण है,
साहित्य युग का चित्र है, साहित्य युग का त्राण है,
साहित्य ही सर्वस्व है, साहित्य सहचर इष्ट है,
साहित्य जिसका है नहीं, जीवन उसीका क्लिष्ट है ॥१८२॥

साहित्य ही समाज के जीवन का आनद है, प्राण है, युग का चित्र है और दुर्युग में रक्षक है, समाज सर्वस्व है और अभिन्न कल्याणकारी सगी है। जिस समाज एव जाति का साहित्य नहीं है, उस समाज एव जाति का जीवन बडा दु:खी है।

साहित्य जैसी वस्तु पर जिसकी उपेक्षा दृष्टि हो,
ऐसा लगे-उस पर हुई अब काल की शुभ दृष्टि हो।
साहित्य जैसी चीज का भी क्या अनादर योग्य है ?
हे बन्धुओ! अब क्या कहूँ? मिलता न अक्षर योग्य है !!! ॥१८३॥

साहित्य जैसी वस्तु की अवहेलना करना क्या किसी भी दृष्टि से समुचित समझी जा सकती है। परन्तु फिर भी अगर साहित्य की अवहेलना होती प्रतीत होती हो तो यह समझ लेना चाहिए की क्रूर काल महाराज की अब उस साहित्य की अपेक्षा करने वाली जाति एव समाज पर कृपा दृष्टि हुई है। साहित्य जैसी वस्तु का भी क्या कभी अपमान करना योग्य है ? हे भ्राताओ! आपको अब क्या कहूँ, मुझको कोई योग्य शब्द भी नहीं मिलता कि जिसके द्वारा मैं आपको संबोधन करूँ।

साहित्य

अब आधुनिक साहित्य पर भी ध्यान करना चाहिए
साहित्य युग का चित्र है—यह मनन करना चाहिए।
साहित्य सरवर था कभी शुचि भव्य भावों से भरा;
हा! आज वह अश्लील है अर्धनग्न भावों से भरा ॥१८५॥

इस युग में रचे जाने वाले साहित्य पर भी तो कुछ विचार करना चाहिए। साहित्य अपने युग का एक विराट् चित्र समझा जाता है। अतः इस युग के साहित्य की समालोचना करना आवश्यक है। किसी समय में साहित्य का सरोवर सुन्दर सुन्दर कमल-से निर्मल भावों एवं भावनाओं से परिपूर्ण होकर सुशोभित था। इस युग में वही साहित्य अर्धनग्न, मलिन भावों एवं कल्पनाओं को धारण कर अश्लील हो रहा है। जैसे कोई आदर्श एवं पवित्रात्मा महापुरुष दुष्ट एवं क्षुद्र प्रकृति वालों के करों से व्याहत होकर अनादृत होकर पड़ा हो।

युग जाति का साहित्य ही बस एक सच्चा चित्र है
जिसका न हो साहित्य वह होती अकिंचन मित्र! है।
साहित्य जीवन-मन्त्र है साहित्य जीवन प्राण है
साहित्य ही सर्वस्व है उत्थान की सोपान है ॥१८६॥

किसी युग एवं जाति का अगर इस पृथ्वी मण्डल पर कोई विराट और सत्य चित्र है तो वह साहित्य ही है। जिस जाति का साहित्य नहीं वह जाति अनाथ है, मृतक है, अकिंचन हीन है। जाति के जीवन का मूल मंत्र एवं प्राण साहित्य है।

जाति का सर्वस्व एक मात्र साहित्य है। जाति के उत्थान की पदद्वर्द्धी साहित्य ही है।

साहित्य में नव वृद्धि तो होती न कुछ भी दीखती,
कुल भ्रष्ट करने की उसे अभिलाष अविरल दीखती।
कुछ इधर से, कुछ उधर से हा! अपचयन हैं कर रहे—
विद्वान, हा! निज नाम से पुस्तक प्रकाशित कर रहे ॥१८६॥

नव नवीन एव मौलिक रचनाओं से तो साहित्य की वृद्धि नहीं होती दिखाई पड़ती है। केवल उसे भ्रष्ट एव पतित करने की ही चेष्टायें दृष्टि में आती हैं। इस युग में ऐसे विद्वान् हैं जो कुछ इधर से लेकर, कुछ उधर से लेकर ग्रन्थ रचते हैं और अपने नाम से उन ग्रन्थों को प्रकाशित करते हैं।

साहित्य मौलिक का कौतुक, कबड्डी खेल है;
निर्बोध बच्चों का तथा यह धर पकड का खेल है।
नहिं शब्द वैभव श्लिष्ट है, नहिं भाव रोचक है वहाँ,
रस, अर्थ का पत्ता कहीं मिलता न हमको है वहाँ ॥१८७॥

जितना कष्ट छोटे २ लड़कों को कबड्डी आदि कौतुकों एव खेलों के खेलने में पड़ता है तथा आँख-मिचावन के खेल में जितना श्रम पड़ता है, उतने कष्ट एव श्रम से ही आज के साहित्य का सहज एव सरलतया निर्माण हो रहा है। शब्दों की सुन्दरता एवं भावों की पुष्टतामयी रोचकता आज साहित्य में है ही नहीं। रस एवं शब्दार्थ का भी पूरा पूरा परिचय नहीं हो पाता।
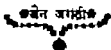
मस्तिष्क होते थे हमारे भक्तिभावों से भरे।
चरित्र दर्शन ज्ञान के निर्झर सदा जिससे झरे।
त्यागी विरागी धर्मध्वज निष्कलंक सदा आदर्श थे।
अध्यात्म तृष्णा के लिये रसस्रोत व उत्कर्ष थे।। ।।१८८।।

हमारे मस्तिष्क अध्यात्मरूपी भक्ति की भावनाओं से परिपूर्ण रहते थे। हमारे ऐसे भक्ति भावों से भरे मस्तिष्कों से ही आज तक ज्ञान दर्शन एवं चरित्र जैसे महोत्तम विषयों का ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इन मस्तिष्कों के लिये विचारणीय मननीय अविस्मरणीय आदर्श एक मात्र त्यागी विरागी एवं महान् धर्मात्मा पुरुष ही थे जो अध्यात्म पिपासा को शान्त करने के लिये एक परम पावनी पीयूष धारा थे।

शृंगार के निर्झर प्रवाहित आज पर ये कर रहे।
संसार में सौन्दर्य का अश्लील चित्रण कर रहे।
इन मस्तकों को देख कर हमको निराशा हो रही।
ज्ञानेन्द्रियों का लोप होगा स्पष्ट क्या ओ! नहीं!।।१८९।।

ज्ञान धारा प्रवाहित करने वाले थे ही मस्तिष्क आज शृंगार की मधुर गंगा बहा रहे हैं। संसार में पावन सौन्दर्य का अश्लील चित्रण कर यों काम वासनाओं की जागृति और वृद्धि कर रहे हैं। इन मस्तिष्कों के ये दुष्कर्म अवलोक कर हमको निराशा हो रही है। हे परमात्मन्! क्या फिर से ये मस्तिष्क विचार रत्नों से भरे-पूरे न होंगे।

हा! भूरि संख्यक मत पुस्तक रात दिन हैं छप रहे। —
इनके लिये ही आज कितने ज्ञान वाले खप रहे।

व्यय द्रव्य अगणित हो रहा, पर लाभ कौड़ी का नहीं।
मैले, अरोचक भाव हैं, है ग्रन्थ जोड़ी का नहीं। ॥१९०॥

वैसे ग्रन्थ एवं पुस्तकें पर्याप्त सख्या में रात दिन प्रकाशित हो रहे हैं। इनके प्रकाशन के लिये ही कितने ही छापेखाने चल रहे हैं। अपरिमित धन इनके प्रकाशन में इस प्रकार व्यय तो हो रहा है, परन्तु लाभ एक कौड़ी का भी नहीं। ग्रन्थ के भाव अपवित्र ही एवं अरोचक हैं और काव्य की दृष्टि से तो वह सर्वथा अयोग्य ग्रन्थ हैं ही।

हो चोर, लम्पट, धृष्ट, वंचक, मूर्ख, खर, मार्गोन्मुखी,
कामी, कुचाली, द्रोहप्रिय औ सर्वथा धर्मोन्मुखी।
पर इन नरों के आज जीवन हैं प्रकाशित हो रहे,
साहित्य में हा। हों अपावन ग्रन्थ संमिल हो रहे॥ ॥१९१॥

ऐसे मनुष्यों के आज जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहे हैं जो चोर हैं, लम्पटी हैं, शुद्रप्रकृति हैं, ठग हैं, मूर्ख हैं, अपढ़ हैं, कुपथिक हैं, व्यभिचारी हैं, व्यसनी हैं, द्रोही हैं और सर्व प्रकार से धर्म के विरोधी हैं। बड़ा दुःख है, ऐसे शुद्रो के जीवन चरित्रों से परम पावन साहित्य का भण्डार बढाया जा रहा है।

आख्यायिकोपन्यास हम भी अन्य सम हैं रच रहे,
लिखना न आता है हमें; प्रतियोग पर हैं कर रहे।
यों दुषित संस्कृति कर रहे फैला दुषित वातावरण,
हम कामपूजन कर रहे रतिभाव का कर जागरण॥ ॥१९२॥
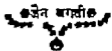
अन्य समाज के साहित्यिकों के समान हम भी सामाजिक कहानियाँ एवं उपन्यास रच रहे हैं। परन्तु वस्तुतः हम को कहानियाँ और उपन्यासों की रचना करना नहीं आती है और मात्र प्रतियोगिता के भावों से प्रेरित होकर ऐसा कर के कुत्सित कहानियों एवं उपन्यासों की रचना से वातावरण को विकृत कर संस्कृति को बिगाड़ रहे हैं। शृंगारिक भावों को जगा कर हम मात्र मदनदेव की आराधना कर रहे हैं

'रूपका कृशांगी सुन्दरी रतिरूपसी मन-मोहिनी
प्रिय-प्रेयसी सुर भामिनी अभिसारिका जग-मोहिनी।
कवि, लेखकों की ये सभी उल्लेखनीया नायका
फिर क्यों न यह कृति आपकी पथभ्रष्ट हो कवि गायका॥१६३॥

आज के कवियों के ग्रन्थ एवं काव्यों की चरित्रनायिका ऐसी स्त्रियाँ हैं जो सर्वथा सर्वांशतः पतिता हैं पति ने जिन्हें परित्यक्ता कर दी है जो वासनाओं को जागृत करने के लिये सचमुच सुन्दरी हैं आचरण में जो रति की होड़ करती हैं मन हरण करने में जो परम चतुरा हैं जिनके प्रति हर एक का प्रेम रहना रहता है, वेश्यावृत्ति करती हैं, परपुरुष सेविका हैं जन साधारण में जिनका बुरा व्यवहार है—ऐसी नायिकायें आज कवि एवं लेखकों के निकट वर्णनीया हैं फिर कवि एवं लेखक! आपकी कृतियों को पढ़ कर सुकोमल चित्ता अल्पवयांगी सुकुमारियें कुत्सित प्रभावों से प्रभावान्वित होकर पतिता क्यों न होवें।

ये ग्रंथ अब इस काल में साहित्य के मुख-अंश हैं।
निःकृष्ट नाटक, रास, चपू हाय ! अब सर्वांश हैं।
उल्लेख कर रतिरूप का कवि काम रस घतला रहे।
कामी जनों के काम को हा ! रात दिन भड़का रहे ॥१६४॥

ऐसे ग्रन्थ जिनकी चरित्रनायिकायें ऊपर वर्णिता स्त्रियाँ हैं आधुनिक साहित्य में प्रधान स्थान रखते हैं और शेष सर्व रिक्तस्थानों पर निर्विवाद रूप से पूर्णतया प्रतिष्ठित हैं निःकृष्ट नाटक, रास, चपू ; कविगण इस प्रकार सुन्दरियों का मोहक ढग से चित्रण कर कामरस को प्रवाहित करने में संलग्न हैं, कामीपुरुषों की कामवासनाओं को उद्दीप्त कर हैं।

हा ! आधुनिक साहित्य में नहिं शील वर्णन पायगा,
कुल्टा, कुचाली नारि का अख्यान केवल पायगा।
पढ़कर जिन्हें हम गिर रहे, हैं गिर रहीं सुकुमारियाँ,
हा ! जल-पवन जैसा मिले, वैसी खिलेंगी क्यारियाँ ॥१६५॥

इस युग में रच जाने वाले साहित्य में ऐसे ग्रन्थ नहीं मिलेंगे जिनमें शील, शिष्टाचार पर कुछ लिखा गया हो। कुल छलभरी एवं पुंश्चली स्त्रियों के आख्यान ही उन ग्रन्थों में मिलेंगे। जिनको पढकर हम और हमारी सुकुमार बहिनें दोनों ही गिर रहे हैं। जैसा अच्छा या बुरा जलवायु प्राप्त होगा वैसी ही कृषि की क्यारियों का अच्छा-बुरा विकाश होगा !

आता न अक्षर एक है, तुकबंध करना जानते,
ग्रामीण रचना का सृजन साहित्य रचना मानते।

प्राचीन आगम शास्त्र जो इनके लिये ना चीज हैं;
प्रक्षिप्त नभ में पाठको ! होता न पुष्पित बीज है ॥१६८॥

आधुनिक लेखक गण अब आध्यात्मिक एवं सुविचार देने वाले विषयों पर लेख नहीं लिखते और न उनके लेखों में संकट में धैर्यच्युत न होने के और आदर्श पर अडिग रहने के ही वर्णन होते हैं। इन लेखकों के निकट प्राचीन आगम एवं धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय मनन और अपने पाठकों के समक्ष इन धर्मग्रन्थों का रहस्योद्घाटन, महत्त्वप्रदर्शन अरुचिकर हैं। धर्म शिक्षा ही एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के हृदय को सुविचारों की कृषि के योग्य बनाती है। इन कवि एवं लेखकों के धर्मशिक्षाहीन विषय ठीक वैसे पल्लवित एवं फलित होना तो दूर रहा अङ्कुरित भी नहीं होते जैसे आकाश में फेंका हुआ बीज कभी भी अङ्कुरित नहीं होता है।

प्रतिकार संकट का नहीं करना सिखाते हैं कहीं,
जब तक न हो पूरा पतन विश्राम इनको है नहीं।
कवि लेखको ! तुम धन्य हो, हो कम अच्छा कर रहे,
अवगुण सिखाते, पतित करते, च्युत प्रतल में कर रहे ॥१६९॥

आधुनिक कवि एवं लेखक संकटों का निराकरण (नाश) करना नहीं सिखाते बल्कि जब तक संकटस्थ मानव का पूर्ण पतन न हो जाय तब तक उसको ये धैर्यस्खलित, कायर बनाते हुये न हिचकेंगे, न रुकेंगे। हे कवि गण ! लेखकगण ! आप धन्य हैं। अपनी प्रतिभा एवं कलम का अच्छा प्रयोग कर रहे हैं। आप अवगुणों को सिखाते हैं, पतित करते हैं और फिर
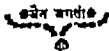
गिरते को ऐसा धक्का देते हैं कि कभी उसे उठने को या चलक जाने को भी स्थान न रह जाय तब आप का कविकर्म सफल होना समझा जाता है ।।

आदर्श नर औ नारि के जीवन लिखे जाते नहीं
आख्यायिकोपन्यास के ये अब विषय होते नहीं !
नहिं शौर्य के नहिं धर्म के इनको पढ़ाते पाठ हैं
हा ! आधुनिक साहित्य के तो और ही कुछ ठाठ हैं ।।२०।।

आदर्श नर एवं पुरुषों के प्रभावोत्पादक जीवन अब ये नहीं लिखते हैं। और न ऐसे पुरुषों के चरित्र अब कहानी एवं उपन्यास के विषय समझे जाते हैं। ये लेखकगण अब इनको वीरता एवं धर्म के पाठ नहीं पढ़ाते हैं। हा ! वर्तमान साहित्य का ठाठबाट कुछ और ही विचित्र प्रकार का है जो मानव समाज का अनिष्टकर एवं अमंगलकारी है।

शुचि दान संयम शीलके तप ज्ञान अथवा चार के—
व्याख्यान लेखक कवि करें जो आज धर्माचार के
होगा न विक्रय ग्रन्थ का इनमें न रस इनको कहीं !
आनन्द जो रतिरास में वैराग्य में इनको नहीं ।। ।२१।।

इस काल में अगर लेखक एवं कवि दान संयम शील तप ज्ञान ब्रह्मचर्य और और धर्माचारों के विषयों पर ग्रन्थ रचने लग तो उनके ऐसे ग्रन्थों की बिक्री भी नहीं होगी और मुख्य बात यह भी है कि ऐसे ग्रन्थों की रचना में इनकी स्वयं की रुचि भी नहीं लगती। जो आनन्द जो रतिविषय के वर्णन करने में आता है वह वैराग्य के वर्णन में इनको नहीं मिलता है।
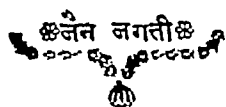
सभायें

इतनी सभायें हैं हमारी और की जितनी नहीं,
ज्यों ज्यों कलह बढ़ते गये, त्यों-त्यों सदा खुलती रहीं।
लड़ना, जहाँ भिड़ना पड़े, अनिवार्य ये होती वहीं,
करने सुधारा जाति का का खोली न हैं जाती कहीं ॥॥२०२॥

हमारी समाज में सभायें इतनी सख्या में हैं कि किसी अन्य समाज में इतनी सभाय नहीं होंगी। ज्यों ज्यों हमारी समाज में पारस्परिक कलह बढते गये, त्यों-त्यों ये भी खोली जाती रहीं। सभाओं का खुलना वहीं अनिवार्य हो जाता है जहाँ समाज के दलों में मुठभेड़ व झगड़े होने की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। जाति एव समाज का उद्धार एव सुधार करने की दृष्टि से ये सभायें प्राय' नहीं खोली जाती हैं।

इतिहास लेकर आप कोई सभा का देखलें,
उनके किये में जो यदि अणुमात्र हित भी लेखलें।
तो जो कहें, वैसा करूँ, मुण्डन हमारा हो गया,
हा! गाँठका तो धन गया, घर में बखेड़ा होगया ॥२०३॥

आप किसी भी सभा का इतिहास आदि से आज तक का अवलोकन करिये, आपको उसमें ऐसा अणुमात्र भी कार्य नहीं मिलेगा जो सर्व समाज की हित की दृष्टि से किया गया हो। अगर मिल जाय तो यह शर्त रही कि आप जो कहेंगे मैं वह सेवा करूँगा! हमारा इन सभाओं ने सर्वनाश कर डाला। इनके उद्घाटन, पोषण, जीवन मरण में अगणित द्रव्य
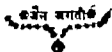
भी व्यय हुआ और वह सब व्यर्थ गया और फिर ऊपर से कलह भी सुदृढ़तम हो गया।

ज्यों अधमरा तलवार का फिर सह न सकता वार है
ठोकर लगे का फिर लगे धक्का—पतन दुश्वार है।
जितनी सभायें खुल रहीं—प्रतिरोध-गह्वर-गाढ़ हैं।
हम नेत्रहीनों के लिये ये हाय ! गहरे गाढ़ हैं!! ।।२३।।

अगर अधमूए पर फिर तलवार का प्रहार किया जाय तो वह उसे सहन नहीं कर सकेगा। ठोकर खाते हुए को अगर पीछे से धक्का दिया जाय तो वह सम्भल नहीं सकेगा—प्रथम के लिये मृत्यु और द्वितीय पतन अनिवार्य्य रूप से प्राप्त होगा। ठीक इसी प्रकार से जितनी भी सभायें खुली हुई हैं अथवा और नवीन खुल रही हैं सब की सब धक्का देने की भावनाओं से प्लावित हैं और प्रतिवार करने के समुचित अति अगाध गह्वरस्थल हैं कि गिरने पर फिर वहाँ से पुनः बाहर निकलना अति असम्भव है। सचमुच हम अज्ञानी एवं अल्पमती और अविवेकी अन्धाणुओं के लिये ये सभायें गहरे गड्ढे हैं।

अपना सुधारा है नहीं स्तव सुधारा हाथ में।
अपने जिसे हो एक के वो हैं उसी के साथ में।
प्रस्ताव होना हो जिसे अथवा जिसे पद चाहिए।
मिल जायगी सुविधा सभी उसको यहाँ जो चाहिए ।।२४।।

सचमुच इनका ध्येय समाज-सुधार का नहीं है। इन्हें

सभाओं के हाथों में सदा नङ्गी तलवार है। जहाँ एक के दो टुकडे करने हो वहाँ इनका सहयोग सहज प्राप्य है। किसी व्यक्ति को ख्याति अथवा धन चाहिए तो इन दोनो प्राप्ति के लिये उस व्यक्ति को यहाँ हर प्रकार सुविधा मिलेगी। अर्थात् ये सभाय फूट फैलाती हैं और गुण्डे इनकी आड में धन और मिथ्या नाम प्राप्त करते हैं।

मण्डल

अब मण्डलों का काम तो भोजन कराना रह गया,
कर्तव्य सेवा, धर्म सब जूते उठाना रह गया।
सब जाति में हो संगठन ये ध्येय इनके हैं कहाँ,
है ब्रह्मव्रत जिनमें नहीं, उनसे भला हित है कहाँ? ॥२०६॥

अब मण्डलों का कर्तव्य मेले, महोत्सवों में भोजन की व्यवस्था करना तथा जूतों की संभाल रखना मात्र रह गया है और मण्डल इसी को सेवा एवं धर्म का परिपालन समझते हैं। जाति में संगठन हो यह अब इन मण्डलों का ध्येय नहीं रहा है। जिन मण्डलों में वस्तुतः महाव्रत का परिपालन नहीं होता है उन मण्डलों से क्या कल्याण की आशा की जा सकती है?

स्त्रीजाति व उसकी दुर्दशा

हे मातृ! भगिनी! अम्बिके! जगदम्बिके! विश्वेश्वरी!
होती न जानी थी अहो! यह अवदशा मातेश्वरी,

मेरी मही ! तुम हो गई तुम अब रसक की चीज हो।
इस अवदशा की आप तुम मेरी समझ में बीज हो ॥२०७॥

हे मात ! तू ही वह्न है सरस्वती है पार्वती है लक्ष्मी है। हे जगद्वंदनीये माहेश्वरी ! तेरी यह अवदशा हो जायगी यह कभी भी नहीं आशा था। अहो आज तुम दासी हो भोग की एक वस्तु हो। मेरी दृष्टि में यह सब तुम्हारा स्वयं का दोष है जो कि आज तुम इतनी पतित हो।

तुम में न व पति-भाव हैं तुम में न श्री के कम हैं।
मूर्खा सदा रहना तुम्हारा हो गया अब बस है!
गृह स्वामिनी गृह देवियाँ होने न जैसी आज हो!
कुलनाशिनी कुलकलंकिनी कुलमलिना तुम आज हो ॥२०८॥

तुम अब वे आदर्श पतिव्रता एवं सद्गुण सम्पन्ना भी नहीं रही हो। अमर अमर मुखा रहना तो तुम्हारा एक मात्र ध्येय सा बन गया है। तुमको जो पहिले घर की लक्ष्मी अथवा प्रकाश समझा जाता था अब तुम उस पद के योग्य नहीं रह गई हो वरन् तुम आज कुल में कलह कारिणी कुल का उच्छेद करने वाली एवं कुल का सत्यानाश करन में अनुरक्ता हो।

हा! आज तुम से वंश की शोभा न बढ़ती है कहीं।
नर-रत्न तुम अब दे सको—वह शक्ति तुम म है नहीं!
वंध्या सभी तुम हो गई—यह बात भी जँचती नहीं
सन्तान की उत्पत्ति में लज्जित करो धरती—सही ॥२०९॥

हे माताओ! अब तुम्हारे वंश एवं कुल की शोभा में वृद्धि

नहीं होती है। तुम में अब पुत्ररत्न देने की भी सामर्थ्य नहीं रह गई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अब तुम सब बाँझ हो गई हो और यह किसी प्रकार भी सभव नहीं क्योंकि अब तो तुम सतान इतनी उत्पन्न करती हो कि सर्पिणी भी इतनी सतान क्या पैदा करेगी।

शीला, सुशीला, सुन्दरा मन की न अब तुम रह गईं।
हा साध्वियें तो मर गईं, तुम कर्कशायें रह गईं।
उजडे भवन को आज तुम प्रासाद कर सकती नहीं।
टूटे हुये तुम प्रेम बधन जोड़ फिर सकती नहीं॥ ॥२१०॥

अब तुम पूर्व जैसी हृदय की कोमला, सलज्जा एव विनीता नहीं हो। हा! आदर्श स्त्रियाँ तो मर गई और तुम कलह कारिणी स्त्रियें बच गई हो। नष्टप्राय हुये भवनों को वैभव-शाली प्रसाद बनाने की तुम में जो सामर्थ्य थी वह सामर्थ्य अब तुम में नहीं है और न तुममें टूटे हुये प्रेम के बधनों को पुन: जोड़ने की ही शक्ति है।

लक्ष्मी कहाने योग्य री! अब हो नहीं तुम रह गई।
सपन्न करने की तुम्हारी शक्तियें सब बह गईं।
चिप-फूट के बोना तुम्हारा बील का अब काम है।
वामा तुम्हें जग कह रहा—वामा उचित ही नाम है॥२११॥

अब तुम लक्ष्मी कही जाने के योग्य नहीं हो क्यों? लक्ष्मी के समान अब तुम्हारे में गुण नहीं हैं। गृह को सर्व प्रकार से सम्पन्न करने की जो तुम्हारे में शक्तियें थीं, वे सब बह गई हैं।

अब तो विदेशी फूट के बीज बोना तुम्हारा प्रधान कर्म है। संसार तुमको वामा (उल्टा) कह कर पुकारता है वस्तुतः तुम्हारा वामा नाम समुचित ही है क्योंकि अब तुम्हारे सब ही कर्म उल्टे हैं।

निर्बुद्धिपन को नारिहठ नारी! तुम्हारा पेशा है।
अब यह वेश्या-सा तुम्हारा आज नारी! वेशा है।
स्त्रीत्व या मातृत्व या लज्जा न तुम में दीखती।
मूर्खा पराधी कुलटा सब भाँति से हो दीखती॥ ॥२१२॥

हे नारी! आपका दुराग्रह और निर्बुद्धिपना तो अवांछित नीच ही है। साथ ही वेश्या के सदृश आपका यह वेष-शृंगार भी देखने योग्य है। वस्तुतः अब वह स्त्री का कुलवत्ता, चतुराईपन लज्जा आप में नहीं दिखाई पड़ती। सत्य कहूँ तो आप अब सदा मूर्खा कुलटा और पराधी स्त्री-सी ही ज्ञात होती हैं।

तुम शील भूषण भूल कर हा! मोह भूषण में अड़ो।
प्राणेश अपना छोड़कर तुम स्नेह पूज्य से करो।
धिक्कार तुमको आज है तुम डूब पानी में मरो।
है जल रही घर में अनल तुम क्यों न जल उसमें मरो॥२१३॥

तुम पतिव्रता धर्म को तिलाञ्जली देकर अब आभूषणों पर रीझती हो। अपने प्राणनाथ को परित्याग कर अन्य पुरुष की इच्छा रखती हो। तुम्हें कोटि कोटि धिक्कार है। इस जीवित रहने की अपेक्षा तुम्हारे लिए पानी में डूब मरना अच्छा है। तुम्हारे घर में ही अग्नि जल रही है उसी में जल कर इस कलंकित जीवन का अंत क्यों नहीं कर देती हो।

संतान-पोषण भी तुम्हें करना नहिक आता नहीं।
तब मातृ तुमको क्यों कहें, तुम शत्रु हो माता नहीं।
हे नाथ! माता इस तरह मातृत्व यदि खोने लगे।
संतान बोलो किस तरह गुणवान फिर होने लगे ॥२१४॥

हे स्त्रियो! आपको अपनी संतान का पालन-पोषण करना भी जब भली प्रकार नहीं आता है तो फिर आपको माता क्यों कहा जाय। आप शत्रु हैं माता नहीं। हे परमात्मन्! अगर मातायें इस प्रकार मातृत्व खोने लगेंगी तो फिर किस प्रकार संतान गुणवान बन सकेगी।

नर का नारी पर अत्याचार।

नर! नारियों के इस पतन के आप जिम्मेवार हो,
तुम कोमलांगी नारियों पर हाय! पर्वत-भार हो।
अधिकार इन पर कर लिया हा! स्वत्व इनका हर लिया।
रसचार करने के लिये दीक्षित उन्हें है कर लिया ॥ २१५ ॥

हे पुरुषों! स्त्रियों के इस महा पतन के उत्तरदायी आप हैं। आप लोग इन सुकुमार अंगनाओं पर गिरि के समान भार हैं। आपने इन को आधीन कर इनका सर्वस्व हरण कर लिया। विषय भोग करने के लिये ही आपने उन्हें विवाह की दीक्षा दी है।

रमणी कहीं हैं महल की, पर्दानशीना हैं कहीं।
हैं पालती गो मय कहीं, व्यंजन बनाती हैं कहीं।

व्यपगीत इनका दीन-सा इस भाँति जीवन हो रहा।
मल मूत्र धोना रात दिन कर्तव्य इनका हो रहा ॥ २१५ ॥

इन स्त्रियों की पराधीनता एवं दीनावस्था की भी कहीं सीमा है। कहीं ये आवास में उपभोग की वस्तु हैं तो कहीं ये बाहरी जगत की दृष्टि से बचाकर पर्दे में ही रक्खी जाती हैं, कहीं ये गली-वीथियों में गोबर उठाती फिरती हैं तो भोजनादि बनाने का कार्य करती हैं। इस प्रकार इनका समस्त जीवन व्यतीत हो रहा है। पुत्र एवं पुत्रियों का गुरुजनों का मल मूत्र धोना ही इनका चौबीसों घण्टों का कर्तव्य हो रहा।

कहता रही अर्धांगिनी पर हा! न पद सम मान है!
दुत्कार उनके मारना तो हा! उन्हें वरदान है!
कुल्टा कुभार्या राँड रक्खा नाम इनका पड़ रहा!
सम मान था नर के कभी यों मान इनका घट रहा!! ॥२१६॥

स्त्री कहलाने को तो अर्धांगिनी कही जाती है, परन्तु हाय! इनका इस पद के अनुसार मान कहाँ है। धिक्कारना उन्हें मारना तो इन बिचारी अबलाओं को वरदान हो गये हैं। कुल्टा कुभार्या, राँड-रंडी आदि अपशब्दों से इन्हें संबोधित किया जाता है। हाय! जिनका मान कभी पुरुषों के बराबर समझा गया था एवं रक्खा गया था आज उन स्त्रियों का मान इस प्रकार घट रहा है अर्थात् इस प्रकार पददलित हो रहा है।

श्रुति भाव इनका काटना! इनको दवा से दागना!
देना न भोजन मास भर! पतहीन घर से काढ़ना!

माता पिता को बोलना अपशब्द इनके हाय ! रे !
आसान हैं वरदान ये, अब नारि हैं असहाय रे !! ॥२१८॥

स्त्रियों का नाक, कान काटना, गर्म गर्म शलाकाओं से उनकी देह को दागना, उनको माह माह तक भोजन न देना, घर से वस्त्रहीन करके उनको निकलना और उनके माता-पिता को अपशब्द बोलना पुरुषों के लिये एक अति साधारण बात है। हाय ! स्त्री अब सब प्रकार से असहाया है, दीना है।

सेवन परायी नारि का भी हा ! हमारा क्षम्य है।
पर परपुरुष का दर्श भी उनका न होता क्षम्य है।
सम्मान नारी जाति के जिस जाति में होते नहीं।
उस जाति के हा ! शुभ दिवस आये, आवेगे नहीं ॥२१९॥

हम तो परस्त्रीगमन करें और हमारा वह भी क्षम्य है। अबला स्त्री अगर किसी भद्रपुरुष के दर्शन मात्र भी करलें तो यह भी उसका अक्षम्य अपराध हो जाता है। जिस जाति में स्त्रीवर्ग का मान नहीं है, उस जाति का भाग्योदय नहीं हुआ है और नहीं होगा।

नर क्या सुता के जन्म को दुर्भाग्य फल कहते नहीं ?
उनको पढ़ाने के लिये नर यत्न क्या करते कहीं ?
होकर पिता नर सुत, सुता में भेद कैसे जानते ?
उनके पतन में दोष नर निज को न कैसे मानते ? ॥२२२॥

पुत्री के जन्म पर पुरुष अपना दुर्भाग्योदय समझते हैं और पुत्रियों को पढ़ाने की चेष्टा भी पुरुष तनिक मात्र भी नहीं

करते। हाय! पुरुष, पिता हो कर भी पुत्री और पुत्र में भेद समझते हैं फिर सोचिये, पुरुष स्त्री जाति की अवनति में अपना दोष मानते हुवे क्यों हिचकते हैं।

व्यापार

कौशल कला व्यापार की अब न न बात हाय ! हैं।
मस्तिष्क में हम क्या करें उठती न बातें हाय ! हैं।
हा ! देश निर्धन हो रहा हा ! जाति निर्धन हो रही !
सन्तान पाकर हाय ! हम-सी मातृभूमी रो रही !! ॥१२२॥

अब पूर्व जैसा हमारा व्यापार, कला-कौशल समुन्नत नहीं हैं। हम भी क्या करें मस्तिष्क में भी वैसे उपाय उठते ही नहीं हैं। हा! देश और जाति दोनों कंगाल दरिद्र बनते जा रहे हैं। यह हमारी जन्मभूमि हम जैसी संतान को प्राप्त कर (अपने भाग्य को) रो रही है।

अब तो न जगडू शाह भी नु म्मक जिनदत्त सेठ हैं !
मक्कार साहूकार हैं, पर न न बाहर पेठ है।
व्यापार भारत का कभी था जगत भर फैला हुआ।
तुम देखलो हा ! आज वह व्यापार गलियों का हुआ ॥१२३॥

अब श्रेष्ठी जिनदत्त मु म्मक महता तथा जगडूशाह नहीं रहे। इस युग के श्रेष्ठी (साहूकार) प्रथम गणना के धूर्त हैं जिनका कहीं भी विश्वास नहीं है। एक समय था जब भारतवर्ष का व्यापार समस्त संसार में फैला हुआ था। आज देखिये वही भारत गली-कूचों में व्यापार करने योग्य रह गया है।

व्यापार मुक्ता, रत्न का अब स्वप्न की-सी बात है!
चूना-कली में भी नहीं जमती हमारी बात है।
बदला जमाना हाय! या बदले हुये हम आप हैं!
हम पर भयंकर काल की गहरी लगी मुख छाप है ॥२२३॥

मुक्ता, माणिकों का व्यापार करना हमारे लिये अब स्वप्न की बातें हैं। अधिक तो क्या, अब चूना-कली का भाव करते समय भी हम हिचकाते हैं। समय ही परिवर्तित हो गया या हमारी ही कायापलट हो गई या हमारे मुखों पर कृतान्त की मुद्रा गहरी लग गई।

व्यापार में थे अग्रणी हा! आज पीछे भी नहीं।
थे विश्वपोषक वैश्य हम, अब पेट की पटती कहीं।
व्यापार कौडी का हुआ, कौड़ी बन हम साथ में।
अब तेल, मिर्चे रह गई, लकड़ी हमारे हाथमें ॥२२४॥

व्यापारिक क्षेत्र में जहाँ हम सब से प्रधान रहते थे वहाँ अब हमारी गणना सब से पिछडे हुओं में भी तो नहीं रही! एक समय था जब हम विश्व भर का भरण-पोषण करने वाले वैश्य कहलाते थे, आज अपने ही पेट भरने के लाले पड़ रहे हैं। व्यापार भी नष्ट हो गया और साथ में हम भी विनष्ट हो गये। अब हम वैश्यों के करों में तकड़ी है और हम तेल-मिर्च तोलने योग्य रह गये हैं।

था सत्यमय व्यापार, शाहूकार हम थे एक दिन!
अब हा! हमारा रह गया है झूठ में व्यापार घिन!

२१

हमको हमारे धर्म से भी झूठ प्रियतर होगया।
अब तो कहें क्या झूठ तो हा! स्नायु तन का हो गया॥२२४॥

एक युग था कि हम सत्यव्रती व्यापारी थे और हमारा व्यापार सत्यमय था परन्तु लज्जा की बात है कि आज हम बिना झूठ के व्यापार कर ही नहीं सकते हैं। यह कितने बड़े दुःख की बात है कि आज हमको झूठ धर्म से भी प्रियतम लगता है। आखिर क्या कहें! अब तो झूठ हमारी देह की प्राणवायु वाहक नाड़ी है जिसका अवरोध हो जाने पर हम एक क्षण भी व्यापार जग में जीवित नहीं रह सकते।

कर झूठ-सच्चा हाय! हम निज बंधुओं को लूटते!
धन-रक्त को उनके निरंतर जोंक सम कर चूँसते!
वंचक, प्रपंची धूर्त अब हमको सभी कहने लगे।
व्यापार के संबंध हम से बंध सब करने लगे।॥२२५॥

व्यापार में झूठ-साँच करके हम अपने ही भ्राताओं को लूटते हैं और इस प्रकार उनके धनरूपी रक्त का शोषण निरंतर करते रहते हैं। हमारा यह स्वभाव अब प्रसिद्ध हो गया है। अतः सब लोग हमसे व्यापारिक संबंध दिनों-दिन कम कर रहे हैं और हमको ठग विश्वासघाती और झाँसी समझते हैं।

हम आज भी श्रीमंत हैं व्यापार भारी कर सकें
जाकर विदेशों में तथा धन राशि घर को भर सकें।
जिस चीज की सर्वत्र ही अति माँग वह पैदा करें
बस कारखाने खोल दें, पक्का सदा धंधा करें॥२२६॥

पूर्व जैसे श्रीमत तो यद्यपि हम नहीं हैं, फिर भी अभी भी श्रीमत हैं और भारी व्यापार करने की क्षमता रखते हैं। अगर हम चाहें तो आज भी विदेशों का धन लाकर हम देश को समृद्ध बना सकते हैं। जिस वस्तु की अधिक चाहना हो, वह वस्तु हम उत्पन्न करें और सारे देश भर में ऐसे कारखाने खोलें जो देश की आवश्यकताओं को यहीं पूरा करदें और विदेशों में भी पक्का धंधा किया जा सके।

मिलती हमें जब दाल-रोटी कौन यह झंझट करे।
है कौन सी हम में पड़ी ऐसी विपद, खटपट करे।
सस्ता विदेशी व्यापारियों को हम माल कच्चा बेचते।
फिर एक के वे पाँच सौ लेकर हमें हैं भेजते ॥२२८॥

परन्तु हमको जब दाल-रोटी आनन्द से मिल जाती है, यह व्यर्थ ही खटपट क्यों करें। विदेशी व्यापारियों को हम अति साधारण मूल्य में भारत का कच्चा माल बेचते हैं और फिर वे विदेशी व्यापारी उस कच्चे माल से अनेक प्रकार की वस्तुयें तैयार कर हमको ही भेजते हैं और पाँच सौ गुणी कीमत वसूल करते हैं—यह है हमारे व्यापार का रंग और व्यापारिक नीति का ढंग।

यु, फाटका, सट्टा हमारा मुख्य धंधा रह गया।
सम्भव जरा है आ गई, मस्तिष्क जिससे फिर गया।
जापान, जर्मन, फ्रांस जिनमें अन्न तक भी था नहीं।
वे देखलो सपन्न हैं, अघ शील भारत ही! नहीं ॥२२९॥

अब हमारा मुख्य धंधा तो जूआ खेलना सट्टा और फाटका करना है। संभव है व्यापारिक समाज की वृद्धावस्था आ गई है अतः मस्तिष्क में वह प्रौढ़ता न रह कर विपरीत बुद्धि घर कर गई है। जापान जर्मन और फ्रांस जिनमें धन के भी लाले पड़ते थे आज वैज्ञानिक वे प्रदेश सर्वप्रकार से संपन्न हैं और यह लक्ष्मीवान् भारतवर्ष अब लक्ष्मीवान् नहीं रहा।

भारत धन का जा रहा हा! क्यों न हम हैं दुःखित।
हम क्यों विदेशी माल में मिलता मजा हैं दुःखित।
सामान सारा भर गया घर में विदेशी हाय! क्यों!
घर से स्वदेशी माल को हमने निकाला हाय! क्यों? ॥२१॥

हम उत्तरोत्तर निर्धन होते चले जा रहे हैं यह हम क्यों नहीं सोचते हैं। विदेशी वस्तुओं के क्रय-विक्रय में मिलते हुवे अकिंचन लाभ को हम लाभ क्यों समझ रहे हैं? अर्थात् अगर वे ही वस्तुएँ यहीं भारतवर्ष में बनायी जावें तो कितना भारी लाभ होवे। हमारे घरों में समस्त विदेशी सामान भर गया है और स्वदेशी सामान को हमने तिलांजली क्यों दे दी? यह कितने बड़े दुःख की बात है।

हे नाथ! लक्ष्मी का कैसा विचित्र स्वभाव है।
जो देश के प्रति यह रहा कुछ भी नहीं सद्भाव है।
जब तक विदेशी माल का आना न कम हो पायगा।
यह उत्तरोत्तर दीन भारतवर्ष होता जायगा ॥२२॥

हे परमात्मन्! लक्ष्मी का ऐसा कैसा प्रभाव है कि जिसके ऊपर इसकी सुदृष्टि होती है, उसकी दृष्टि कुदृष्टि हो जाती है, देश के प्रति उसके हृदय में अनुराग नहीं रह जाता है। जब तक विदेशी वस्तुओं का भारतवर्ष में आना कम नहीं किया जायगा, तब तक यह देश अधिकाधिक निर्धन होता जायगा।

आत्मबल

जिस जाति का, जिस धर्म का जग में न कुछ सम्मान है;
वह जाति जी सकती नहीं, जिसका मरण ही मान है।
निज जाति का, निज देश का जिसके न उर में मान है,
संतान ऐसी से कभी हा! बलवती आशा न है ॥२३२॥

जिस जाति एवं धर्म का संसार में कुछ भी आदर नहीं, वह जाति एवं धर्म अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकते। मृत्यु का आलिंगन ही उनके लिये श्रेयस्कर है। ऐसी संतान से कोई आशा नहीं, जिसकी आत्मा में जाति एवं धर्म के प्रति कुछ भी सम्मान-भावनायें नहीं हैं।

हे बंधुओ! तुम सत्य ही बदनाम होने योग्य हो,
संसार के जीवित जनों में तुम न रहने योग्य हो।
हर देश के, हर जाति के हैं चरण आगे पड़ रहे,
हो क्या गया ऐसा तुम्हें जो पद तुम्हारे अड़ रहे? ॥२३३॥

हे भ्राताओं! सत्य ही तुम अपमानित होने के योग्य हो, संसार के उन प्राणियों जिनका जीवन जगमग रहा है, तुम रहने

कायर तुम्हें, बक्काल, बणिया आज जग है कह रहा।
कुछ बोलने के भी लिये तो बल नहीं है रह रहा।
तुम में न अब वह तेज है, नहिं शक्ति है असिधार में।
नारी सतालें आप की चाहे भले गृहद्वार में॥ २३६॥

संसार आज आपको कायर, बक्काल, बणिया आदि विशेषणों से सम्बोधित करता है। प्रतिकार करने के लिये भी तो हमारे पास में कुछ ऐसा नहीं है जो उनके मुखों को बन्ध कर सकें। अब न आप में वह तेज है और तुम्हारी तलवार में वह बल है। भले कोई आपके ही घर में आपकी बहू-बेटियों का अपमान करलें, आप उन आततायियों का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

नहिं देश में, नहिं राज्य में कुछ पूँछ है भी आपकी।
हा जिधर देखूँ, मिल रही लानत तुम्हें ये आप की।
तुम चोर गुण्डों के लिये हा! आज घर की चीज हो।
मरुदेश वासी बधुओं को देख लो—जो खीज हो॥२३७॥

आपका मान नहीं तो आपके ही प्रान्त (राज्य) में है और न देश में ही कुछ। जिस ओर दृष्टिपात करता हूँ आपको अगणित अपमान सहन करते ही देखता हूँ। चोर और गुण्डे, जब चाहें तब आप पर हाथ साफ करलें, उनके लिये आप घर में रक्खी हुई एक वस्तु है। अगर मेरे इस कथन से आप अप्रसन्न होते है तो इन मारवाड़ी बन्धुओं को जो स्थल-स्थल पर अमानित हो रहे हैं, देखकर सत्यासत्य का निर्णय कर सकते हैं।

तुमको अहिंसा तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है
इसको क्षमा कहना तुम्हारा भी हलाहल झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है?
बस आततायी पर चलाना शस्त्र-जीवनवाद है ॥२१८॥

यह मिथ्या है कि तुमको अहिंसा के सिद्धान्त ने कायर बना दिया आततायियों से भय खा कर पीछे हटते रहना और उसे दया या क्षमा कहना भी मिथ्या है। आपको अपने पूर्वजों का इतिहास क्या स्मरण नहीं है! अत्याचार को रोकने के लिये अगर अत्याचार करना ही आवश्यक एवं अनिवार्य हो जाता है तो ऐसा अत्याचार अत्याचार नहीं क्योंकि ऐसे अत्याचार के मूल में सुख की स्थापना करने की भावनायें सन्निहित रहती हैं और यही महापुरुषों के जीवन में संग्राम है। यही तो जीवन का अभिप्राय है सार है।

जिसमें न है कुछ आत्मबल वह आत्म जाग्रत है नहीं
बिन आत्मबल के बंधुओ! कुछ काम होता है नहीं।
बस जाग कर के बंधुओ! तुम प्रथम स्व-शोधन करो
तुम खोजकर सब दोष को दुख व्याधि के मोचन करो ॥२१९॥

यह प्राणी चलता फिरता हुआ भी सोया ही हुआ है अगर उसमें आत्मा जाग्रत होकर आत्मबल प्रकट नहीं हुआ है। बंधुओ! बिना आत्मशक्ति के विश्व में आप कुछ भी नहीं कर सकते। हे बंधुओ! अतः प्रथम आत्मबल जाग्रत करो और अपना संशोधन करो। दोष एवं अवगुणों को निर्मूल कर दो

और जाति के दुःखों का निवारण करो।

हे वधुओ! वस आज से ही कमर कसना चाहिए,
अब सह चुके हो बहुत ही, आगे न सहना चाहिए।
मिलकर सभी भाई परस्पर आज अग्रिम आइये,
हैं आप भी कुछ चीज जग में,सिद्ध कर दिखलाइये ॥२४०॥

हे भ्राताओ! आप अब बहुत सहन कर चुके हैं, अब आगे मत सहन करो। विपदाओं को अवध्वस्त करने के लिये तैयार हो जाओ। सब वधुगण एकता कर आगे बढो और विश्व को दिखा दो कि आप का भी कुछ महत्वपूर्ण अस्तित्व है।

राष्ट्रीयता

जिसको न अपने देश से कुछ प्रेम है, अनुराग है,
वह व्यक्ति हो या जाति हो वह भार है,वह दाग है।
जिसने न जीवन में कभी निज देशहित सोचा नहीं,
उन जाति की उस व्यक्ति की ससार में गणना नहीं ॥२४१॥

जिस जाति एव व्यक्ति ने कभी भी देश के कल्याण का चिंतन नहीं किया, देश के प्रति कभी भी प्रेम प्रदर्शित नहीं किया या जिनके हृदय में देशानुराग नहीं है, वह जाति और वह व्यक्ति देश के लिये कलक है, भार स्वरूप है और उनकी ससार में कोई गिनती नहीं।

हममें न श्रद्धा, भक्ति हैं, नहिं देश हित अनुराग है।
अतिरिक्त हमको स्वार्थ क दूजा न प्रियतर राग है।

तुमको अहिंसा-तत्त्व ने कायर किया यह झूठ है
तुमको क्षमा करना तुम्हारा भी सरासर झूठ है।
इतिहास तुमको पूर्वजों का क्या नहीं कुछ याद है ?
बस आततायी पर क्षमा मा क्षुद्र-भीरुत्ववाद है ।।२६८।।

यह मिथ्या है कि तुमको अहिंसा के सिद्धान्त ने कायर बना दिया आततायियों से भय खा कर पीछे हटते रहना और उसे क्षमा या क्षमा करना भी मिथ्या है। आपको अपने पूर्वजों का इतिहास क्या स्मरण नहीं है! अत्याचार को रोकने के लिये अगर अत्याचार करना ही आवश्यक एवं अनिवार्य हो जाता है तो ऐसा अत्याचार अत्याचार नहीं क्योंकि ऐसे अत्याचार के मूल में सुख की स्थापना करने की भावनायें सन्निहित रहती हैं और यही महापुरुषों के जीवन में संग्राम है। यही तो जीवन का अभिप्राय है सार है।

जिसमें न है कुछ आत्मबल वह आत्म जागृत है नहीं
बिन आत्मबल के बंधुओ! कुछ काम होता है नहीं।
बस जाग कर के बंधुओ! तुम प्रथम स्व-शोधन करो
तुम शोधकर अब दोष की दुष्कृति का मोचन करो ।।२६९।।

यह प्राणी चलता-फिरता हुआ भी सोया ही हुआ है अगर उसमें आत्मा जागृत होकर आत्मबल प्रकट नहीं हुआ है। बंधुओ! बिना आत्मशक्ति के विश्व में आप कुछ भी नहीं कर सकते। हे बंधुओ! अतः प्रथम आत्मबल जागृत करो और अपना संशोधन करो। दोष एवं अवगुणों को निर्मूल कर दो

और जाति के दुःखों का निवारण करो।

हे वधुओ! वस आज से ही कमर कसना चाहिए,
अब सह चुके हो बहुत ही, आगे न सहना चाहिए।
मिलकर सभी भाई परस्पर आज अग्रिम आइये,
हैं आप भी कुछ चीज जग में,सिद्ध कर दिखलाइये ॥२४०॥

हे भ्राताओ! आप अब बहुत सहन कर चुके हैं, अब आगे मत सहन करो। विपदाओं को अवध्वस्त करने के लिये तैयार हो जाओ। सब बंधुगण एकता कर आगे बढो और विश्व को दिखा दो कि आप का भी कुछ महत्वपूर्ण अस्तित्व है।

राष्ट्रीयता

जिसको न अपने देश से कुछ प्रेम है, अनुराग है,
वह व्यक्ति हो या जाति हो वह भार है,वह दाग है।
जिसने न जीवन में कभी निज देशहित सोचा नहीं,
उस जाति की उस व्यक्ति की ससार में गणना नहीं ॥२४१॥

जिस जाति एव व्यक्ति ने कभी भी देश के कल्याण का चिंतन नहीं किया, देश के प्रति कभी भी प्रेम प्रदर्शित नहीं किया या जिनके हृदय में देशानुराग नहीं है, वह जाति और वह व्यक्ति देश के लिये कलक है, भार स्वरूप है और उनकी ससार में कोई गिनती नहीं।

हममें न श्रद्धा, भक्ति है, नहिं देश हित अनुराग है।
अतिरिक्त हमको स्वार्थ के दूजा न प्रियता राग है।

स्वातन्त्र्य हित जो देश भाई यातनाएँ सह रहे।
कितने हमारे में कहो निज देश हित तन दह रहे? ॥२४३॥

हमारा देश के प्रति न प्रेम ही है और न श्रद्धा और भक्ति केवल अपने स्वार्थ के हमको अन्य कुछ भी प्रिय नहीं। ये हमारे देश बंधु मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिये कितनी कड़ी यातनाएँ सहन कर रहे हैं। हमारे में ऐसे कितने पुरुष मिलेंगे जो देश को स्वतंत्र करने के लिये अपने शरीरों को कष्ट दे रहे हैं?

धन की हमारे पास में अब भी कमी कोई नहीं
पर राष्ट्र के कल्याण में खर्च हो रहा कौड़ी नहीं।
"अभिवर्द्धिता क्षति हुइ स्वातन्त्र्य की इस क्रांति से
हमने कही तो है कहा नारी-सुलभ भक्ति-भ्रांति से ॥२४४॥

आज भी हमारे पास द्रव्य की कोई कमी नहीं है। (चाहे पूर्व की अपेक्षा भले कितना ही कम क्यों न हो) परन्तु देश के लिये हम एक कानी कौड़ी खर्च नहीं कर रहे हैं। उल्टा हमने यही कहा "इस स्वतंत्रता के आंदोलन से व्यापार को भारी क्षति पहुँची।" ऐसे वाक्य प्रायः मूढ़ स्त्रियाँ जब उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तो कहा करती हैं।

अब वीर भामाशाह-सा हा! धन-धनी है नहीं
बदला हमारा एक है या एक हम में है नहीं।
हमको हमारे स्वार्थ का चिंतन प्रथम रहता सदा
हम देखते हा! क्यों नहीं भाई हुआ पर आपदा!! ॥२४५॥

अब वीर भामाशाह के समान कोई देशभक्त साहूकार नहीं दिखाई देता। हमारा शोणित ही परिवर्तित हो गया या अब हम में शोणित रहा ही नहीं। सर्व प्रथम हमको अपना स्वार्थ सपादन करने का ही विचार रहता है। इस स्वार्थ के पीछे ऊपर आई हुई विपत्तियों को भी हम नहीं देख रहे हैं।

हिन्दू हमें कहना न, हम हिन्दू भला कब थे हुये ?
आदिम निवासी हिन्द के है हिंद से बदले हुये!
जिन धर्म तुम हो मानते, हम हुतु भाई! जैन हो,
है हिन्दभूमी, राष्ट्र हिन्दू—हिन्दुओं में जैन हो ॥२४५॥

हम जैन बन्धु अपने आप को हिन्दुओं की गणना में गिनाने नहीं देते हैं। हमको हिन्दू मत कहो, हम कब हिन्दू बने थे ? हमारे ये शब्द हिन्दूस्थान के हिन्दूराष्ट्र के लिये अमङ्गल कारी है। भला हम हिन्दुस्तान के आदिम निवासी हो कर भी हिन्दुस्थान से इतने बदले हुये हैं। बन्धुओ! आप जैनधर्मानुयायी हैं, इस लिये आप अपने साधर्मी वर्ग को जैन कह कर उसका अलग अस्तित्व रक्खे हुये हैं, लेकिन यथार्थ में आप इस हिन्दभूमी के हिन्दूराष्ट्र के अङ्ग होने के नाते हिन्दू हैं। हिन्दुओं में अवश्य जैन हैं।

राष्ट्रीय भावों से भरा जिस जाति का मन है नहीं,
उस जाति का तो स्वप्न में उद्धार सम्भव है नहीं।
जो देश वासी बन्धुओं के रुदन पर रोया नहीं,
उसके हृदय ने सच कहूँ मानवपना पाया नहीं ॥२४६॥

धन कर दें तो बस वहीं लड़ाई हो जायगी। कोई अगर आपको 'शाहजी साहब' कह कर पुकारे तो आपकी छाती दो बाँस की हो जायगी। शाह, महता और मुसद्दी तथा अन्य अन्य पद परंपरा से चले आने के कारण गोत्र से हो गये हैं और अब इन पदों मे श्रेष्ठता के भाव अभिव्यञ्जित नहीं होते। आपके पूर्वज यशस्वी हो गये हैं, ये पद बात को प्रकट करते रहते हैं, परन्तु तो हवशी रह गये हैं।

व्यापार में, व्यवसाय में सकोच है होवा तुम्हे।
भूखे उदर तुम सो सको, पर हाट में लज्जा तुम्हें!
हा! मद्यसेवन चिह्न तो कौलिण्य कर तुम मानते!
कौलिण्यता मदिरा रमण कुल के शराबी जानते! ॥२४६॥

कुलीनता की छाप धराने वाले बन्धुओ! आप को व्यापार धन्धा करने में लज्जा का अनुभव होता है। आप क्षुधित ही भले सो जावेंगे, लेकिन दुकानादि करके दो पैसे कमाने में आप का गौरव चला जाता है जहाँ आप मद्यसेवन में कुलीनता समझते है। यह कुलीनता कैसी है? मेरी तो समझ में नहीं आती। इसका अर्थ तो ऐसी कुलीनता का निरतर भोग-पान करने वाले सज्जन ही समझे।

स्वास्थ्य

अगणित हमारे रोग हैं, हा! एक हो तो बात हो।
हे नाथ! काली रात है, कैसे दिवस का प्रात हो।

जिस जाति के मानस में राष्ट्र के प्रति कल्याण भावनाये नहीं हैं उस जाति का कल्याण स्वप्न में सम्भव नहीं। जो व्यक्ति अपने देश के वासियों के दुःख पर दुःखी नहीं होता, वह मानव नहीं उसके हृदय में मानवता के लक्षण नहीं।

कुलीनता

कौलिन्य कुलपति आपका पर्दानशी में रह गया !
गिरि पाप भी इसके सहारे ओट में ही रह गया !
अब मार कर हा ! शाशिये तुम रख रहे कुल नाम हो !
चूहे उदर में कूदते पर मूछ पर तो ताव हो ।।२४५।।

हे गौरवान्वित कुल के अधिपति ! आपके कुल का गौरव केवल पर्दा का अस्तित्व बनाये रखने में ही शेष रह गया है। आपके बड़े बड़े पाप के पर्वत इस पर्दे की ओट में आकर जनता की दृष्टि में स्पष्ट नहीं आ रहे हैं। यशस्वी पूर्वजों की कहानियाँ कह कर आप अपने नाम का निर्वाह कर रहे हैं। 'पेट तो पाताल में और मूँछों पर ताव' की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं।

कह दें तुम्हें बढ़िया 'महाजन', स्यात् नहीं मन मानेगा
पर शाह जी साहब पर तो चौक पर उठ जायगा ।
शाहपद महता मुसद्दी सब गोत्रवत हैं हो गये !
तुम रह गये इतरी सभी पृथक पदस्थी हो गये ।।२४६।।

अगर आपको कोई बढ़िया महाजन आदि शब्दों से संबो-

घन कर दे तो बस वहीं लड़ाई हो जायगी। कोई अगर आपको 'शाहजी साहब' कह कर पुकारे तो आपकी छाती दो बाँस की हो जायगी। शाह, महता और मुसद्दी तथा अन्य अन्य पद परपरा से चले आने के कारण गोत्र मे हो गये हैं और अब इन पदों मे श्रेष्ठता के भाव अभिव्यञ्जित नहीं होते। आपके पूर्वज यशस्वी हो गये हैं, ये पद बात को प्रकट करते रहते हैं, परन्तु तो हयशी रह गये हैं।

व्यापार में, व्यवसाय में सकोच है होवा तुम्हे।
भूखे उदर तुम सो सको, पर हाट में लज्जा तुम्हें।
हा! मद्यसेवन चिह्न तो कौलिन्य कर तुम मानते।
कौलिन्यता मदिरा रमण कुल के शराबी जानते! ॥२४६॥

कुलीनता की छाप धरान वाले बन्धुओ! आप को व्यापार धन्धा करने में लज्जा का अनुभव होता है। आप क्षुधित ही भले सो जावेगे, लेकिन दुकानादि करके दो पैसे कमाने में आप का गौरव चला जाता है जहाँ आप मद्यसेवन में कुलीनता समझते हैं। यह कुलीनता कैसी है? मेरी तो समझ में नहीं आती। इसका अर्थ तो ऐसी कुलीनता का निरतर भोग-पान करने वाले सज्जन ही समझे।

स्वास्थ्य

अगणित हमारे रोग हैं, हा! एक हो तो बात हो।
हे नाथ! काली रात है, कैसे दिवस का प्रात हो।

> मुझको यहाँ पर मानसिक संताप मिलते हैं नहीं
> है शक्ति गिनने की कहाँ ! जब स्वास्थ्य अच्छा है नहीं॥५४॥

हम सहस्रों रोग से ग्रस्त हैं । एक रोग हो तो उसका उपाय भी विचारें । हे परमात्मन् ! इस अति घोर अमावस्या रात्रि का अस्तित्व होते हुये दिवसोदय कैसे होगा । मैं इस स्थल पर मानसिक दुःखों की गणना नहीं करूंगा । और करूं तो भी कैसे करूं जब स्वास्थ्य ही अच्छा नहीं है ?

> ऐसा न कोई रोग है जिसका न हम में भाव हो ।
> वह रोग ही कैसा भला, जिसका न हम पर दाँव हो ।
> संख्या हमारी जब तरह—रोग तरह कोटि है ।
> सब बाल सिर के पक गये-मिलती न सिर पर चोटि है॥५५॥

ऐसा कोई रोग विश्व में न मिलेगा जिससे हम ग्रस्त न हों । वह रोग रोग ही कैसा जिसने हमारे पर आक्रमण ही न किया हो । हमारी संख्या तो तेरह लाख है लेकिन हमारे रोगों की गणना तेरह कोटि होगी । सिर पर के बाल पक गये चोटी का भी पता नहीं रहा । कहावत भी है—जिसके सिर न टाट उसके घर में ठाट । हमारी श्रीमंत समाज हीन वीर्य एवं पुरुषत्व हीन है अतः सिर के बाल शीघ्र ही पक जाते हैं और अशक्ति के कारण शीघ्र ही न्यून होने लग जाते हैं । फिर चोटी स्वयं ही नहीं रहने पाती और श्रीमन्त गंजे हो जाते हैं । इसलिये कहावत इस प्रकार होनी चाहिए, "जिसके घर में ठाट उसके सिर में टाट । यह अधिक सत्य एवं उपयुक्त है ।

यदि काम कोई आपडे, दो कोश जा सकते नहीं।
यदि भार कुछ ढोना पडे, चरण चल सकते नहीं।
कुछ तुन्दिलोदर मसनदोंके है सहारे लोटते।
है लोटते इस भाँति—क्या गर्दभ विचारे लोटते ॥२५२॥

हमारा स्वास्थ्य इतना पतित है कि अगर दो कोश जाने का कार्य आ पडे तो नहीं जा सकते, अगर कोई भार लेकर चलना पड़े तो दो चरण भी नहीं चल सकते। कुछ तुन्दिल बन्धु गद्दी-तकियों पर ही पडे पडे लोटा करते हैं और ऐसे लोटते हैं कि गर्दभ भी वैसा क्या लोटेगा।

हमको कभी निज स्वास्थ्य का होता न कुछ भी ध्यान है।
क्या रोग तन को हो गया—कोई न इसका ध्यान है।
विश्वास तुमको न यदि--मृत तालिका तुम देखलो।
हम वीर्य्यहीनों, स्वास्थ्यहीनों का मरण यों लेख लो ॥२५३॥

हम अपने स्वास्थ्य का तो कुछ भी ध्यान नहीं करते है। हमको क्या रोग हो गया है, इसकी भी हमको कोई चिन्ता नहीं रहती। अगर मेरे इस कथन में विश्वास न हो तो मृत-पुरुषों की गणना का पत्र देख लो, उसमें हम वीर्य्यहीनों एवं स्वास्थ्यहीनों की ही गणना अधिक मिलेगी।

हम ब्रह्मव्रत रखते नहीं, व्यायाम भी करते नहीं।
फिर रोग, तस्कर, दुष्ट के क्यों दाँव चल सकते नहीं?
हमसे किसी को भय नहीं, हमको डराते हैं सभी।
धनमाल के अतिरिक्त रामा भी चुराते है कभी ॥ २५४ ॥

हम न तो ब्रह्मचर्य का ही पालन करते हैं और न व्यायाम ही करते हैं, तब फिर रोग चोर और दुष्कर्मों का आक्रमण क्यों न होवे? हमसे कोई नहीं डरता, सब कोई हमको ही डराते हैं। धन माल का अपहरण तो वे करते ही हैं कभी कभी इसके अतिरिक्त हमारी बहू-बेटियों को भी हरण कर जाते हैं।

ऐसा पतन हे नाथ! करना योग्य तुमको था नहीं!
हर भाँति से यों निम्न करना उचित हमको था नहीं!
होगा कहाँ पर छोर?—अब तो हे विभो! बतलाइये!
अबतो अधम है भाँति सब हमोद्धार दया दिखलाइये ।।२४५।।
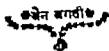
हे परमात्मन्! ऐसा भयंकर पतन तो हमारा नहीं करना था हर भाँति से हमको इस प्रकार हीन नहीं बनाना था। हे प्रभो! अब यह तो कहिये कि हमारे इस महापतन का अंत कहाँ होगा। अब तो हम सब प्रकार असमर्थ हैं, कुछ तो दया कीजिये।

धर्म निष्ट

ये हाय! कैसे जैन हैं, घट में न हैं इनके दया!
सिद्धान्त इनके हैं दयामय हाय! फिर भी बे दया!
बाहर सदाशय भाव हैं बाहर दयामय भाव हैं
अवसर पड़े पर देखना अंतर में कैसा दाँव है ।। ।।२४६।।

ये महाशय कैसे जैन हैं? इनके हृदय को दया तो छू तक नहीं पाई। इनके जैन धर्म के सिद्धान्त तो सब ही दयामयी हैं,

परन्तु ये महाशय तो हाय ! दयाहीन हैं। बाहर से तो इनके भाव दयामय एव सदाशय प्रतीत होते हैं, लेकिन अवसर आने पर विदित होता है कि इनके मानसों में कैसी कैसी कुटिल चालें भरी हैं।

इन जैनियों ने झूठ में भी रस कला का भर दिया।
मीठे वचन मयी कर उसे हा! अधिक रुचिकर कर दिया।
व्यापार, कार्याचार, धर्माचार इनके झूठ हैं।
बाहर छलकता प्रेम है, भीतर हलाहल कूट है ॥ २५७ ॥

इन जैन वधुओं ने तो झूंठ जैसी गृणित वस्तु को भी कला का पुट देकर सुन्दर बना दिया और उसमें फिर मधुर वाणी का मिश्रण कर उसको और अधिक रुचिकर बना दिया। इन जैन वधुओं के व्यापार, कार्य, धर्म-कर्म सब मिथ्या हैं, छल भरे हैं। बाहर प्रेम उमडता प्रतीत होता है। लेकिन इन सब व्यापारों के भीतर हलाहल विष लहरें खा रहा है।

मार्जार-सा इनका तपोबल पर्व पर ही लेख्य है,
उपवास, पौषध, सामयिक उपतप व्रताग्विज पेख्य है।
निंदा, कलह, अपवाद के व्यवसाय खुलते हैं तभी,
एकत्र होकर देख लो ये काम करते हैं सभी ॥ २५८ ॥

पर्वादि मगल दिवसों में इनकी तपस्या, धर्मश्रद्धा अवलोकनीय है। उस समय पर जिस छटा के साथ उपवास, व्रत, सामायिक, पौषध ये करते हैं, वह छटा मननीय है। उस समय
२२

ये बन्धु एकत्रित होकर परस्पर की निंदा करके अपकीर्ति करते हैं—ये इनके मंगलपर्वों पर हृस्य होते हैं।

ये हाय ! जितने शाह हैं उतने समझिये चोर हैं।
इनसे बचो इनसे बचो सब भग रहे ये शोर हैं।
इन मारवाड़ी बन्धुओं के काम सब विकराल हैं।
इनको पिलावे दुग्ध जो घर में उसी के व्याल हैं ।।२५६।।

ये जितने शाहूकार प्रतीत होते हैं उतने ही ये चोर हैं। अब सर्वत्र इनकी विरुद्ध पहिचान हो चुकी है। सर्वत्र यह सुनायी पड़ रहा है इनसे बच कर रहो इनसे बच कर रहो। इन मारवाड़ी भाइयों के कर्म भयंकर होते हैं। जो इनका स्वागत करता है उसी के ये दुर्गति करते हैं।

वैसे हमारे बन्धु ये जल छान कर ही पीवेंगे।
पर दीन का घन-रक्त ये हा ! अनछना ही पीवेंगे।
व्यापार मायाजाल है इनका तनिक तुम देख लो।
उसमें पीढ़ी साथ में, जो फँस गये तुम देख लो ।।२६०।।

वैसे हमारे ये बन्धु बड़े धर्मात्मा प्रतीत होते हैं। अनछना पानी का कभी भी सेवन न करेंगे परन्तु दीन के धन-रूपी रक्त का पान करते समय ये कुछ भी विचार नहीं करेंगे। तुम भली प्रकार देखोगे तो इनका व्यापारकर्म भी एक मायावी जाल प्रतीत होगा। जो इस मायावी जाल के गुफाएँ में जाकर फँस गया फिर वह और उसकी सात पीढ़ी उबर नहीं सकती।

हा ! जैनियों की धर्मनिष्ठा स्वार्थनिष्ठा हो गई !
यो धर्मनिष्ठा पेट में पड़कर सदो को खो गई !
भीषण पतन इस भाँति का हा ! आज तक किसका हुआ !
हे वीर के अनुयायियो ! देखो तुम्हें यह क्या हुआ ?॥२६१॥

बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जैनियों के धर्म-कर्म सब स्वार्थमय हो गये और इस प्रकार स्वार्थमयी होकर उनकी धर्मश्रद्धा सदा के लिये अपना अस्तित्व खो बैठी। ऐसा भयंकर अध पतन आज तक किसी भी जाति का नहीं हुआ होगा। हे भगवान महावीर के भक्तो ! देखो, तुमको यह क्या हो गया ?

जातीय विडंबना

इन जाति भेदों ने हमारा वर्ण विकृत कर दिया !
आन्तर प्रभेदों ने तथा अवशिष्ट पूरा कर दिया !
क्या-क्या न जाने बन गई ये जातियें इस काल में !
कैसा मनोहर देश था, थे आर्य हम जिस काल में ! ॥२६२॥

हमारे वर्ण को इन जाति के भेदों ने बिगाड़ डाला। रहे-सहे को फिर उपभेदों ने नष्ट कर डाला। न जाने कौन कौनसी जातियें बन गईं। वह समय कितना अभिराम था जब कि हम सब एक मात्र आर्य कहलाते थे और कोई जाति व गोत्र न था।

करने व्यवस्थित देश को ये वर्ण स्थापित थे किये,
प्रति वर्ण के कर्तव्य भी निश्चित सभी विध थे किये।
थे विप्र विद्यादाता औ रक्षक सभी क्षत्री हुये,
पोषक बने हम वैश्य गण, अन्त्यज तथा सेवी हुये ॥२६३॥
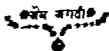
देश की सुन्दर व्यवस्था करने की दृष्टि से ही चार वर्णों की स्थापना की गई थी। प्रत्येक वर्ण के कर्म-धर्म भी निश्चित कर दिये गये थे। विप्रों का कर्तव्य पठन-पाठन, क्षत्रियों का रक्षा करना वैश्यों का कर्तव्य कृषि-व्यापार करना और धम्मजों का कर्तव्य रहा अन्य वर्णों की सेवा करना।

पड़कर समय के फेर में ये चार पैत्रिक बन गये
सब वर्ण वर्णान्तर हुये थे जाति जात्यन्तर हुए।
कितने पिता के नाम पर उपगोत्र स्थापित हो गये
इस भाँति से चार वर्ण के लाखों विभाजन हो गये। ॥२९४॥

जो मनुष्य जिस वर्ण का कर्म करता था वह उसी वर्ण का गिना जाता था लेकिन कालान्तर में उसका वह वर्ण सदा के लिये निश्चित ही हो गया। फिर वर्ण में भी उपवर्ण जाति और उपजातियाँ हो गई। कई गोत्र और उपगोत्र पिताओं के नाम पर भी पड़ गये इस प्रकार एक वर्ण के लाखों टुकड़े हो गये।

हर एक मत के नाम पर हैं जातियाँ कितने हुए?
अब एक नर के देखिये उपगोत्र कुछ इतने हुये।
वह आर्य हिन्दू जैन हैं श्वेताम्बरी श्रीमाल हैं
गच्छानुगत वंशानुगत गोत्रानुगत के जाल हैं। ॥२९५॥

फिर कई जातियाँ धर्म एवं मतों के पीछे बन गई। अब देखिये एक मनुष्य के कितने गोत्रोपगोत्र हैं। वह जाति से आर्य हैं देश से हिन्दू धर्म से जैन सम्प्रदाय से श्वेताम्बरी
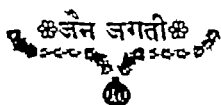
और जाति मे श्रीमाल, गच्छ से तपा या खरतर, वश से और गोत्र मे फिर (१०–२०) दशा–बीशा हैं।

कुल जैन तेरह लक्ष होंगे अधिक होने के नहीं,
दस, बीस सहस्र गोत्र होंगे—अल्प होने के नहीं।
इस अल्प सख्यक जाति का ऐसा भया वह हाल है,
हा वह वर्ण का भी काल था, यह जाति का भी काल है ॥२६६॥

जैन स्त्री-पुरुषों की गणना तेरह लक्ष से ऊपर सभवत' नहीं है। परन्तु गोत्रोपगोत्र दश-बीस सहस्र होंगे। इस अल्प सख्यक जाति की ऐसी भयकर दुर्दशा है। एक वह भी समय था जब कि वर्ण की प्रधानता थी, और एक यह भी समय है जबकि अब जातियों की प्रधानता है।

जात्यन्तरिक फिर रोग बढकर साम्प्रदायिक बन गये।
पारस्परिक व्यवहार, प्रेमाचारन तक भी रुक गये।
इन दिग्पटों श्वेताम्बरों में अब नहीं होते प्रणय,
संकीर्ण दिन दिन हो रहे हैं शून्य में होने विलय ॥२६७॥

उप जातियों में से फिर साम्प्रदायिक वर्ग बन गये। यहाँ तक यह रोग बढ़ा कि वर्ग वर्ग में प्रेम एव व्यवहार के सबध भी रुक गये। दिगम्बरों मे और श्वेताम्बरों में अब विवादि के सम्बन्ध नहीं होते हैं। इस प्रकार शून्य में समा जाने के लिये ही (मानो) दिन प्रतिदिन संकीर्ण होते जा रहे हैं।

कितने असर हम पर भयंकर आज इनके घट रहे,
होकर सहोदर, हाय! सब हैं रण परस्पर कर रहे।
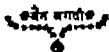
अब नहं न हममें प्रेम है, सौहृद है, वात्सल्य है
अब मारकनाशक फूट का चहुँ ओर हा ! प्रभुत्व है ।।२६८।।

इस प्रकार जातीय विभक्तता ने अपना भारी आतंक बिछा रक्खा है । परस्पर भाई-भाई होकर भी इस प्रकार बुरी तरह लड़ रहे हैं । स्नेह प्रेम एवं सहानुभूति अब हम में परस्पर नहीं रहे । सर्व नाशिनी फूट की शक्ति सर्वत्र हम में फैल रही है ।

हाट माला

जी ! देखिये ये शाह हैं ये स्नान हैं करते नहीं
इनको बदलने वस्त्र भी अवकाश हैं मिलते नहीं ।
है हाट इनकी शूद्र-की दुर्गन्धयुत सामान है
पर शूद्र तो ये हैं नहीं ये शाह जी श्रीमान् हैं ।। २६९ ।।

दुकान पर ये जो बैठे हुये हैं । शाहजी साहब हैं । ये स्नान बहुत ही कम करते हैं । वस्त्र परिवर्तन करने के लिये भी इनको अवकाश नहीं मिलता । शूद्र की दुकान जैसी इनकी दुकान है । दुकान का सामान दुर्गंधित है । परन्तु इनको कोई शूद्र न समझे ये श्रीमान् शाह जी साहब हैं ।

जीरा मसाला तेल इनका तोलना ही काम है
इन शाह जी ने तोलने में ही कमाया नाम है ।
जिनमे वरक रस पाक है—जिनका किया नहिं पक है
इनको विगुना कर चुके, निज भाव रखते एक हैं ।।२७०।।

इन शाह जी कर्म कामिर्च-मसालादि तोलने का है। तोलने में इन्होंने कौशल प्राप्त किया है। रस, पाक आदि जितने भी द्रवित पदार्थ हैं, सब में मिश्रण किया हुआ है। ये मूल धन का दुगुणा, तिगुणा कर चुके फिर भी हमेशा एक ही भाव रखते हैं।

व्यापार में वढ़ती इधर हैं कुछ दिनों से कर रहे,
दिन-रात इनके ग्राहकों मे हाट घर हैं भर रहे।
सर्वत्र कन्या माल की है माग दिन दिन वढ रही;
कन्या कुमारी मोहरों से, देखिये, हैं तुल रही। ॥२७१॥

कुछ समय से ये व्यापार में उन्नति कर रहे हैं। घर और दूकान दोनों में ग्राहक इतने जुड़ते हैं कि समा नहीं पाते। प्रतिदिन कन्यामाल की माग वढती जा रही है और कुमारी कन्यायें मोहरों से तोली जा रहीं हैं।

पुखराज, मानिक रत्न के व्यापार होते थे यहाँ!
अव देख लो चूना कली के ढ़ेर हैं विकते यहाँ!
जीवादियुत धानादि के भण्डार भी मौजूद हैं!
दोगे न यदि तुम दाम तो दो सैकड़े पर सूद है॥२७२॥

हा! इन्हीं हाटों में कभी माणिक, रत्न, पुखराज के व्यापार होते थे। अब देखिये चूना कली के ढेर लगे पड़े हैं। सब अन्नादि के भण्डार सजीव हैं। उधर सामान लेने वालों को मासिक दो रुपया प्रतिशत व्याज का देना पड़ता है।

जी! यह बड़ा बाजार है—श्रीमान शाहूकार हैं,
दिनरात सट्टा, फाटका ही आपका व्यापार है!

ये सब विदेशी माल के एजेन्ट ठेकेदार हैं
इस देश के इनके विदेशी नाम ही आधार हैं ॥ ॥२७३॥

यह बड़ा बाजार है। सब ही दुकानदार लक्ष्मीपति एवं साहूकार हैं। सट्टा और फाटका करना इन श्रीमंतों का प्रमुख व्यापार है। ये सब के सब साहूकार विदेशी माल के एजेन्ट हैं। इनके इस वैभव के आधार एक मात्र इनके विदेशी स्वामी हैं।

बाजार माणिक-कोष था हा! साह जी धरणेश थे!
अमरावती की हाटमाला साह जी अमरेश थे!
मलमल जरी, कौशा स्वदेशी हाट के सामान थे!
भरकर स्वदेशी माल को जाते सदा जलयान थे! ॥२७४॥

एक समय था जब बाजार माणिक मुक्ताओं से भरे रहते थे और साहूकार धरणपति थे। बाजार की शोभा इन्द्रनगर की शोभा के सदृश थी और साहूकार इन्द्र के सदृश थे। दुकानों में एक मात्र स्वदेशी सामान मलमल जरी कौशा था और स्वदेशी माल को भरकर जहाज विदेशों में जाते थे।

अब तो विदेशी माल के ये साह जी मध्यस्थ हैं।
अपने स्वदेशी माल के रे! शत्रु ये प्रथमस्थ हैं।
इनको विदेशी माल से इनकी सजी सब हाट हैं।
शोणित दिवाले कर चुके पर हाट में ठन ठाट है। ॥२७५॥

देश में विदेशी माल के मँगाने वाले एक मात्र आप साहूकार ही हैं। ये साहूकार स्वदेशी माल के प्रथम शत्रु हैं। देख लीजिए इनकी दुकान विदेशीमाल से सुशोभित हो रही है।

कितनी कितने ही समय ये दिवाला निकाल चुके हैं, फिर भी इस समय इनकी दुकान में सब ही प्रकार का सामान विद्यमान है।

नेता हमारे देश के नारे लगाते ही रहे।
कारण विदेशी माल के वे जेल जाते ही रहे।
महता रहे यह देश चाहे यातनाएँ नित कड़ी।
ये तोड़ने हा ! क्यों लगे प्यारी प्रिया सम सुख घड़ी ॥२७६॥

भारतवर्ष के नेतागण देश को स्वतन्त्र करने के लिये अविदल प्रयत्न करते रहे और विदेशी वस्त्रों का प्रतिकार करने के कारण कारागारों की यातनाएँ सहन करते रहें, और सम्पूर्ण भारतवर्ष चाहे कड़े से कड़े संकट सहन करता रहे, परन्तु ये श्रीमतगण प्रियतमा के समान अपने सुख भरे पर्जों चिंता विपाट क्यों भरने लगे।

ये हेम, चाँदी दे रहे, पाषाण लेकर हँस रहे।
नकली विदेशी माल से यों देश अपना भर रहे।
अपने हिताहित का न होता, नाथ ! इनको ध्यान क्यों।
इनके डरों में देश पर अनुराग है जगता न क्यों ॥२७७॥

ये श्रीमत शाहूकार सोना, चाँदी विदेशियों के हाथो में वेचकर बदले में नकली पाषाण और विदेशी माल लेकर अपने देश को भर रहे हैं। हे परमेश्वर ! इन शाहूकारों को अपने ही भले, बुरे के विचार पैदा क्यों नहीं होते। मातृभूमि के प्रति इनके हृदयों में प्रेम उत्पन्न क्यों नहीं होता ?

मेरे पिता! इनको घृणा क्यों देश से यों हो गई।
ममता विपद के भाव से सब भाड़ इनकी हो गई।
तुम क्यों न चाहे जैन हो पर देश यह है आपका।
जिस भाँति से सम्पन्न हो यह काम यह है आपका ॥१४८॥

हे ईश्वर! इन साहूकारों को मातृभूमि के ऊपर ऐसी अरुचि कैसे हो गई? या ईश्वर! विपत्तियों के कारण इनकी मति मलीन हो गई। हे आत्माओं! आप चाहे जैन हो या और कोई परन्तु भारतवर्ष आपका पितृदेश है। जिस उपाय से भी यह देश सम्पन्न हो वही उपाय आपको करना चाहिए।

बेकारी।

कितने युवक अरु प्रौढ़ हा! बेकार होकर फिर रहे!
हत धैर्य होकर हाय! क्या अपघात वे नहिं कर रहे।
उनकी अकिंचन प्रार्थनाएँ क्यों नहीं स्वीकार हैं।
वे योग्य हैं हर भाँति से फिर क्यों उन्हें धिक्कार है ॥१४९॥

हमारे कितने योग्य युवक और प्रौढ़वय के पुरुष बेकार हैं। बेकारी से दुःखी होकर उनमें से कितने आत्मघात कर अपनी जीवनलीला समाप्त कर रहे हैं। हे ईश्वर! उनकी तुच्छ प्रार्थनाएँ भी तुमको स्वीकार क्यों नहीं। वे सब प्रकार से योग्य हैं फिर भी उनका तिरस्कार क्यों किया जाता है!

भोजन मिला जब मात को—चौबीस घंटे हो गए!
जो मात पहिले भेंट वे शिशु हो क्षुधा की हो गए।

है मूर्च्छिता माता पड़ी, नव जात शिशु मूर्च्छित पड़ा !
स्तंभित खड़े पति पार्श्व में, ज्योंही कहीं पत्थर गड़ा ॥२८०॥

कल प्रातःकाल भोजन मिला था। २४ घंटे व्यतीत हो चुके। सारा परिवार क्षुधा से पीड़ित हो रहा है। प्रसूतिगृह में माता क्षुधा से मूर्च्छिता पड़ी है, नवजात बच्चा भी मूर्च्छित पड़ा है, यह हृदयविदारक दृश्य देख कर पिता पार्श्व में ही अचल खड़ा है। इसी क्षुधा की वेदी पर २ माह पूर्व २ लड़के भेंट हो चुके हैं। यह है भारतवर्ष में फैले हुये नग्न दरिद्रय का नग्न चित्र।

वह जाति जिसके नर, युवक बेकार हैं, क्षयशील हैं,
उस जाति के तन में पतन के बीज ही गतिशील हैं।
यह आग ऐसी आग है, इस-सी न दूजी आग है,
यह जल उठी जिस भाग में, वह भस्म ही भूभाग है ॥२८१॥

जिस जाति के युवक एवं मनुष्य अकर्मण्य हैं, बेकार हैं वह जाति नष्ट हो रही है। ऐसी जाति की देह में पतन के बीज पनप रहे हैं। बेकारी की अग्नि ऐसी भयंकर अग्नि है कि इस अग्नि के सदृश अन्य कोई अग्नि नहीं। यह बेकारी की अग्नि संसार के जिस किसी भी भाग में प्रज्वलित हो उठी, वह भाग तो भस्म हुआ ही समझिये।

यह भी पतन के कारणों में एक कारण मुख्य है,
तुम जानते हो जाति की आत्मा युवक ही मुख्य है,
इनके पतन में है पतन, उत्थान में उत्थान है,
हा! युवक्षुबलक्षत जाति का सन्निकट ही अवसान है॥२८२

जाति का पतन जिन अनेक कारणों से हुआ है, उन अनेक कारणों में एक मुख्य कारण जाति में बेकारी का होना भी है। आप समझते हैं; सुशिक्षित युवकगण ही जाति की आत्मा होते हैं। युवकों के पतन पर जाति का पतन है और युवकों के उत्थान पर जाति का उत्थान है। जिस जाति का युवक वर्ग पस्त हो गया है उस जाति का अंत भी अति सन्निकट है।

पर बहुत कुछ अब भी हमारे पास में अवशिष्ट है
हम हैं युवक हैं, काम है धन भी प्रचुर अवशिष्ट है
इस विध के हर युवक को हम काम दे सकते अभी
इस अग्नि की सम ज्वाल से उपशम कर सकते अभी ॥२८५॥

इतना होने पर भी आज हमारे पास फिर भी बहुत कुछ साधन है। हम हैं युवक हैं कार्य भी है और पूंजी का ढेर हुआ पर्याप्त धन है। इन साधनों के बल पर तो हम सारे भारत वर्ष के युवकों को कार्य पर लगा सकते हैं और बेकारी की धधकती ज्वाला को शान्त कर सकते हैं।

इस ओर यदि कुछ ध्यान हो आगे न दुर्दिन आयेंगे,
सुख के विगत दिन भी हमारे लौटकर आ जायेंगे।
जिस दिन हमारे देश का कर्मी युवक बन जायगा।
सोया हुआ यह देश भारतवर्ष फिर उठ जायगा ॥२८६॥

अगर हम इस बेकारी को नष्ट करने का प्रयत्न करें तो भविष्य में हम को विपत्तियों सहन न करनी पड़ेगी। हमारा

खोया हुआ वैभव भी पुनः लौट आयेगा। जिस दिन हमारे देश का प्रत्येक युवक काम पर लगा हुआ होगा, उस दिन यह भारतवर्ष जगा हुआ होगा।

अंध-परंपरा

अब भक्ति में भी गंध कुत्सित काम की बढने लगी।
दुर्लभ जहाँ पर दर्श थे, अब नारियाँ चढने लगीं।
पथ भ्रष्ट गुरुजन हो गये, श्रद्धा पर किंचित घटी।
पथ भ्रष्ट अनुचर हो गये, अतएव है अब तक पटी ॥२८५॥

आज भक्ति में भी कामवासनाओं ने अपना घर बना लिया है। जहां पुरुषों को बड़े पुरुषों के दर्शन भी होना कठिन था, आज वहां नारियों के मेले लग रहे हैं। (बडे पुरुष और) अनुयायी (दोनों ही) पतित हैं, इसलिये अब तक व्यवहार बना रहा है।

हा! पितृ धर्मा चार्य रे! सब दोष आकर हो गये।
मन्दिर हमारे पूज्य भी हा! मदन-मन्दिर हो गये।
जिस ओर देखो, उधर ही सब भाव विकृत हो गये।
हतकर्म! हतब्रह्म हा! मतधर्म हा! हम हो गये ॥२८६॥

जो हमारे माता-पिता और धर्माचार्य जो पूजनीय और आदर्श थे जिनका अनुकरण कर हम अपने चरित्र को बनाते थे वे आज सब दोष और कुव्यसनों से भर गये। अधिक क्या प्रभुमन्दिर भी कामदेव के मन्दिर-से हो गये। जिस ओर देखो,

उस ओर ही आज, परिवर्तित से हुये से दृष्टि में आते हैं।
हाय ! आज हम धर्महीन, कर्महीन, ज्ञानहीन हो गये।

त्यागी बने जो छोड़ सब संसार माया, मोह को—
अपना रहे क्यों हाय ! वे फिर आज ममता, मोह को।
माता पिता भ्राता सुता, सुत शिष्य गुरु, संयोग्य हैं।
बढ़ती हुई इनमें हमारी अब ममता रोक्य है ॥ २८० ॥

जो संसार, माया और मोह भरे सब ही सम्बन्धों को छोड़ कर त्यागी बन गये वे फिर हाय! आज अपनत्व और मोह के भावों को क्यों अपना रहे हैं। माता पिता पुत्र-पुत्री स्त्री-पुरुष गुरु शिष्य सब की परीक्षा करना आवश्यक है और बढ़ते हुये अब अपनत्व को रोकना अत्यन्त वांछनीय है।

गृह-कलह।

पति पत्नि से नहिं बोलता पति से न भार्या बोलती।
सुत तात से न बोलता माता न सुत से बोलती।
सास बहू लड़ती परस्पर सर्पिणियों-सी आज हैं।
भाभी ननद लड़ती जहाँ हा ! नागिनी सी आज है ॥२८१॥

स्त्री और पुरुष पिता और पुत्र माता और बेटा परस्पर प्रेम सम्बन्ध यहाँ तक छोड़ बैठे हैं कि परस्पर सम्भाषण का व्यवहार भी रुक गया है। पुत्र-बधु और पति भगिनी परस्पर सर्पिणी के समान बुरी तरह लड़ती हैं और भाभी, ननद जब लड़ती हैं तो ऐसा लगता है मानो दो नागिनें लड़ रही हों।

ऐसा पतित गार्हस्थ्य-जीवन आज विभुवर हो गया !
हा ! स्वर्ग-सा गार्हस्थ्य सुखकर अब तपन-सा हो गया !
अब पुत्र की निज पितृ में श्रद्धा न है, वह भक्ति है।
माता-पिता की सुत, सुता पर भी न वह अनुरक्ति है ॥२८९॥

हे परमात्मन् ! स्वर्ग के सदृश सुखदायी गृहजीवन आज इतना पतित हो गया है कि अब उसे सातवा नरक कहना चाहिए। माता पिता में अब पुत्र की न यह श्रद्धा है और न भक्ति है और माता-पिता का भी पुत्र-पुत्री पर अब वैसा प्रेम नहीं है।

घर में न जब हा ! प्रेम है, बाहर भला कैसे बने।
हे नाथ ! ये कटक-सदन चिर सुख-सदन कैसे बने !
फैला दिया अपना कलह ने एक विध साम्राज्य है।
शुचि प्रेम, श्रद्धा, भक्ति कर अब हा ! न वह सुर-राज्य है॥२९०॥

हे स्वामिन ! जब परिजन, कलत्रों से ही प्रेम न रहा तो अन्य पुरुषों से प्रेम कैसे हो सकता। ये कटकपूर्ण गृह अब सुख पूर्ण कैसे बनेंगे ? कलह, झगड़ो ने अपना साम्राज्य सर्वत्र एक-सा फैला दिया है कि परस्पर प्रेम पुज्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति के उस देवराज्य का अब अंत हो गया।

छाया सघन तरु फूट की कब सघन हम पर छा गई !
पाताल में, ऐसा लगे जड़ हो सुधारस पा गई !
तम-तोम में आलोक की आछन्न किरणें हो गईं।
ये मिल गये भू-व्योम ऐकाकार जगती हो गई ॥२९१॥
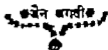
फूट का वृक्ष बढ़कर इतना घना बन गया कि उसने इसको चारों ओर से इतना गहरा ढक लिया कि किरणों के दर्शन भी दुर्लभ हो गये इतना विशाल और ऊँचा हो गया कि पृथ्वी और आकाश, दोनों को उसने मिला-सा दिया। ऐसा प्रतीत होता है इस फूट के वृक्ष की जड़ को कहीं पृथ्वी के अन्दर अमृत प्राप्त हो गया।

इस फूट में वह शक्ति है संजीवनी में जो है नहीं।
माता कहीं है सुत कहीं पता पिता का है नहीं।
घर राष्ट्र इसने आज तक कितने उजाड़ हैं कर दिये।
इसको जहाँ अवसर मिला दुर्भिक्ष वहीं हैं भर दिये ॥२६२॥

फूट में वह बल है कि जो एक महासागर में भी नहीं होता है। जिधर फूट का प्रवाह बहता है उधर सब चौपट हुआ समझिये। यह माता पिता पुत्र को अलग अलग दूर कर देती है। आज तक इस फूट ने कितने घर-संसार घर और राष्ट्र नष्ट किये हैं कुछ पता नहीं। जहाँ इसके चरण पड़ते हैं, वहीं दुर्भिक्ष (विघ्न) पैदा हो जाते हैं अर्थात् अशांति उत्पन्न हो जाती है।

कविराज के शब्दों के ये बन्धुओं! अल्फाज हैं।
तुमको हिताहित सोचने का पर न हा! अवकाश है।
तुम संगठन के द्वार से मायाविनी को छोड़ दो।
यह फूट की तुम छोड़ कर यह प्रेम की तुम रोप दो ॥२६३॥

फूट आदि भाव महाकाल के अस्त्र और शस्त्र हैं, इनका प्रचार महाकाल का अपना कार्य करना है। परन्तु आप कभी भी अपने कल्याण अकल्याण का तनिक भी विचार नहीं करते हैं और फूट जैसे विनाशकारी भावों को अपनाते चले आ रहे हैं। बन्धुओ! ऐक्य भाव उत्पन्न करो और इस फूट के उत्पन्न होते हुए अंकुरों को उन्मूल कर डालो। और उस जगह प्रेम के बीज लगाओ।

आतिथ्य-सेवा

अतिथ्य, सेवा-धर्म को तुमने न जानां आज तक!
सत्कार अपना ही किया है हाय! तुमने आज तक!
अपने उदर की भरण विधि तो श्वान भी हैं जानते!
जो अनिमन्त्रित हो उसे भिक्षुक अहो तुम मानते! ॥२६४॥

मेरे बन्धुओं! आज तक भी आपने अतिथि सत्कार का महत्त्य नहीं समझा है। आज तक आप अपना ही मान करते आये हैं। श्वान भी अपना उदर भर लेता है, फिर आप में और श्वान में अन्तर ही क्या रहा? आपके द्वार पर अगर कोई अतिथि आ जावे तो आप उसको भिक्षुक गणते हैं।

जिस जाति में आतिथ्य-सेवा भावनायें हैं नहीं,
मानवपना कहते किसे, उसने न देखा है कहीं!
आये हुये का द्वार पर हो मान तुम नहीं कर रहे,
कंजूस, निर्मम, बेहया हैं पुरुष तुमको कह रहे! ॥२६५॥

२३

जो जाति अतिथि-सेवा को महत्व नहीं देती। वह सच है, मनुष्यत्व किसे कहते हैं नहीं समझती। बंधुओ! आपके द्वार पर आप आये हुए अतिथि का सत्कार नहीं करते हो इसी लिये मनुष्य आपको कृपण, निर्लज्ज, निर्मम कहते हैं।

तुम खा रहे हो सामने सुन्दर पेट तुम हो भर रहे
मारे क्षुधा के रो रहा जन पर क्या नहिं लख रहे!
अभ्यर्थना आतिथ्य तुम अपने जनों की कर रहे
कोई अपरिचित आगया मनुहार तक नहीं कर रहे॥१२६॥

मेरे बंधुओ। आप भोजन कर रहे हैं पेट बैभव कर रहे हैं और आपके समक्ष दीन मनुष्य रो रहा है परन्तु आपके हृदय में उसका रोदन सुनकर देखकर भी करुणा उत्पन्न नहीं होती। आप अपने ही सबंधियों की सेवा शुश्रूषा आज तक करते रहे हैं अपरिचित व्यक्ति की आप मिथ्या मनुहार भी नहीं करते।

दान।

भूपेन्द्र नरपति मेघरथ कैसे सुदानी हो गये!
इनसे क्षुधा व खेद को भी थे तृषा स्थित हो गये!
देते हुये अब दान कौड़ी किसको आते प्राय हैं?
क्या काम रक्षाधन आयगा,धन में न जिसका भाव है॥१२७॥

महादानी सम्राट मेघरथ को कौन नहीं जानता है। मांस भक्षी बाज की क्षुधा को शान्त करने के लिये कपोत के स्थान में

ये अपने को तोल कर देने को प्रस्तुत हुये थे। आज उन्हीं के अनुयायियों के प्राण एक कौड़ी का दान देने में निकल जाते हैं! यह तन और यह धन किस कार्य में आवेगा, जिस क्षण इस तन में प्राण नहीं रहेंगे।

सिगरेट, माचिस, पान में तुम हो करोड़ों खो रहे
पर दीन, दुखिया बन्धु को लखते हुये हो रो रहे।
तुम जैन हो या वर्णशंकर जैन के, तुम कौन हो?
ऐसे दयाहत् पूर्वजों की तो प्रजा नहिं, कौन हो? ॥२६८॥

व्यर्थ व्यय में आपका करोड़ों का धन जा रहा है, परन्तु दीन, दुःखी की सहायता आप करते हुये हिचक रहे हैं। आपके ये चरित्र देखकर शंका होती है कि आप जैन हैं या जैन पुरुषों के वर्ण शंकर (गोलक) हैं! क्योंकि ऐसे दयाहीन पुरुष वैसे दयावान जैन पूर्वजों की कभी भी संतान नहीं हो सकते।

कोटीश हो, लखेश हो, चाहे भले अलकेश हो,
सकता न कर तुलना तुम्हारी आप यदि अमरेश हो,
क्या काम का है वह मनुज पर हित न हो जिसने किया?
धन भी गया, वह भी गया, उपकृत न दीनों को किया॥२६९॥

आप चाहे भले कितने भी संपत्ति शाली क्यों न होवे, इन्द्र भी आपके समक्ष तुच्छ क्यों न होवे परन्तु वह मनुष्य किस अर्थ का जिसने जीवन में परोपकार नहीं किया हो वह भी काल का भोजन बना, उसका वह धन, जिसमें वह इतना

अनुरक्त था चला गया (नष्ट हो गया या उसको छोड़ना पड़ा) और दीन, असहाय पुरुषों की सहायता न की।

संयम

तुम जैन हो ? तुम ही बताओ हम किसे जैनी कहें ?
जो राग-द्वेषी द्वन्द्वेषी हो उसे जैनी क्यों कहें ?
मन में बसा है मदनमुर तन में रमा रस-पैरा है !—
क्या जैन होने के तुम्हारे चिह्न ये ही शेष हैं ।।१ ।।

अगर आप अपने को जैन समझते हैं तो कृपया बतलाइये। जैन किस पुरुष को कहना चाहिए, जो राग-द्वेष का सेवन करता हो क्या उसको जैन कहा जाय ? आप कामी रसिक और व्यसनी हैं। क्या आप अपने को केवल इन्हीं लक्षणों के आधार पर जैन समझते हैं।

मन पर तुम्हारा वश नहीं वश चक्षु पर रहता नहीं,
जिह्वा तुम्हारी पर तुम्हारा वश कहीं चलता नहीं ।
ये कर्ण भी स्वच्छन्द हैं यह गन्ध-कामी नाक है
उर में तुम्हारे रति की रहती लगी अभिलाष है।।२ १।।

मन, चक्षु और जिह्वा आपके वश में नहीं और नासिका और कर्ण भी स्वच्छन्द हैं अर्थात् इन्द्रियों पर आपका तनिक भी अधिकार नहीं। हृदय में प्रति क्षण रतिभोग की अभिलाषा जाग्रत रहती है।

जब तक न संयम भावनाएँ आप में जग जायँगी,
कल्याण की तब तक न कोई आश भी दिखलायगी।
संयम-नियम तुम खो चुके, शैथिल्य-प्राणा हो चुके;
तुम पूर्व अपने मरण के चित्यास्थ सब विधि हो चुके॥२०२॥

जब तक आप इन इन्द्रियों को नहीं जीतेंगे, तब तक आपको अपने कल्याण की आशा नहीं बाँधनी चाहिए। इन्द्रियों पर (का) अधिकार नहीं, जीवन में नियमितता नहीं रही, आचार-चरित्र में ढीले पड़ गये—आप इस प्रकार अपने को जीवित स्थिति में ही चिता (चित्य) पर रख चुके हैं।

शील

हा! शील का तो क्या कहें? हा शील शर्दी खा गया।
वत्सर अनेकों हो गये, पर स्वस्थ नहिं पाया गया।
अब तो तुम्हारा दोष क्या, जब बीज भी अब है नहीं।
क्या नाथ! कोई चीज! बिन बीज होती है नहीं?॥२०३॥

ब्रह्मचर्यव्रत के विषय में तो यहाँ कुछ भी कहना व्यर्थ है, क्योंकि उस व्रत को शर्दी लग गई और अनेक वर्ष व्यतीत होने पर भी वह अब तक स्वस्थ नहीं हो सका। शर्दी खाकर जब शील का बीज ही चला गया तब ऐसी स्थिति में हम जैनी अगर शीलवान न हों तो इसमें हमारा दोष भी क्या है। हे परमात्मन्! क्या संसार में बीज के अभाव में कोई वस्तु उत्पन्न ही नहीं होती है।
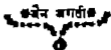
जिस शील से तुम शील पर ऊँचे कभी थे चढ़
चढ़ कर उसी शीलता से पर थे मोक्ष जाने को बढ़ !—
गिर कर उसी शीलता से तुम आज दूषित हो गये !
संसार के तुम रज-कणों में चूर्ण हो कर खो गये ।।१४।।

जिस महत्वपूर्ण शील का आप लोग इतनी ऊँचाई तक पालन कर रहे थे और जिसका गहरा परिपालन कर आप मोक्ष पाने की चेष्टायें कर रहे थे उसी शील को खोकर इतने भ्रष्ट एवं पतित हो गये कि आपके आदर्श जीवन का अन्त ही हो गया ।

पूर्वजों में सन्देह

जिन पूर्वजों की देह से सम्भव हुए यह देह हैं
उन पूर्वजों के वाक्य में होता हमें संदेह है !
मतिभ्रम हुआ अथवा हमारी बुद्धि कुंठित हो गई !—
प्रस्थान की तैयारियें अथवा अमंगलिक हो गई ! ।।१५।।

हम पूर्वजों की सन्तान होकर पूर्वजों के वाक्यों में (कथनों में) संदेह करने लगे हैं (यह कितनी लज्जा की बात है)। हमारी बुद्धि नष्ट हो गई या भ्रमित हो गई या ये हमारे नाश के चिन्ह होने के लक्षण हैं कि जिससे इच्छा न होने पर भी इस संसार से रवाना होना पड़ेगा ।

इतिहास अनुभव का किसी भी जाति का साहित्य है
अनुभव किसी का भोगना उसका विजय आदित्य है ।

हमको न जाने क्या हुआ, क्या मत हमारी खो गई।
साहित्य ऐसे आप्त में शंका हमें क्यों हो गई॥२०६॥

जाति के अनुभव का इतिहास ही उस जाति का इतिहास है। जिस जाति के पास अपने अनुभव का लेखा नहीं, उस जाति का भाग्यसूर्य अस्त ही समझिये। ज्ञात नहीं होता, हमारी बुद्धि नष्ट हो गई या कुछ ऐसा ही और हो गया। ऐसे कल्याणकारी साहित्य के प्रति आज हम इतने शंकाशील हैं, इसका क्या कारण है?

नव कूप कोई खोद कर तत्काल जल क्या भर सका?
तत्काल कर कोई कृषी नहिं है क्षुधा को हर सका।
क्या सपदा पैतृक कभी होती किसी को त्याज्य है?
कुलपूत भाजक के लिये तो भाज्य यह अभिभाज्य है॥२०७॥

क्या किसी ने यह सुना है कि कोई तृषित तत्काल कूप खोद कर, उस नव खनित कूप का पानी पीकर अपनी तृषा शांत कर सका है। यह आज तक तो संभव नहीं हो सका। दूसरों के अनुभव-धन से लाभ उठाने में हमारा कल्याण है। क्या पुत्र के निकट अपने माता-पिता की संपत्ति छोड़ने योग्य है? वह संपत्ति कुलपुत्र के द्वारा उपभोग में ली जानी ही चाहिए।

आडम्बर

वैसा न अनुभव आज है, वैसी कोई बात है।
वैसी न अब है चन्द्रिका, श्यामा अमा कुहुरात है।

फिर भी बनाकर दीपिका कर लोग तम हैं हर रहे
है प्राण तो उनमें नहीं, पर शव उठा कर चल रहे।।१०८।।

उस महान पूर्वजों जैसा न तो हमारा अनुभव ही है और वैसे हमारे में गुण और गौरव भरा अतीत जैसा यह वर्तमान युग भी चमत्कारपूर्ण नहीं। फिर भी वर्तमान युग में फैले हुए अंधकार को दीपक जला कर नष्ट करने की चेष्टायें कर रहे हैं, हमारी ये चेष्टायें इस भवन के समान हैं—देह में प्राण तो नहीं रहते और देह को उठा कर लिये फिर रहे हों।

केचिम्ब दंभ से कभी संसार चल सकते नहीं;
शवको भले पकड़े रहो पर प्राण आ सकते नहीं।
आडम्बरों के शव जलाओ तब कहीं जीवन रहे,
है नीर तो सरमें नहीं पंकज वहाँ पर रह रहे ।।१०९।।

मृत शरीर को लेकर कितने भी मिथ्या चेष्टाओं से उस में प्राण नहीं आ सकते। इन मिथ्या आडम्बरों के नष्ट करने पर ही जीवन को बचाने का अवसर मिलेगा। सरोवर के जल क्षीण होने पर कमल कैसे खिले रह सकते हैं? अर्थात् सर में जल के शुष्क होने के क्रम के साथ ही कमल भी मुर्झाने लग जाते हैं।

दम्भ-पाखण्ड

हम जप हैं लेवत्व तो हम में नहीं हरिनाम को।
हम खोजते हैं रात-दिन रति-स्पर्श में आराम को।

जल छान पीने में अहो ! जैनत्व सारा रह गया !
काँदे, लपुन के त्याग में बस त्याग समुचित रह गया ॥३१०॥

बड़े अचम्भे की बात है कि हम में नाम मात्र को भी जैनत्व नहीं है फिर भी हम जैन हैं। कामनियों के सहवास के हम त्यागे हैं, वहीं हमारे लिये आराम है। वस्तुतः सत्य तो यह है कि जल छान कर पीने में सारे जैन धर्म का सार आ गया और काँदे लपुण के त्याग में सर्व त्याग आ गया।

अभिमान सच्चे जैन होने का न फिर भी छोड़ते,
मिथ्या वरण हो भ्रम, हम तृण एक नहिं हैं तोड़ते !
इस दम्भ में, पाखण्ड में बस दम हमारा जायगा,
पाखण्ड काली रात्रि में जैनत्व शशि छिप जायगा ॥३११॥

इतना होने पर भी हम अपने आपको सच्चा जैनी समझते हैं। मिथ्या दिखावे को नष्ट करने के लिये तनिक भी यत्न नहीं करते। इस मिथ्या गर्व और पाखण्ड में ही हमारी जैन समाज का अन्त हो जायगा और जैन धर्म इस पाखण्ड की काली रात्रि के पूर्ण प्रकट होने पर चन्द्रमा के सदृश छिप जायगा।

हम में न अब वह तेज है, त्रिभुवर ! नहीं वह शक्ति है;
हम में न वह व्यक्तित्व है, हम अब नहीं वे व्यक्ति हैं।
श्रीमत, धर्मी, बुद्धि शाली वैसे न पठित योग्य हैं,
पर दम्भ तो मिथ्या हमारा देखने ही योग्य हैं !!! ॥३१२॥

फिर भी जलाकर दीपका कर स्नेह तम है हर रहे
है प्राण तो उनमें नहीं पर शव उठा कर चल रहे॥१८॥

उन महान पूर्वजों जैसा न तो हमारा अनुभव ही है और वैसे हमारे न गुण और गौरव भरा अतीत जैसा यह वर्तमान युग भी प्रकाशपूर्ण नहीं। फिर भी वर्तमान युग में फैले हुये अंधकार को दीपक जला कर नष्ट करने की चेष्टायें कर रहे हैं; हमारी ये चेष्टायें इस प्रकार के समान हैं—देह में प्राण तो नहीं रहते और देह को उठा कर लिये फिर रहे हो।

कोशिश ऐसे से कभी संग्राम जय सकते नहीं;
शवको भले पकड़े रहो पर प्राण आ सकते नहीं!
आडम्बरों के शव जलाओ तब कहीं जीवन रहे
है नीर तो सरमें नहीं पंकज वहाँ पर जड़ रहे ॥१९॥

मृत शरीर को लेकर जिनने ऐसी मिथ्या चेष्टाओं से तम में प्राण नहीं आ सकते। इन मिथ्या आडम्बरों के नष्ट करने पर ही जीवन को बचने का अवसर मिलेगा। सरोवर का जल हीन होने पर कमल कैसे खिले रह सकते हैं? अर्थात् सर में जल के शुष्क होने के क्रम के साथ ही कमल भी मुर्झाने लग जाते हैं।

दम्भ-पाखण्ड

हम जन हैं वैभव को हम में नहीं हरिनाम को!
हम खोजते हैं रात-दिन रति-पार्श्व में आराम को।

होगी ? क्या हम इस स्थिति में ही रहकर अधिक जीवित रह सकेंगे ? हे ईश्वर ! आप हमारे हैं और हम आपके हैं, इस सबन्ध को तो विचारिये।

हे नाथ ! भारत हीन है । संतान इसकी दीन है।
बलहीन है, मतिहीन है, हा ! घोर विषयालीन है ।
सद्बुद्धि देकर नाथ ! अब हमको सजग कर दीजिये।
यह सतमस विपदावरणका नाथ ! अब हर लीजिये ॥३१५॥

हे ईश्वर ! भारतवर्ष सर्व प्रकार से आज पतित है। इसकी संतान बल-बुद्धिहीन और कुव्यसनी है। आप सद्बुद्धि देकर देश को जाग्रत बनाइये और घनो-छायी हुओ विपत्तियों के अंधकार को अब नष्ट कर दीजिये।

होकर पिता क्या सुध तुम्हें लेनी नहीं है पुत्र की ?
अपयश तुम्हारा क्या नहीं, अपकीर्ति हो जब गोत्र की ?
हम हैं पुरातन भक्त तेरे, आज भी हम भक्त हैं,
सब भाँति विषयासक्त होकर भी तुम्हीं में रक्त हैं ॥३१५॥

हे भगवन् ! आप पिता हैं और हम पुत्र ! क्या पिता को पुत्र की सुध नहीं लेनी चाहिए ? संतान, परिवार को अपकीर्ति से क्या आपको अपकीर्ति नहीं होती ! हम अनंत काल से आपके परम भक्त रहते आये हैं और आज भी, यद्यपि सर्व ही प्रकार से हम दुर्व्यसनी और विषयी हैं, आप ही के भक्त हैं, एक मात्र आप में ही हमारी श्रद्धा है, भक्ति है।

हे परमात्मन्! हम पूर्वजों के समान न तो धनी हैं, न बुद्धिमान् हैं न तेजस्वी और शक्तिशाली हैं और न विद्वान् और धर्मात्मा और न हमारा व्यक्तित्व ही इतना ऊंचा है— संक्षेप में यह समझिये कि आप हम उन पूर्वजों जैसे जैन नहीं हैं फिर भी हमारा अब होने का दृश्य देखने योग्य है।

आवेदन

कितने दया के पात्र हैं दृग्गा दया सागर प्रभो!
कैसी दुरवस्थागत दशा हा! हो गई मेरे विभो!
हे नाथ! तुम सब जानते हो मैं क्या तुम्हें सूचन करूँ।
पर आँसुओं तुमको कहो किसको भला तुम बिन कहूँ॥२१४॥

हे दयानिधि परमात्मन्! आपने देख लिया कि हमारी दशा कितनी दयनीय है कितनी पतित होकर निराशा की सीमा तक पहुँच गई है। हे ईश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं आप से क्या छिपा है, मैं आपको क्या नवीन कहूँ। परन्तु दुःख आपके अतिरिक्त किसे सुनाऊं।

हे नाथ! पतित भी रहेंगे भक्त होकर आपके?
सब कुछ हमारे आप हैं हे नाथ! हम हैं आपके।
क्या नाथ! दुर्दिन देश के दूरतर न होने पायेंगे?
तो नाथ! अब तुम ही कहो कौन अधिक हम पायेंगे॥२१५॥

हे भगवान्! इस प्रकार हम पतन के गड्ढे में कब तक पड़े सड़ते रहेंगे? क्या देश की स्थिति सुधर अच्छी नहीं

होगी ? क्या हम इस स्थिति में ही रहकर अधिक जीवित रह सकेंगे ? हे ईश्वर ! आप हमारे हैं और हम आपके हैं, इस सबन्ध को तो विचारिये।

हे नाथ ! भारत हीन है । संतान इसकी दीन है।
बलहीन हैं, मतिहीन है, हा ! घोर विपयालीन है।
सद्बुद्धि देकर नाथ ! अब हमको सजग कर दीजिये।
यह सतमस विपदावरणका नाथ ! अब हर लीजिये ॥२१५॥

हे ईश्वर ! भारतवर्ष सर्व प्रकार से आज पतित है। इसकी संतान बल बुद्धिहीन और कुव्यसनी है। आप सद्बुद्धि देकर देश को जाग्रत बनाइये और घनोच्छायी हुई विपत्तियों के अंधकार को अब नष्ट कर दीजिये।

होकर पिता क्या सुध तुम्हें लेनी नहीं है पुत्र की ?
अपयश तुम्हारा क्या नहीं, अपकीर्ति हो जब गोत्र की ?
हम हैं पुरातन भक्त तेरे, आज भी हम भक्त हैं,
सब भाँति विपयासक्त होकर भी तुम्हीं में रक्त हैं ॥२१५॥

हे भगवन् ! आप पिता हैं और हम पुत्र ! क्या पिता को पुत्र की सुध नहीं लेनी चाहिए ? संतान, परिवार की अपकीर्ति से क्या आपकी अपकीर्ति नहीं होती ! हम अनंत काल से आपके परम भक्त रहते आये हैं और आज भी, यद्यपि सर्व ही प्रकार से हम दुर्व्यसनी और विषयी हैं, आप ही के भक्त हैं, एक मात्र आप में ही हमारी श्रद्धा है, भक्ति है।

जब-जब बढ़ा अतिचार जग में, जन्म तुम धरते रहे
निज भक्तजन के दुःख को तुम हो सदा हरते रहे।
अब नाथ ! बनकर वीर जग में जन्म धारण कीजिये
पुष्पित, फलान्वित दोषमतवन को मूल से खो दीजिये॥२१७॥

जब जब अत्याचार बढ़ा आप अवतार धारण करते रहे और इस प्रकार निज भक्तों का संकट निवारण करते रहे। हे भगवन् ! महावीर बनकर एक बार और मनुष्यदेह धारण कीजिए और फले, विशाल वन के सदृश फैले हुये इस दुःख के वन को उन्मूल करिये।

परतंत्र भारतवर्ष को स्वाधीन अब कर जाइये
हम भक्त होकर आपके किसको भजें बतलाइये ?
बढ़ता हुआ गोवध तुम्हें कैसे सहे ! हम दीन हैं !
दयहीन दयानिधि! हो रहे क्यों! जबकि हम दयनीय हैं॥२१८॥

हे परमात्मन् ! इस पराधीन हुये भारत देश को स्वतंत्र बना जाइये हम एक मात्र आपके भक्त हैं फिर कहिये हम किसका भजन करें ? दुःख में और किसका स्मरण करें ? हे भगवन् ! यह बढ़ता हुआ गोवध आपको किस तरह सहन हो रहा है ! हम इस समय सर्व प्रकार से दया के पात्र हैं फिर भी आप दयासागर होकर दया रहित कैसे बन गये हैं ? दया क्यों नहीं करते ?

फिर हे दयामय ! रगरगों में प्रेम-रस भर जाइये
हम पतित होकर हो रहे पशु, मनुज फिर कर जाइये।

गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अब दुख अधिक नहि दीजिये, हर लीजिये विपदावरण॥३१९॥

हे भगवन् ! अवतार धारण कर एक बार पुनः इन दयाहीन हुये नर हृदयों में दया का सचार कर जाइये। हम सर्व प्रकार पतित होकर पशु सदृश हो रहे हैं, हमें फिर से मनुष्य बना जाइये। आप गोपाल का अवतार लेकर फिर कब संसार में जन्म लेंगे ? हे भगवत् ! अब हमको अधिक न सताइये, हमारी विपत्तियों को नष्ट कर दीजिये।

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुख नष्ट हो,
यह सह चुका है दुःख अति, इसको न अब तृण कष्ट हो।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय है,
पर आपके बल के बिना तो हम सदा असहाय हैं॥३२०॥

हे ईश्वर ! हमारी यही प्रार्थना है कि हमारा देश स्वतन्त्र हो, इसके सभी दुःखों का अब अत हो, अत्यन्त दुःख झेल चुका है, अब आगे तृण सदृश भी इसको कोई कष्ट न हो। हम भी हमारा बल पहुचते यत्न ही कर रहे हैं, फिर भी आपके बल के बिना हम सदा असहाय हैं।

कैसे कहूँ भावी यहाँ ? कैस सजग परिजन करूँ ?
मैं आप तिमिराभूत हूँ, कैसे तिमिर में पग धरूँ।
जिस युक्ति से भावी कहूँ, वह युक्ति तो बतलाइये,
दैवज्ञ मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही लिखवाइये॥

जब-जब बढ़ा अतिचार जग में जन्म तुम धरते रहे
निज भक्तजन के दुःख को तुम हो सदा हरते रहे।
अब नाथ! बनकर वीर जग में जन्म धारण कीजिये
पुष्पित फलान्वित दुःखवन को मूल से खो दीजिये॥१४॥

जब जब अत्याचार बढ़ा आप अवतार धारण करते रहे और इस प्रकार निज भक्तों का संकट निवारण करते रहे। हे भगवन्! महावीर बनकर एक बार और मनुष्यदेह धारण कीजिए और फले विशाल वन के सदृश फैले हुये इस दुःख के वन को उन्मूल करिये।

परतंत्र भारतवर्ष को स्वाधीन अब कर जाइये
हम भक्त होकर आपके किसको यहाँ बतलाइये?
बढ़ता हुआ शोषण तुम्हें कैसे दिखे! सह्यनीय है।
दयनीय दयानिधि हो रहे क्यों जबकि हम दयनीय हैं॥१५॥

हे परमात्मन्! इस पराधीन हुये भारत देश को स्वतंत्र बना जाइये हम एक मात्र आपके भक्त हैं फिर कहिये हम किसका भजन करें? तुझ में और किसका स्मरण करें? हे भगवन्! यह बढ़ता हुआ शोषण आपको किस तरह सहन हो रहा है! हम इस समय सर्व प्रकार से दया के पात्र हैं फिर भी आप दयासागर होकर दया रहित कैसे बन रहे हैं? दया क्यों नहीं करते?

फिर से दयामय! वाणी में प्रेम-रस भर जाइये
हम पतित होकर हो रहे भ्रष्ट, मनुज फिर कर जाइये।

गोपाल बनकर नाथ ! कब होगा तुम्हारा अवतरण ?
अब दुख अधिक नहिं दीजिये, हर लीजिये विपदावरण॥३१९॥

हे भगवन् ! अवतार धारण कर एक बार पुनः इन दयाहीन हुये वर हृदयों में दया का संचार कर जाइये । हम सर्व प्रकार पतित होकर पशु सदृश हो रहे हैं, हमें फिर से मनुष्य बना जाइये । आप गोपाल का अवतार लेकर फिर कब संसार में जन्म लोगे ? हे भगवन् ! अब हमको अधिक न सताइये, हमारी विपत्तियों को नष्ट कर दीजिये ।

स्वाधीन भारतवर्ष हो, इसके सभी दुख नष्ट हो,
यह सह चुका है दुःख अति, इसको न अब तृण कष्ट हो ।
हम भी हमारी ओर से करते यहाँ सदुपाय है,
पर आपके बल के बिना तो हम सदा असहाय हैं॥३२०॥

हे ईश्वर ! हमारी यही प्रार्थना है कि हमारा देश स्वतन्त्र हो, इसके सभी दुःखों का अब अंत हो, अत्यन्त दुःख झेल चुका है, अब आगे तृण सदृश भी इसको कोई कष्ट न हो । हम भी हमारा बल पहुंचते यत्न ही कर रहे हैं, फिर भी आपके बल के बिना हम सदा असहाय हैं ।

कैसे कहूँ भावी यहाँ ? कैसे सजग परिजन करूँ ?
मैं आप तिमिराभूत हूँ, कैसे तिमिर में पग धरूँ ।
जिस युक्ति से भावी कहूँ, वह युक्ति तो बतलाइये,
दैवज्ञ मैं तो हूँ नहीं, यह आप ही लिखवाइये ॥

हे परमात्मन् ! मैं मेरे देश का भविष्य क्या किस प्रकार लिखूँ और मेरे देशवासी बांधवों को किस प्रकार फिर जाग्रत करूँ ? जब कि मैं आप स्वयं अज्ञान होकर अंधकार में भटक रहा हूँ। बतलाइये कैसे धैर्य रक्खूँ ! हे भगवन् ! वह उपाय कहिये जिस उपाय से मैं भविष्य का वर्णन कर सकूँ ! मैं ज्योतिषी नहीं हूँ वह आप ही मुझ से लिखवाइये।

भविष्यत्-खण्ड ।

लेखनी ।

हा ! गा चुकी है लेखनी ! तू भूत, सम्प्रति रो चुकी।
कर ध्यान भावी का अभी से हीन सज्ञा हो चुकी ?
विस्मृत न कर व्रत लेखनी ! तुझको न व्रत क्या स्मृत रहा ?
मैं क्या लिखूँ ! कैसे लिखूँ ! मुझसे न लिखते बन रहा !!१॥

हे लेखनी ! गौरव शाली भूतकाल का वर्णन तू ने सोल्लास किया । वर्तमान का वर्णन तूने रोते रोते किया । भविष्य का ध्यान आते ही क्या तुझको मूर्च्छा आ गई ? तेरी यह प्रतिज्ञा कि जैन जगती के तीनों कालों का वर्णन करके तू विश्राम लेगी—क्या तू भूल गई ? लेखनी कहती है, 'मैं क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ ! मुझसे किसी भी प्रकार लिखते नहीं बन रहा है।'

लेखनी के उद्गार:—

दिनकर दिवसहर हो गया ! रजनीश कुहुकर हो गया !
जलधर अनलसर हो गया ! मृदु वायु विषधर हो गया !
रातें दुरातें हो गई ! भाई विभो ! रिपु हो गये !
आशा दुराशा हो गई ! अब धर्म पातक हो गये !!२॥

राजा प्रजारिपु हो चुके ! श्रीहत धनपति हो चुके !
जोगी कुभोगी हो चुके ! रोगी निरोगी हो चुके !
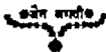
हत् शील हा ! हतधर्म हा ! हतकर्म भारत हो चुका ।
हो जायगा आगे न क्या, जब आज ऐसा हो चुका ॥४॥

सूरज चन्द्रमा समुद्र वायु, रात्रि छाया और धर्म सर्व अपने अपने स्वभाव और धर्म को छोड़ कर विपरीत प्रकृति हो गए हैं । राजा प्रजा के शत्रु, बलवान निर्धन भोगी दुःखसभी तथा जो स्वस्थ थे आज रोगी हो गये हैं । भारतवर्ष धर्म से, कर्म से और सदाचार से विहीन हो चुका है । जब इस समय भी यह स्थिति है तब नहीं जाना जा सकता कि आगे जाकर यह और किस अवगति को प्राप्त होगा ।

अवसर कुअवसर आज है ! हा ! बुद्धि भी सविकार है ।
वैराग्य विषया-भोग मत्सर, राग के व्यापार हैं ।
सर्वत्र व्यभिचार, हिंसाचार, अत्याचार हैं ।
तुम में समाकर हो गये कलुषमय पापाचार हैं ॥५॥

अब भी समय है चेतने का यत्न अब भी कर सको
अब भी नरों में शक्ति है जीवन मरण को कर सके ।
जो हो चुका सो हो चुका अब ध्यान उसका मत करो
पापी अभागत के लिये सब मंत्रणा मिलकर करो ॥६॥

जिस समय को अवसर समझते हैं वही कुअवसर निकल जाता है । बुद्धि में विकार आ गया है । विषमता, विषय-वासना राग द्वेष तथा अत्याचार हिंसायें और निकृष्ट आचरण सर्वत्र व्यापक हुवे-से दिखाई दे रहे हैं । समस्त पापा

चरण तुम्हारी शरण पाकर कृतकृत्य हो गये। परन्तु फिर भी चाहो तो चेत सकते हो, अभी तो उपाय करने का समय है। इस अवदशा में भी तुम्हारी रगों में ताकत है। मृत्यु को अभी भी तुम जीवन बना सकते हो। भूत काल का तनिक भी विचार मत करो। आने वाले अधकारपूर्ण भविष्य के लिये सर्व जन एकत्रित होकर विचारण करो।

उद्‌बोधन

मेरे दिगम्बर भाइयो! श्वेताम्बरो! मेरी सुनो,
मैं भी सहोदर आपका हूँ, आज तो मेरी सुनो।
पारस्परिक रण द्वन्द्व को हम रोक दें बस एक दम,
कधे मिलाकर साथ में आगे बढा दें रे! कदम ॥६॥

हे मेरे दिगबर तथा श्वेताम्बर भ्रातागण! मैं भी आप ही का एक भाई हूँ। कृपा करके मेरे कथन को भी श्रवण कीजिये। 'बस हम एक दम पारस्परिक कलह का अत कर दें और कंधे से कधा जुडा कर आगे कदम बढा दे।'

हम पुरुष हैं, पुरुषार्थ करना ही हमारा धर्म है,
पुरुषार्थ करने पर न हो वह कौन ऐसा कर्म है?
होकर मनुज नैराश्य को नहिं पाश लाना चाहिए,
नर हैं, नहीं तन में कभी खर भाव आना चाहिए ॥७॥

पुरुषार्थ-धर्म का पालन करने वाला ही पुरुष कहलाता है। हम पुरुष हैं। पुरुषार्थ करने पर ऐसा कौन है असभव कर्म, जो
२४

नहीं किया जा सकता है। मनुष्य होकर हम को निराश नहीं होना चाहिए। हमारे वर्गों में गद्दारों के भाव कभी भी नहीं आना चाहिए। गद्दारों के भाव लाकर हम परमात्मा के इस व्यक्तम् वर रूप का अपमान करते हैं।

हम ही ऋषभ, परनाथ हैं सुभग भरत, बलराम हैं
हम ही युधिष्ठिर, भीम हैं, घनश्याम, अर्जुन राम हैं।
कंधे मिलाकर हम चलें फिर क्या नहीं हम कर सकें?
अरिराज के सारे शिविर सम्पूर्ण जड़ से हर सकें।।८।।

भगवान् ऋषभ देव और पार्श्वनाथ तथा चक्रवर्ती भरत और वासुदेव कृष्ण और बलराम युधिष्ठिर और भीम, अर्जुन और श्रीरामचन्द्र हम ही तो हुये हैं और हम ही हो सकते हैं। संगठित होकर अगर हम सर्व आगे बढ़ें तो क्या नहीं कर सकते हैं? यमराज के बने हुये भयंकर शत्रुओं को तत्काल कर सदा के लिये नष्ट कर सकते हैं।

पारस्परिक इस द्वेष के ये तीर्थ, आगम मूल हैं,
अमृत गरल है हो रहा! किसकी यहाँ पर भूल है?
मतिमन्द हम हैं हो रहे! हम द्वेष में हैं सन रहे!
इस हेतु आगम तीर्थ भी सब नाश-कारक बन रहे।।९।।

तीर्थ स्थल और साहित्य को आज हमारे पारस्परिक झगड़े के कारण माने जाते हैं। यहाँ यह सोचने की आवश्यकता है कि अमृत विष के समान क्यों हो रहा है। हम स्वयं बुद्धिमन्द

हो गये हैं तथा द्वेष जैसे दुर्गुण से सयुक्त है। तब भला कल्याणकारी तीर्थ और आगमों की आड़ लेकर हम सर्वनाश को मोल लेवें, इसमें इनका क्या दोष है ?

'जिनराज वाङ्मय' नाम की सस्था प्रथम स्थापित करें,
दोनों दलों के ग्रन्थ जिन-साहित्य में परिणित करें।
संमोह, पक्षापक्ष का कोई नहीं फिर काम हो,
ऊपर किसी भी ग्रन्थ के नहिं साम्प्रदायिक नाम हो ॥१०॥

सर्व प्रथम जिनराज वाङ्मय' नामक एक साहित्य सस्था स्थापित करें। और वहाँ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों साहित्य का सग्रह हो। इस सस्था से प्रकाशित होने वाले किसी भी ग्रथ पर साम्प्रदायिक नाम नहीं होना चाहिए। इस सस्था में पक्षापक्ष को स्थान ही नहीं मिलना चाहिए।

ये साम्प्रदायिक नाम यों कुछ काल में उड़ जायँगे,
सतान भावी को खटकने ये नहीं कुछ पायेंगे।
यों एक दिन जाकर कभी क्रम एक विध बन जायगा,
सर्वत्र विद्याभ्यास में यह भाव ही लहरायगा ॥११॥

समय पाकर ये सारे साम्प्रदायिक नाम नष्ट ही हो जावेंगे। आगे आने वाली सतति को इससे पश्चात्ताप नहीं होगा। इस प्रकार एक समय जाकर साहित्य का क्रम एक-सा हो जावेगा और सर्वत्र विद्याध्ययन में यही सामंजस्य भरा-पूरा रहेगा।

है भिन्न पुस्तक, भिन्न शिक्षक, भिन्न हैं सब भोतियें;
होती न क्या पर स्कूल में है एक भाषा बोलियें।
विद्यार्थियों में किस तरह होता परस्पर मेल है!
हो भिन्न भी यदि न मिलें बढ़ता न मन में मैल है॥१२॥

पाठशाला में कक्षायें पुस्तकें और शिक्षक अपनी अपनी जगह भिन्न-भिन्न होते हैं। फिर भी पढ़ाने का ढंग और भाषा का माध्यम सब कक्षाओं में एक ही रहता है। विद्यार्थियों में परस्पर अनुपम संगठन होता है। कक्षायें भिन्न होने से विद्यार्थियों के मन में पारस्परिक द्वेष नहीं बढ़ता है।

यदि साम्प्रदायिक मोह हम इन मंदिरों से छोड़ दें
सब साम्प्रदायिक स्वत्व को हम तीर्थ में भी छोड़ दें—
फिर देखिये कृतयुग यही कलियुग आखिर बन जायगा
यह साम्प्रदायिक रोग फिर क्षण मात्र में उड़ जायगा॥१३॥

मन्दिर और तीर्थों के साथ जो हमारा साम्प्रदायिक ममत्व और अधिकार लगा हुआ है अगर यह हटा दिया जाय तो फिर देखिये यह कलियुग सत्युग-सा सुखदायी प्रतीत होगा और साम्प्रदायिक रोग उन्मूलित ही हो जायगा।

यह काम यदि हो जाय तो, बस धर्म विजय सर्व होगई।
भ्रातृत्व इसमें आगया यह फूट की बस खो गई?
कवि शेष बनस मास्य का फिर क्या हमारा कर सके?
हम सा सुखी संसार में फिर कौन बोलो रह सके!॥१४॥

साम्प्रदायिक रोग के नष्ट होते ही सर्व प्रकार की विजय प्राप्त हो गई, फूट जड़ से उखड़ गई, भाईचारा प्रतिष्ठित हो गया। हमारे उस सौभाग्य का वर्णन करने में कवि और स्वयं शेषनाग भी असफल रहेंगे। संसार में हमारे समान कोई सुखी नहीं मिल सकेगा।

हाँ, देखने ऐसा दिवस दृढ़ यत्न होना चाहिए;
बलिदान तक के भी लिए कटिबद्ध होना चाहिए।
हे नाथ! दो सद्बुद्धि, जिससे सहज ही यह काम हो,
फिरसे हमारा जैन-जग अभिराम, शोभा-धाम हो॥१५॥

उस सुदिन को देखने के सुदृढ़ यत्न किये जाने चाहिए। प्राण देने का भी अवसर आ जावे तो तैयार रहना चाहिए। हे परमात्मन्! हमको सुमति दीजिये, जिससे हमारा साम्प्रदायिक रोग नष्ट करने का कार्य सहज हो जाय और फिर हमारा यह जैन-जगत शोभा का स्थान और अभिनव सुन्दरता प्राप्त करे।

आओ समस्यायें विचारें आज मिलकर हम सभी,
हम दो नहीं, हम शत नहीं, हैं लक्ष तेरह हम अभी।
इतना बड़ा समुदाय बोलो, क्या नहीं कुछ कर सके?
डट जाय तो गिरी राज का समथल धरातल कर सकें॥१६॥

आज भी हम तेरह लाख हैं एक या दो तो नहीं हैं। आओ! सब मिलकर इन उपस्थित विषम स्थितियों पर विचार करें। मनुष्यों का इतना बड़ा संघ क्या नहीं कर सकता? अगर

प्रतिज्ञा कर लें तो हिमालय पर्वत को भी तोड़ कर समतल भूमि बना सकते हैं।

अनुचर सभी हो वीर के, तुम वीर की संतान हो
जिसके पिता, गुरु वीर हो फिर क्यों न वह बलवान हो?
जिनवीर के अनुयायियो! लज्जित न पुरखों को करो
नर हो न आशा को तजो होकर न पशु तुम यों मरो ॥१७॥

भगवान महावीर के अनुयायी हो। उस महावीर की संतान (उसके द्वारा प्रवर्तित धर्म के मानने वाले) हो। जिस पुरुष के पिता और गुरु दोनों अमर वीर हों तो वह बलवान हो इसमें आश्चर्य ही क्या है। हे महावीर के अनुयायियों! पूर्वजों को लज्जित मत करो। नर हो। निराश नहीं बनो। पशुवत जीवन व्यतीत करके मत मरो।

सबके चरण हैं हाथ हैं अवशेष तुम बल-बुद्धि है
तुम तो चरण आगे बढ़ो पुरुषार्थ में बल-सिद्धि है!
पूर्वज तुम्हारे वीर थे तुम भीत, कायर हो गये!
नर के न तुम अब रूप हो तुम रूप पशु के हो गये ॥१८॥

सब के हाथ और चरण हैं। तुम्हें बल और बुद्धि भी है। साहस करके दो कदम उठाकर तुम आगे तो बढ़ो। पुरुषार्थ में बल और सिद्धि रहती है। तुम्हारे पूर्वज वीर थे और आज तुम कायर और डरपोक हो रहे हो। तुम मनुष्य का रूप नहीं हो, पशु का रूप हो।

अवसर पड़े पूर्वज हमारे देखलें तुम्हें कहीं,
मैं सत्य कहता हूँ सखे ! पहिचान वे सकते नहीं।
तन, मन, वचन व्यवहार में वैपर्त्य देखो आ गया,
मनुष्यत्व के अब स्थान में दनुजत्व तुममें छा गया ॥१६॥

अगर तुम्हारे पूर्वज देवयोग से तुमको देख लें, मैं सत्य कहता हूँ, वे तुमको पहिचान नहीं सकते। तुम स्वय देखो, तुम्हारे तन में, मन में, वचन में विपरीतता आ गई है। तुम्हारे में मनुष्यत्व की जगह राक्षसीपन भर गया है।

देखो न विधवायें घरों में किस तरह हैं सड़ रहीं,
सब ठौर तुममें धूम कैसी शिशु प्रणय की बढ़ रही।
खलु ब्रह्मव्रत ही नीम है उत्थान की वैसे अरे,
जब नीम ही दृढ़ है नहीं, मंजिल नहीं कैसे गिरे ?॥२०॥

विधवाओं की तुम्हारे घरों में कैसी दयनीय स्थिति हो रही है। फिर बालविवाह का प्रकोप है। मेरे भाइयो! उत्थान की नीम तो ब्रह्मचर्य्य व्रत के पालन करने में है। जब नीम ही सुदृढ़ नहीं है, तो उसके ऊपर बनी हुई मंजिल कैसे नहीं गिर पड़ेगी ?

आत्म-संवेदन

हे देव! अनुचित प्रणय के सहते कुफल अब तक रहे।
यों मूल अपनी जाति का हम खोदते अब तक रहे।

हा ! इस अधम गढ़ कार्य से हम स्वाद आर्य बन चुके।
जो रह गये आधे अभी यम-दम्य बन पर कस चुके ॥२१॥

हे परमात्मन् अनुचित विवाह प्रथाओं में पड़ कर अब तक हम अपने किये का दुष्परिणाम भोग रहे हैं और इस प्रकार हम अपनी जाति का मूल ही उखाड़ रहे हैं। इस अतिरिक्त अनुचित विवाह प्रथा से हम मृत प्राय: और न्यूनसंख्यक हो चुके हैं इन रहे हुये न्यूनसंख्यकों पर भी यमराज के बंधन लागू हो गये हैं ।

शिशु-पत्नि का कैस भला पति साठ के से प्रेम हो!
सोचो जरा तुम्हीं भला उस ठौर कैसे क्षेम हो!
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का विस्तार फिर हा! क्यों न हो!
हा! अपहरण अपघात हो! हा! भ्रूण-हत्या क्यों न हो! ॥२२॥

बालपत्नि का साठ वर्ष की आयु वाले वृद्धपति से प्रेम कैसे जुड़ सकता है! कष्ट करके कुछ तो सोचो क्या ऐसे दम्पति श्रोत-प्रेम से रह सकते हैं? वहाँ तो व्यभिचार का जन्म होगा। दूषित प्रेम का फैलाव होगा, अपहरण आत्मघात और भ्रूणहत्या जैसी घटनाएँ घटेंगी।

नारी निरंकुश हो रहीं पति मारण अपना रो रहे!
विष पत्नि पति को दे रहीं, पतिदेव मूर्छित हो रहे!
आये दिवस ऐसे कथन सुनते ही हैं रहते अभी!
जब तक न हो ऐसी दशा होगा न कुछ हमसे कभी! ॥२३॥

बालपत्नि स्वच्छन्दता मे रहती है, वृद्धपति अपने भाग्य को दोष देते हैं। बालपत्नि वृद्धपति को विष देती है, पतिराज मूर्च्छित पड़े हुये हैं। हे परमात्मन् आये दिन ऐसी ही दुर्घटनायें सुनते रहते हैं। जब तक तेरी सुदृष्टि नहीं होगी, हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ जावेंगे।

तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
यों आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं।
कारण हमारे पतन के सब हैं निहित इस दोष में।
हे आत्मियों! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष में॥२४॥

हे मेरे बन्धुओ! मैं भली प्रकार सोचकर तथा आवेश में नहीं आकर आप से यह निवेदन कर रहा हूँ कि अच्छी शिक्षा नहीं होने से यह दुर्दशा प्राप्त हुई है। पतन के सर्व कारणों का मूल इसी एक दोष में है।

होता तनिक भी ज्ञान यदि तुममें, न होती यह दशा!
इस हेतु तुम भी मूर्ख हो, नारी तुम्हारी कर्कशा!
शिक्षा बिना मतिघर मनुज उल्लू, निशाचर यक्ष है!
हम इस कथन की पुष्टि में खर लेख लो प्रत्यक्ष है॥२५॥

अगर तुम ज्ञानवान होते तो आज तुम्हारी यह दुर्दशा नहीं होती। यह सोचकर यह कहा जा सकता है कि तुम भी मूर्ख हो और तुम्हारी स्त्रियाँ भी कर्कशायें हैं। बुद्धिवान मनुष्य बिना सुशिक्षा के उल्लू, राक्षस और यक्ष के समान है अर्थात् वह

हा ! इस अधम गत कार्य से हम स्वाद आधे चख चुके।
जो रह गये आधे अभी, यम-दण्ड उन पर कस चुके ।।२१।।

हे परमात्मन् अनुचित विवाह प्रथाओं में पड़ कर आज तक हम अपने किये का दुष्परिणाम भोग रहे हैं और इस प्रकार हम अपनी जाति का मूल ही उखाड़ रहे हैं। इस अहितकर अनुचित विवाह प्रथा से हम मृत प्रायः और न्यूनसंख्यक हो चुके हैं इन रहे हुवे न्यूनसंख्यकों पर भी यमराज के बंधन लागू हो गये हैं।

शिशु-शशि का कैसे भला पति साठ के से प्रेम हो।
सोचो जरा तुम्हीं भला उस ओर कैसे क्षेम हो।
व्यभिचार, अनुचित प्रेम का विस्तार फिर हा! क्यों न हो।
हा! अपहरण अपघात हो! हा! भ्रूण-हत्या क्यों न हो ।।२२।।

बालपत्नि का साठ वर्ष की आयु वाले वृद्धपति से प्रेम कैसे जुड़ सकता है! जरा करके कृपा तो सोचो क्या ऐसे दम्पति आजन्म-प्रेम से रह सकते हैं? वहाँ तो व्यभिचार का जन्म होगा। दूषित प्रेम का फैलाव होगा अपहरण आत्मघात और भ्रूणहत्या जैसी घटनाएं घटेंगी।

नारी निरंकुश हो रहीं पति भाग्य अपना रो रहे।
बिन पत्नि पति को दे रहीं, पतिदेव मूर्छित हो रहे!
आते दिवस ऐसे भयंकर सुनते ही हैं रहते अभी!
जब तक न हो तेरी दया, होगा न कुछ हमसे कभी ।।२३।।

बालपत्नि स्वच्छंदता से रहती है, वृद्धपति अपने भाग्य को दोष देते हैं। बालपत्नि वृद्धपति को विष देती है, पतिराज मूर्छित पड़े हुये हैं। हे परमात्मन् आये दिन ऐसी ही दुर्घटनायें सुनते रहते हैं। जब तक तेरी सुदृष्टि नहीं होगी, हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ जावेंगे।

तुममें सुशिक्षा की कमी का भाव जो होता नहीं—
त्यों आज हमको देखने यह दुर्दिवस मिलता नहीं।
कारण हमारे पतन के सब हैं निहित इस दोष में।
हे आत्मियों! मैं कह रहा हूँ सोचकर, नहि रोष में॥२४॥

हे मेरे बन्धुओ! मैं भली प्रकार सोचकर तथा आवेश में नहीं आकर आप से यह निवेदन कर रहा हूँ कि अच्छी शिक्षा नहीं होने से यह दुर्दशा प्राप्त हुई है। पतन के सर्व कारणों का मूल इसी एक दोष में है।

होता तनिक भी ज्ञान यदि तुममें, न होती यह दशा।
इस हेतु तुम भी मूर्ख हो, नारी तुम्हारी कर्कशा!
शिक्षा बिना मतिधर मनुज उल्लू, निशाचर यक्ष है।
हम इस कथन की पुष्टि में खर लेख लो प्रत्यक्ष है॥२५॥

अगर तुम ज्ञानवान होते तो आज तुम्हारी यह दुर्दशा नहीं होती। यह सोचकर यह कहा जा सकता है कि तुम भी मूर्ख हो और तुम्हारी स्त्रियाँ भी कर्कशायें हैं। बुद्धिवान मनुष्य बिना सुशिक्षा के उल्लू, राक्षस और यक्ष के समान है अर्थात् वह

धनी हो जायँ और राजा रंक क्यों न हो जायँ—आप ऐसी चिंताओं से मुक्त हैं। सर्व प्रकार से आप निडर हैं।

गुरुदेव! चाहो आप तो सब कुछ अभी भी कर सको,
तुममें अभी भी तेज है, तुम तम अभी भी हर सको।
सम्राट् हो कोई पुरुष, कोई भला अलकेश हो,
अवधूत हो तुम, क्या करे वह भूप हा, अमरेश हो ॥३३॥

गुरुराज! अगर आप करना चाहें तो अभी भी सब कुछ कर सकते हैं। इस पतनावस्था में भी आप में घोर (अज्ञान) अंधकार को नष्ट करने की ताकत है। कोई भले क्यों नहीं सम्राट्, कुबेर राजा और इन्द्र हो। आप निडर, परमहंस साधु हैं। आप के ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं होता।

पर साधुपन जब तक न सच्चा आपका गुरु होयगा,
जो तेज तुममें है, नहीं कुछ भी प्रदीपक होयगा।
गुरु! आपको भी राग-मत्सर, मोह माया लग गई।
पड़कर प्रपंचों में तुम्हारी साधुता सब दब गई॥ ॥३४॥

परन्तु आप में रहा हुआ वह तेज नहीं चमक सकता, जब तक कि आप सच्चे साधु नहीं हैं। आप भी राग, मत्सर, मोह, मायादि अवगुणों से भर गये हैं। फलतः आपको भी अनेक प्रपंचों ने घेर लिया है और इस प्रकार आपकी साधुता दब गई है।

जब तज चुके तुम विश्व को—अपमान, आदर कुछ नहीं,
उन्मुख सभी हो जायँ तुममें—कर सकेंगे कुछ नहीं।

सर्व जगह साधुओं में भी झगड़ फैला हुआ है। और इस झगड़े के कारण धर्म के सर्व तत्त्व निस्सार हो रहे हैं। पूर्व काल में आप तन मन और वचन से एक थे। आपके आचार और व्यवहार एक सम विशुद्ध थे।

जब साम्प्रदायिक द्वेष मत्सर से तुम्हें भी द्वेष था,
तब सद् घरों में आपके जब क्लेश का नहिं लेश था।
जिन जाति का उत्थान भी संभव तभी था हो सका।
जब गिर गये गुरु! आप पतनारंभ इसका होसका ॥१४॥

जैन समाज का उत्थान भी तभी हो सका था कि जब आप साम्प्रदायिक द्वेष और मत्सर से एक दम दूर रहते थे और कलह आपके आपसी को छू तक नहीं सका था। आप जब पतित हो गये तो समाज का पतन भी प्रारंभ हो गया।

जिन धर्म के उत्थान की यदि है करी मन में कामना
जिन जाति के उत्थान की यदि है धरी मैं भावना
इस वेशपन को छोड़कर सम्यक्त्व-व्रत तुम दृढ़ करो
जो साम्प्रदायिक व्याधियों का मूल उन्मूलन करो ॥१५॥

यदि जैन धर्म और जैन समाज का उद्धार और अभ्युदय आप वस्तुतः चाहते हैं तो साधुवेश ही सब कुछ है—इस पाखण्ड को त्याग कर विशुद्ध सम्यक्त्व व्रत में सुदृढ़ होइये और इस प्रकार साम्प्रदायिक रोगों का निराकरण कीजिये।

कंचन तुम्हें नहिं चाहिए, नहिं चाहिए तुमको प्रिया,
फिर किस तरह गुरु ! आपमें यों चल रही है अनुशया ?
आत्माभिसाधन के लिये संसार तुमने है तजा,
फिर प्रेम कर संसार में क्यों आप पाते हैं सजा ॥४२॥

ये सुवर्ण और स्त्री, जिनके लिये ही संसार में झगड़े उठते हैं, जब आपको नहीं चाहिए, फिर किस कारण साधु साधु में कलह मचा हुआ है ? आत्म कल्याण करने के लिये तो आप संसार त्यागी बने और फिर संसार से प्रेम करके दण्ड क्यों पा रहे हैं ?

बदला हुआ है अब जमाना, काल अब वह है नहीं,
उस काल की बातें सभी अनुकूल घटती हैं नहीं।
युग धर्म को समझो विभो ! तुमसे यही अनुरोध है,
कर्तव्य क्या है आपका करना प्रथम यह शोध है ॥४३॥

पहिले वाला समय अब नहीं है। यह एक दम विपरीत समय है। उस काल की समस्त बातें इस काल में एक दम अनुकूल नहीं हैं। प्रार्थना यही है कि युग के स्वभाव को देख कर यह निश्चय करना चाहिए कि मूल आदर्श को यथावत् स्थिर रखने के लिये आपका क्या कर्तव्य है।

इसमें न कोई झूठ है, अब मोक्ष मिलने का नहीं,
तुम तो भला क्या सिद्ध को भी मोक्ष होने का नहीं।
तिस पर तुम्हें तो राग, माया, कोह से अति प्रेम है,
श्रावक, श्रवण मिलकर उठो अब तो इसी में क्षेम है ॥४४॥

यह नग्न सत्य है कि इस भौतिकवाद के युग में कोई भी मोक्ष गति प्राप्त करने योग्य क्षमता प्राप्त नहीं कर सकता। आप तो क्या अगर सिद्ध भी कहीं हों उनको भी यह कठिन होगा। फिर आप तो राग, माया और क्रोध से भरे-पूरे हैं। कल्याण अब तो है तो एक मात्र संगठित रूप से मिलकर चलने में है इसके लिये साधु और श्रावक दोनों को मिलकर प्रयत्न करना चाहिए।

गुरु! आप मुनिपन छोड़कर श्रावकपना आरम्भ करें—
ऐसा कथन मेरा नहीं शिव! शिव! हरे! शिव! शिव! हरे!
जब तक नहीं गुरु! साधुगण सम्यक्त्व-पद तक आ सकें
उपयुक्त तब तक के लिए यह कथन माना जा सकें ॥१४५॥

गुरुराज! इस का आप यह अर्थ नहीं लगायें कि मैं यह चाहता हूँ कि आप साधुपद त्याग कर पुनः गृहस्थी बन जावें। अरिहंत! अरिहंत! मेरा कथन ऐसा कभी भी नहीं हो सकता। बात केवल इतनी है कि जब तक आप में वह सम्यक्त्व-पद प्राप्त करने की योग्यता उपस्थित नहीं हो जाती है तब तक के लिये मेरी यह भावना मान्य रहनी चाहिए।

तुम पीटते हो ढोल अपने साधुपन का विश्व में
आदर्श क्या वह साधुपन अब है तुम्हारे पार्श्व में ?
इस कम्पन से कम्पन अब तो नहीं गुरु पा सको
यदि आज मत्सर क्रोध हो कम को कसे तुम पा सको ॥१४६॥

साधुत्व की आप डींग मारते हैं। क्या वह आदर्श साधुत्व आपके पास में है ? इस पतित अवस्था में आप नग्नावस्था में रह कर वह नग्नता अर्थात् निर्लेपता प्राप्त नहीं कर सकते। हाँ, अगर आप मत्सरादि अवगुणों से रहित हो जाते हैं, तो निर्लेपावस्था अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

तब ढोंग, आडम्बर तुम्हें मिथ्या न करना चाहिए,
वैसे न हो जब आज, नहिं वैसा दिखाना चाहिए।
शास्त्रोक्त साध्वाचार तुम जब पाल सकते हो नहीं,
आचार में शोधन करो ऐसा कि कुछ तो हो सही ॥४७॥

ऐसी दशा में मिथ्याडंबर और ढोंग करना व्यर्थ है। वैसे आदर्श साधु जब आज नहीं हैं, तो वैसे दिखाने की कपट क्रिया भी नहीं करनी चाहिए। शास्त्रोक्त विधि से जब आचार आप पूरा २ नहीं पाल सकते हैं, तो फिर आचार में संशोधन करना चाहिए, जिससे कुछ तो कार्य किया जा सके।

ये गच्छ, स्तुति अरु पथ गुरुवर ! आपके ही पथ हैं;
ये थे कभी सुन्दर, मनोहर—आज विकृत पथ हैं।
इन गच्छ, स्तुति अरु पथ के जब तक न झगड़े मत हों—
तब तक नहीं संभव कहीं उत्थान—तुम धीमन्त हो ॥४८॥

ये गच्छ, स्तुति और साम्प्रदायें सर्व आपके ह तो उत्पन्न किये हुये हैं। कभी ये उपयोगी और सुन्दर थे, लेकिन आज घातक हो उठे हैं। आप तो बुद्धिमान हैं। सहज समझा जा

सकता है कि इनके सब मसाले शान्त होंगे तब ही अग्रपान संभवित समझना चाहिए।

तुमको पड़ी पर गज क्या, तुम ध्यान क्यों देने लगे!
मरते हुए का आप रे! तुम क्यों भला करने लगे!
गिरते हुए पर आप गुरुवर! टूट विद्युत से गिरे!
ऐसी दशा में आश रे क्या हाय! जीवन की हरे! ॥४९॥

परन्तु आप को ऐसी क्या चिंता है जो आप इधर ध्यान देवें। जो मरण-प्राय हो रहा है उसका भला करने से लाभ ही क्या है! हम पतित तो हैं ही और ऊपर से फिर आप बिजली के समान टूट कर गिर पड़े। ऐसी स्थिति में जीवित रहने की क्या आशा की जा सकती है?

अतिचार शिथिलाचार गुरुवर आपका अब क्षेत्र है!
घृत-दुग्ध की बहती हुई सरिता तुम्हारी पेय है!
मिष्टान्न बिन अब एक दिन होता तुम्हें गुरु! भार है!
मेवे मसाले चढ़ रहे—अंगूर अब रसदार हैं!!! ॥५०॥

गुरुराज! आपका आचार में शैथिल्य और अतिचार अत्यन्त शोचनीय स्थिति को पहुँच चुका है। आपके पात्रों में घी और दूध बहता है। मिठाई के बिना आपको एक दिन भी भारी हो जाता है। अब तो मेवे मसाले और रसदार अंगूर चढ़ते हैं जो कामोत्तेजक स्वाद्य पदार्थ हैं।

गुरु! पड़ गये तुम स्वाद में, उपवास, व्रत सब उड़ गये!
अतएव गुरुवर! श्रावकों के दास, भिक्षुक बन गये!
अब प्रेमियों के दोष गुरु! यदि आप जो कहने लगे,—
घृत-दुग्ध, रस मिष्टान्न में गुरु! दुख तुम्हें होने लगे ॥५१॥

गुरुराज! स्वादिष्ट व्यंजनों में आपकी जिह्वा पड़ गई। फलतः उपवासादि व्रत अन्त प्रायः हो गये। दूसरा परिणाम इसका यह निकला कि आप गृहस्थियों के दास (चापलूस) और भिखारी बन गये। अपने प्रेमी श्रावकों को इसी हेतु अब आप सच्ची २ बातें नहीं सुना सकते। अगर सुनाने लग गये तो घी, दूध और मिष्टान्न के मिलने में भारी विघ्न उठ खड़ा होगा।

उपवास दो दो माह के भी आज तुम में कर रहे,—
हा! हत! ये सब मान-वर्धन के लिये हैं कर रहे।
पाखण्ड-प्राणा साधुओं का राज्य है फैला हुआ।
सहवास इनका प्राप्त कर सद्साधु भी मैला हुआ॥ ॥५२॥

ऐसे भी साधु हैं जो दो २ माह के उपवास करते हैं। बड़ी शर्म की बात है कि वे यह सब अपनी प्रसिद्धि के लिये करते हैं। पाखण्डी साधुओं का समस्त जैन समाज में प्रभाव फैला हुआ है। इन पाखण्डी साधुओं के सहवास में रह कर अच्छे साधु भी मलीन हो रहे हैं।

गुरु! वेष-धारी साधुओं की क्यों भला बढ़ती न हो।
जब है इधर पड़ती दशा, फिर क्यों उधर चढ़ती न हो!

शिशु क्रीत करने की प्रथा तुम में विनाशी चल गई
वे क्रीत दीक्षित क्या करें, जिन के हृदय की मर गई ॥५२॥

गुरुराज ! वेषधारी साधुओं की सर्वत्र घटे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जब हम भी पतित हो रहे हैं तो लोगों और मेल बना रहे तो स्वाभाविक ही है । छोटी आयु वाले बालक खरीद कर साधु बनाने की अति निंदनीय रीति चल पड़ी है । वे क्रीत साधु जिनकी इच्छायें अपूर्ण ही रह गई हैं, साध्वाचार को भला कैसे पाल सकते हैं ?

सुविरक्त होकर विश्व से नर साधु-व्रत धारण करे,
कल्याण वह अपना करे भव ताप वह दारुण हरे ।
गुरुदेव ! पर यह बात तो है आपके वश की नहीं
अब आप इसमें क्या करें जब भावना अच्छी नहीं ॥५३॥

संसार से जो अच्छी प्रकार तृप्त होकर साधु बनता है वह ही अपना कल्याण करता है और जन्म जरा और मृत्यु के दारुण दुःखों का अन्त करता है । गुरुराज ! परन्तु यह आप के अधिकार की तो बात नहीं है । साधु बनने की जब किसी में भावना ही उत्पन्न नहीं होती है आप का क्या दोष है ?

अब एक मेरी प्रार्थना है आप यदि गुरु ! मानलें
यह जब पावन समझकर यह सब भिक्षुक जानलें ।
गुरुदेव ! भिक्षुक से अधिक अब भार तो है आपका ?
तुम पूज्य अपने को कहो, यदि पूज्य-पद है आपका ॥५४॥

अगर आप माने तो मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि आप के इस वेष को साधु का वेष कह कर साधुवेष का अपमान नहीं कीजिये। इस वेष को अब भिक्षुक का वेष ही समझना चाहिए। एक भिक्षुक से अधिक अब आपका सम्मान भी नहीं रहा है। आप भले अपने को पूज्य समझें, वह पूज्यपद तो अब आपका नहीं रहा है।

जिस क्षेत्र में तुम फूट के हो बीज गुरुवर! बो चुके,
उस क्षेत्रफल में आप भी आराम से अस सो चुके।
निष्कर्ष अन्तिम यह हुआ इस अवदशा पर ध्यान दो,
गुरु! काटकर यह शष्य कुत्सित आज जीवन दान दो॥५६॥

जैन समाज में फूट के बीज आपने ही तो बोये हैं। फिर आप की भी शांति से रात्रि कैसे व्यतीत हो सकती है? तात्पर्य यह है कि इस अवदशा पर हे गुरुराज! विचार करिये और फूट के बीजों की जो यह विषाक्त कुकृषि हो गई है, उसको काट कर जीवन-दान दीजिये।

गुरुदेव! पूर्वाचार्यवत् आदर्श जीवन तुम करो,
पचेन्द्रियों का सवरण कर शीलमय सयम करो।
त्रयगुप्ति, पचाचार का, व्यवहार का पालन करो,
जीवन करो तुम समितिमय, आचार्य पद सार्थक करो॥५७॥

गुरुराज! पूर्वज आचार्यों के समान आदर्श जीवन बनाइये। पाचों कर्मेन्द्रियों का जीतकर शीलमय सयमव्रत का
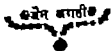
परिपालन करिये। तीनों गुप्तियों का, पाँचों आचार और व्यवहार का और समितियों का विधिपूर्वक पालन करके आचार्य पद को सफल बनाइये।

दुःशीलता से वैर हो तुमको घृणा हो रूप से
तुमको न कोई गर्व हो श्रीमंत निर्धन भूप से।
गौरव-भरी प्राचीनता की ज्योति फिर वह जग उठे,
यह रवि उदय के आगमन पर तम तिरोहित भग उठे ।।४८।।

शीलव्रत से प्रेम हो रूप से घृणा हो श्रीमंत और निर्धन के अंतर से दुःस्नेह हो ज्योतिर्मय वह प्राचीन गौरव फिर जग-मगा उठे। इस सूर्य के उदय होते ही यह अज्ञानता का घोर अंधकार विनष्ट होकर नष्ट हो जायेगा।

चारित्र—दर्शन—ज्ञानमय वातावरण जलवायु हो
ऐसा सुन्दर वातावरण हो—क्यों न हम दीर्घायु हो ?
गुरुवर! अहिंसावाद का जग को पढ़ा दो पाठ तुम
हम रह गये पीछे अधिक—आगे बढ़ाओ आज तुम ।।४९।।

जैन समाज का जलवायु चारित्र दर्शन और ज्ञान से बना वातावरण हो। यदि यह सुन्दर वातावरण उत्पन्न हो जाय तो जैन समाज के दीर्घायु होने में फिर क्या शंका है? गुरुराज! संसार को अहिंसावादी बना दीजिए। हम संसारी बहुत पीछे रह गये हैं आप आगे बढ़ा दीजिए।

इस साम्प्रदायिक द्वेष-मत्सर-राग को तुम छोड़ दो,
खण्डित हुये इस धर्म के तुम खण्ड फिर से जोड़ दो।
अब भी तुम्हारा तेज है—इतने पतित तो हो नहीं,
आज्ञानुलघन हम करें गुरु! धृष्ट इतने तो नहीं ॥६०॥

गुरुराज! इस साम्प्रदायिक द्वेष, राग और मत्सर का त्याग कर दीजिये। अनेक खण्डों में विभाजित हुये इस जैन धर्म को पुनः जोड़कर एक बना दीजिये। इस पतितावस्था में भी आप में तेज अवशिष्ट रहा हुआ है, इतने अधिक पतित नहीं हुये हैं। गुरुराज! और हम भी इतने क्षुद्र नहीं हैं कि आप की आज्ञाओं की अवहेलना करें।

साध्वियें

हे साध्वियों! स्त्र्युद्धार का अब भार तुम सभाल लो,
जिनके लिये तुम थीं चली पति गेह तजकर सार लो।
नारीत्व में शृंगार के जो भाव घर कर घुस गये—
उनके अखाड़े तोड़ दो सद् भाग्य जग के जग गये ॥६१॥

हे साध्वियों! स्त्रियों का सुधार करने का उत्तरदायित्व आप सभाल लीजिये। स्त्रीजाति का समुद्धार करने के लिये ही आपने गृहस्थाश्रम को जब छोड़ा है तो अब उस कार्य को करके व्रत पूर्ण करना चाहिए। स्त्रियों की एक मात्र शृंगार के प्रति जो आसक्ति हो गई है, उसको विनष्ट कर दीजिये। बस संसार का सौभाग्य खुल जायगा।

नेतागण! आपके मानसों में यदि धर्म का कुछ अंश है और जाति के उद्धार के लिये आप अपना सर्वस्व स्वाह कर रहे हैं, फिर भी समाज में कुछ नया—जूना नहीं बन रहा है—आश्चर्य है। प्रतीत ऐसा होता है कि समाज में फूट डाल कर आप लोग अपना पोषण ही कर सके हो।

तुम साम्प्रदायिकता तजो, तुमको न इसमे नेह हो,
हमको मिलाने में तुम्हारे एक मन, धन, देह हो।
करते रहोगे इस तरह हा हाय! क्या दल-बन्दियाँ?
कब आयगी वह भावना, जब खोल दोगे ग्रंथियाँ?॥६५॥

साम्प्रदायिक ममत्व को त्याग दो। तन, मन और धन लगाकर हमको संगठित करने का प्रयत्न करो। इस प्रकार दल-बन्दियां कब तक करते रहोगे? हमारे में पड़ी हुई कपट की गांठें खोलने की तुम्हारे अन्तरों में भावनायें कब उठेंगी?

व्याख्यान की नेताजनों! इस काल में नहिं माँग है,
खर-रेंकना, कपि कूदना तो मसखरों का स्वाग है।
व्याख्यान के ही साथ में कुछ काम भी करते रहो;
बस कार्य में जो तुम कहो परिणित उसे करते रहो॥६६॥

इस युग में गदहों, बन्दरों तथा मसखरों की चेष्टायें करते हुये केवल व्याख्यान देने की अधिक आवश्यकतायें नहीं है। कुछ कार्य कीजिये। जो आप लोग कहते हैं, वह कर के दिखाइये।
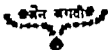
होवें तुम्हारे स्वागतों को रोकते हैं हम नहीं;
पर ईश के समतुल्य तुम्हें हम मानलें संभव नहीं।
स्वागत तुम्हारे स्टेशनों पर शौक से होते रहें;
अपव्यय अब तुम रोकदो, फिर व्यर्थ क्यों होते रहें ? (१४७)

स्थल-स्थल पर जो तुम्हारे स्वागतोत्सव किये जाते हैं, हम उनको बंद करना नहीं चाहते। परन्तु यह असंभव है कि हम आपको ईश्वर के बराबर स्वीकार करलें। स्टेशन-विश्राम स्थलों पर भले तुम्हारे स्वागत किये जायं। परन्तु अपव्यय रोकने का आप उपदेश देते हैं और फिर इस प्रकार स्वयं व्यय करते रहें—यह उचित है ?

नेताजनों ! तुम स्वागतों की चीज केवल हो नहीं
व्याख्यान देने मात्र से बन जायगा सब—सो नहीं।
कर से करो तुम काम अब यह काम ही का काल है
दुर्भाग्य हमारे हैं अधिक दुर्दैव-सैन्य विशाल है ॥ (१४८)

नेतागण ! आप केवल स्वागत की वस्तु नहीं हैं। एक अकेली व्याख्यान क्रिया से सब बनने वाला नहीं है। यह युग हाथ से कार्य करने का है अतः हाथों से कार्य कीजिये। इधर हम अवगुणों के प्रकोप से कमजोर हो रहे हैं और उधर दारिद्र्य का विशाल सैन्य हमारे पर आक्रमण किये हुये है।

अतिचार पापाचार दिन दिन देख लो हैं बढ़ रहे।
अनमेल अनुचित पाणि-पीड़न रात-दिन हैं बढ़ रहे।

इस साम्प्रदायिक भूत से ही भूत वैभव खो चुके।
जिनके घरों में भूत हों, उनके जगे घर सो चुके !! ॥६६॥

प्रतिदिन अतिचार, पाप, अनुचित विवाह घट रहे हैं। तथा इस साम्प्रदायिकता के भयकर ममत्व को पाल कर हमने वह अतीत का गौरव भी विनष्ट कर दिया। जिनके घरों में भूत (एक यानि) निवास करते हों, उनके भरे-पूरे वे घर भी एक दिन निर्जन स्थल बन जाते हैं।

नेताजनों! अब जाति-जीवन है तुम्हारे हाथ में,
जीवन-मरण भवितव्यता सब कुछ तुम्हारे हाथ में।
यह जाति आशागार है, तुम आप आशागार हो,
तुम यत्न कुछ ऐसे करो बस अचिर जात्युद्धार हो। ॥७०॥

नेतागण! जाति का जीवन और मृत्यु तथा इसका भविष्य सब आपके अच्छे और बुरे प्रयत्नों पर आश्रित है। जाति को आप से आशा है। आप कुछ ऐसे प्रयत्न कीजिये कि जिससे जाति का उद्धार शीघ्र हो सके।

उपदेशक

करके दया उपदेशकों! ऐक्यता पर जोर दो,
बिखरे हुए हैं रत्न माला के—उन्हें फिर जोड़ दो।
अपवाद-खडन-चोट से चक-चूर अब करना नहीं,
गिरते हुए पर बज्र का आघात फिर करना नहीं ॥७१॥

हे स्थानकगण! सर्वत्र संगठन का प्रचार कीजिये। समाज-रूपी माला के पुरुष-रूपी रत्न यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं, उनको फिर पिरो कर सुन्दर समाज-रूपी माला तैयार कर दीजिये। बिखरे हुये रत्नों पर फिर अपवाद अंकुश की चोटें मारकर उन्हें चकना-चूर नहीं कर डालना। पतित हुये पर फिर वज्र का प्रहार नहीं करना।

हमको जगाने के लिये तुम पथ पर भ्रमण करो
तुम अब यहाँ पर साम्प्रदायिक रोग को वर्जित करो!
सहयोग दो गिरते हुए को फिर उठाने में हमें
उसको लगादो मार्ग में पथ-भ्रष्ट जो दीखे तुम्हें ॥७७॥

हमको जाग्रत बनाने के लिये आप शक्तिभर उपाय करिये। अब इस विघातक साम्प्रदायिक रोग की वृद्धि मत करना। गिरे हुये को उठाने में हमको सहयोग दीजिये और जो पथ-भ्रष्ट हो गया है, उसको मार्ग में पुनः लगा दीजिये।

श्रीमन्त

श्रीमन्त! बोलो कब तलक तुम यों न चेतोगे अभी?
क्या अवदशा में और भी अवशिष्ट रक्खोगे अभी?
तुम कर्म से तुम धर्म से हो पतित पूरे हो चुके!
आलस्य विषयाभोग के आवास, अड्डे हो चुके!!! ॥७८॥

हे धनवानजन! कब तक आप असावधान बने रहेंगे? क्या अभी भी आपके पतन में कुछ कमी दिखाई देती है? कर्म

तथा धर्म—दोनों दृष्टियों से आप पूर्ण पतित हो चुके हैं। आलस्य और विषयादि भोगों के आप पूरे घर घन चुके हैं।

है अज्ञता तुमको प्रिया मम, विषय रस निज बन्धु है,
है रोग तुमको पुत्र सम, कलदार करुणासिन्धु है।
तुम भोग में तो श्वान हो, तुम स्वार्थ में रण-शूर हो,
परमार्थ में तुम हो बधिर, अपने लिये तुम सूर हो ॥७४॥

अज्ञानता आप को स्त्री के समान प्यारी है, विषय का आनद सहोदर के समान निकटतम संबधी है, रोग पुत्र के समान हृदय का टुकडा है, रुपया ईश्वर तुल्य है। भोगों में कुत्तों के समान आतुर, स्वार्थपरता में तत्पर और सावधान तथा परोपकार में बहिरे और अपने आप के लिये आप बहादुर पुरुष हो।

नहिं ध्यान तुमको जाति का, चिंता नहीं कुछ धर्म की,
उन्मूल चाहे देश हो,—सोचो नहीं तुम मर्म की।
रोते हुए निज बन्धु पर तुमको दया नहिं आ रही,
उनके घरों में शोक है, लीला तुम्हें है भा रही ?॥७५॥

आप को जाति और धर्म का कोई ध्यान नहीं है। देश भले रसातल को पहुच जाय। आप प्रमुख बातों की ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं देते हैं। सहोदर भले करुणाक्रन्दन करता रहे, आप के हृदय पसीजते नहीं। उनके घरों में शोक छाया रहे, परन्तु, आपके घरों में रासलीला का होना बंद नहीं हो सकता।

रसधार भीतर! आपका मन श्रेयमें ही योग्य है!
क इस तुम्हारे बन्धु का भी श्रवण करने योग्य है!
श्रीमन्त! देखो तो तुम्हारा पुत्र कैसा हो रहा!
दयनीय हालत देखकर यह मन तुम्हारा रो रहा ॥४॥

हे श्रीमन्तजन! आपकी रसक्रीड़ायें विचारणीय हैं और आपके सहोदर का करुणक्रन्दन सुनने योग्य है। आपका यह नैतिक पतन देख कर इन पंक्तियों के लेखक को रोना आता है।

अब रह गये कुल आपके ये चार जीवन-सार हैं—
रतिचार है रसधार है शृङ्गार है रसदार है।
तुमको कहाँ अवकाश है 'रविदास' के उद्गार से!—
क्या तार तर के हिल उठेंगे दीन की चित्कार से? ॥५॥

स्त्रियों के साथ रमण करना विषयभोगों में लिप्त रहना सुन्दर और बहुमूल्य वेष-भूषा करना और सुन्दर और स्वादिष्ट व्यंजनों का सेवन—इन केवल चार बातों में ही आपके जीवन की सफलता है। वेश्याओं के नृत्य और गान में ही आपको खुशी कहाँ है? क्या दीन की चित्कार आपके हृदयों के तारों को हिला सकेगी। (मुझको तो शंका है।)

तुमको पड़ी क्या दीन से! क्यों दीन का चिन्तन करो!
स्वामी मरी है आपकी जो आप भी क्रन्दन करो!
रसधार पीछे क्या छिपा है आपको कुछ भास है?
अवसान कोरा हो रहा यमराज का कुछ ध्यान है? ॥६॥

ऐश और आराम को त्याग कर आप दोनों का चिंतन करें, ऐसी आपको क्या पड़ी है ? आपकी नानी माता का मरण तो हुआ ही नहीं है, जो आप विषयरस को भग करके किसी भी प्रकार का श्रम करें। परन्तु आप को यह भी ज्ञान है कि इस विषयानद की ओट में यमराज अपना कार्य बड़ी कुशलता के साथ करता जा रहा है।

तुम जाति का, तुम देश का दारिद्र्य चाहो हर सको,
यह कारखाने खोलकर तुम निमिष भर में कर सको।
धनराशि कुछ कमती नहीं अब भी तुम्हारे पास में,
कैसे सकोगे सोच पर सोते हुए रतिवास में ॥ ॥७९॥

अगर आप विचार लें तो कल-कारखाने खोलकर देश की दरिद्रता को क्षण भर में नष्ट कर सकते हैं। आपके पास में धन की इस युग में भी कमी नहीं है। परन्तु विचारणीय तो यह है कि स्त्रियों के साथ रमणक्रिया करने में आप इतने अनुरक्त हो रहे हैं कि यह सोच भी नहीं सकते।

श्रीमन्त हो, पर वस्तुतः श्रीमन्तता तुम में नहीं,
लक्षण कहीं भी आप में श्रीमन्त के मिलते नहीं।
श्रीन्मत भामाशाह थे, श्रीमन्त, जगड़ूशाह थे,—
वे देश के, निज जाति के थे, मक्तवर, वरशाह थे ॥८०॥

आप श्रीमन्त तो हैं, परन्तु आपका हृदय श्रीमन्त का नहीं है तथा श्रीमन्त के गुण आप में दिखाई नहीं देते। श्रीमन्त

२६

तो भामाशाह और जगडूशाह थे, जो धर्म और जाति के परम भक्त थे, दसकोटि के शाहूकार थे।

इन मस्तकों में शक्ति थी इनको रसों में मुक्ति थी
सिरजाति प्रति सिर धर्म प्रति इनके करों में भक्ति थी।
श्रीमन्त वे भी एक थे श्रीमन्त तुम भी एक हो—
कंजूस, मक्खीचूस तुम श्रीमन्त अम्बर एक हो ॥८१॥

वे पूर्वज श्रीमन्त मन्वर बुद्धिमान व्यसनविहीन जाति और धर्म के परम भक्त थे। एक वे श्रीमन्त थे और एक आप भी श्रीमन्त हैं। कितना अन्तर है? आप प्रथम श्रेणी के कंजूस और मक्खीचूस श्रीमन्त हैं। आप से दूसरों को क्या लाभ पहुँच सकता है?

नहीं धर्म से कुछ प्रेम है साहित्य से अनुराग है!
अतिरिक्त रति-रस-रास के किसमें तुम्हारा राग है?
जब अल्प की तुमको मिला जब साठ में भी मिल सके
ऐसे महा रसरास में तुम ही कहो, क्या सुख सके ? ॥८२॥

साहित्य तथा धर्म से आपको किंचित प्रेम नहीं। स्त्रियों के साथ रसक्रीड़ा करने के अतिरिक्त आपकी रुचि किसी सात्विक विषय में नहीं। आपको साठ वर्ष की आयु में भी जब अल्प वय की बाल-पत्नि का प्राप्त होना सहज होवे तो ऐसी विषय भोग की स्थिति में आपके नेत्र कैसे खुल सकते हैं?

तुमको तनिक भी जाति का दुर्दैन्य जमता है नहीं ?
पर तो इधर यदि है दशा, पहुँचा इधर तो है सही ?
हैं आप भी तो जाति के ही अंग अथवा अंश रे।
भूचाल ने शायद अचल होते न होंगे ध्वंश रे॥८३॥

समाज हीन बनता आ रहा है। परन्तु इसमें आप को कोई चिंता नहीं होती है। होना भी क्यों चाहिए ? अधिक मनुष्य जब अधिकाधिक गरीब बनते जाते हैं, तब ही तो कुछ श्रीमन्त अधिकाधिक धनवान स्वभावतः होते जाते ही हैं। आप जाति में चाहे अंग अथवा अंश रूप से हो, परन्तु, क्या जब भूचाल आते हैं, तब पर्वत नष्ट नहीं होते हैं ?

अवहेलना कर जाति की तुम स्वर्ग चढ़ सकते नहीं,
रहना उसी में है तुम्हें, हो भिन्न जो सकते नहीं।
श्रीमन्त! चाहो आप तो सम्पन्न भारत कर सको,
आर्थिक समस्या देश की सुन्दर अभी भी कर सको॥८४॥

जाति की अवहेलना करके आप स्वर्गपति नहीं बन सकते। जाति में ही आपको रहना पड़ेगा। जाति से अलग होकर आप जीवित नहीं रह सकते। आप विचार कर लें तो भारतवर्ष को सुखी और समृद्ध बना सकते हैं।

तुमने किया क्या आज तक ? क्या कर रहे तुम हो अभी ?
अधिकांश लेखा दे चुका, अवशिष्ट भी सुन लो अभी।
पर 'चेतना से हाय! तुम कब तक रहोगे दूर यों ?
मूर्च्छा कहो 'कब तक तुम्हारे में न होगी दूर यों ?॥८५॥

आप श्रीमन्तों ने जो किया है और जो कर रहे हैं उसका बहुत कुछ बयान किया जा चुका है। शेष जो रह गया है, उसको भी सुना देता हूँ। बड़ी दुःख की बात है आप इस प्रकार उदासीन रह कर सचेतना से कब तक दूर रहेंगे ? क्या सचेत नहीं होंगे ?

पैसा तुम्हारे पास है जब क्या तुम्हें दुःख हो सके ?
जब जब तुम्हारे कार्य-जीवन सरलता स हो सके।
झगड़े-बखेड़े जाति में दिन-रात तुम फैला रहे—
क्या जाति के हृदय में नहीं तुम शान्ति जीवन पा रहे ? ॥८१॥

आप धनवान् हैं। आप को क्या दुःख है ? आप सौ-सौ विवाह सहज कर सकते हैं। आप दिन रात जाति में झगड़े बखेड़े फैलाते रहते हैं। जाति के प्राणों का हरण करने के लिये ही आप जीवित रह रहे हैं।

तुम बिन कहीं हम हैं नहीं हम बिन नहीं कुछ आप हो
हम हैं अनुग सब आपके अथवा हमारे आप हो।
अतिरिक्त हमको आपके फिर कौन मन सुख कन्द है ? ।
हम —आपमें यदि प्रेम हो—आनन्द ही आनंद है ॥८२॥

फिर भी आप के बिना हमारा और हमारे बिना आपका अस्तित्व ही अधर में है। आप हमारे आश्रय हैं और हम आपके अनुयायी हैं। आपको छोड़ कर अन्य कौन जन हम को सुखदायी हो सकता है ? आपमें और हमारे में अगर विशुद्ध प्रेम हो जाय तो फिर आनन्द की क्या कमी ?

अब छोड़कर यह रास-रस कुछ जाति का चिंतन करो,
मजबूत कर निज जाति को तुम जाति में सुख-धन भरो।
समझो धरोहर जाति की, निज राष्ट्र की निज कोष को;
कौशल, कला, व्यापार से सम्पन्न कर दो देश को ॥८८॥

विषयभोग को त्याग कर जाति का कुछ विचार करो। जाति को सुदृढ और सुखी बनाओ। आपकी सम्पत्ति को स्वराष्ट्र और समाज की सम्पत्ति समझो। देश को कला-कौशल और व्यापार द्वारा समृद्ध बना दो।

निज देश की, निज राष्ट्र की, निज धर्म की, निज जाति की,
श्रीमन्त! पहिले देख लो, है अब दशा किस भाँति की।
दुर्भिक्ष, सङ्कट, शोक हैं, दारिद्र्य, भिक्षा, रोग है!
दो एक हो तो जोड़ दे;—कोटी करोड़ों योग हैं॥ ॥८९॥

हे श्रीमत! अपने देश, राष्ट्र, धर्म और जाति की शोचनीय स्थिति पर विचार करो। दुर्भिक्ष, संकट, शोक, दारिद्र्य, भिक्षा-वृत्ति आदि अनेक रोग हैं। एक, दो हों तो उनका योग भी लगाया जाय। यहाँ तो जोड़ करोड़ों पर आता है।

श्रीमन्त! केवल आप ही बस एक ऐसे वैद्य हैं,
ये रोग जिनसे देश के सुन्दर, सरलतम छेद्य हैं।
अधिकाश रोगों के तथा फिर पितृ भी तो आप हैं;
श्रीमन्त! जिम्मेदार इस बिगड़ी दशा के आप हैं ॥९०॥

हे श्रीमत! इन फैले हुये आर्थिक रोगों को सुन्दरता और

सरकता म दूर करने वाले एक आप ही कुशल वैद्यराज हैं। वैसे अधिक रोगों के तो जन्मदाता भी आप ही हैं। कलता इस बिगड़ी हुई दशा के मूल कारण आप ही हैं।

सबसे प्रथम श्रीमन्त ! तुम इन इन्द्रियों को वश करो।
तन मन, वचन में योग हो, धन धर्म के अर्पित करो।
तन मन, वचन धन आपका हो देश भारत के लिए।
रस दास दोनों आज तुम निज जाति जीवन के लिए ॥८१॥

हे श्रीमन्त जन ! आप अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कीजिये। तन मन और वचन में एकता लाइये। अपने धन को धर्म के लिए समर्पित कीजिये। इस प्रकार आपका तन, मन वचन और धन सब भारत देश के लिये होना चाहिए। वैभव भोग को अपनी जाति के उद्धार के निमित्त त्याग दीजिये।

अपव्यय को अब रोक दो अब दीन भूमि हो चुकी।
अब धर्म पर विश्वास का सब भाँति से क्षति हो चुकी।
अनमेल अनुचित पाणि-पीडन से तुम्हें वैराग्य हो
वह धर्म संयम,-शीलमय-फिर से जगा सद्भाग्य हो ॥८२॥

मातृ भूमि निर्धन हो चुकी है। कृपा करके होते हुए व्यर्थ व्ययों को रोक दीजिये। धन धर्म सम्मान और विश्वास इन सब का नाश हो चुका है। अनमेल विवाह करने से आपको घृणा होनी चाहिए। धर्म संयम और शील से युक्त हमारा पुनः वह सौभाग्य जाग्रत हो जाय जो हमारे पूर्वजों का था।

अब मूर्खता से आपको धनधर ! नहीं अनुराग हो ;
हे मूर्खते तुम राह लो, इनमें न तेरा राग हो।
दल साम्प्रदायिक तोड़कर घर को सुधारो आज तुम,
इस दीन भारत के लिये दो हाथ दे दो आज तुम ॥६३॥

हे श्रीमन्त ! मूर्खता से आपने बहुत समय तक सबंध रक्खा। अब इसका ममत्व त्यागिये। हे मूर्खते ! तुम भी अपना मार्ग पकड़ो। यहाँ अधिक ठहरने का हठाग्रह मत करना। साम्प्रदायिक दलों को छिन्न भिन्न करके अपने घर अर्थात् देश का सुधार करो। इस दीन भारतवर्ष के लिये कृपा करके दो हाथों से खुलकर श्रम कीजिये।

निर्धन

तुम हो पुरुष, पुरुषार्थ के नरदेह से अवतार हो,
पुरुषार्थ ही प्रारब्ध है, फिर क्यों न दलितोद्धार हो।
पुरुषार्थ तो करते नहीं, तुम दैव को रोते रहो,
क्या दिन भले आजायेंगे, दिन में कि जब सोते रहो?॥६४॥

आप पुरुष हैं। पुरुषदेह से आप पुरुषार्थ के अवतार हैं—यह नहीं भूलना चाहिए। पुरुषार्थ करने से ही भाग्य बनता है, फिर दलितावस्था को दूर करना कौन असंभव कर्म है। पुरुषार्थ तो आप लोग करते नहीं, और केवल अपने भाग्यों को दोष देते हो। दिन में परिश्रम नहीं करें और खूब आनद से सोवें—ऐसे पुरुष के अच्छे दिन कैसे आ सकते हैं?
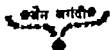
व्यापार कन्या का करो, जिससे न पैसा कम तुम्हें
मुफ्त हजारों मिल रही हैं एक कन्या पर तुम्हें।
जिसके सुता है घर में, घर में उसी के शक्ति है
उसके सुता है घर में, जिसके करों में शक्ति है॥५७॥

और व्यापार करना तो त्याग दिये। कन्या का व्यापार करना ही आप लोगों ने एक मुख्य कर्म बना लिया। क्यों नहीं कमावें जब एक कन्या के बदले पर हजारों रुपये सहज मिल जाते हों। जिसके घर में लड़की है उसके हाथ में भी शक्ति है अर्थात् सब लोग उसका लोहा मानते हैं और उसको मान देते हैं। जिसकी भुजाओं में शक्ति है वह ही लड़की को बेचने की दृष्टि से मनचाहे समय तक घर में रख सकता है और उसको कोई कुछ नहीं कह सकता।

विद्या पढ़ो तुम ज्ञान सीखो बुद्धि कर स काम को
करके बढ़ो उस काम को जो काम कर में थाम लो
कैसे बढ़ो! धनवान तुम देखूँ भला बनते नहीं
क्या एक कृषक न लाख क्या निर्धन हलक करते नहीं॥५८॥

निर्धन बन्धुओ! ये कुत्सित व्यापार छोड़िये। विद्या पढ़िये ज्ञान प्राप्त कीजिये। बुद्धि और हाथों से परिश्रम करिये। जिस कार्य को करने का संकल्प लिया है उसको पूरा करिये। फिर मैं भी देखूँ कि आप धनी कैसे नहीं बन सकते हैं? एक किसान एक वर्ष के परिश्रम करके लाख रुपया कमा सकता है। क्या आप यह नहीं जानते हैं?

तुम तुच्छतर-सी बात पर हो ग्राहकों मे ऐंठते,
तुम एक पाई के लिये पद-त्राण-रण कर बैठते।
व्यापार धंधे आपके फिर किस तरह से बढ़ सकें?
घाटा न फिर कैसे रहे हम इस तरह जय कर सकें? ॥६७॥

ग्राहकों से आप साधारण बातों पर भी अकड़ उठते हैं। एक पाई के हिसाब के लिये बुरी तरह लड़ने लग जाते हैं। ग्राहकों के साथ जब आप इस प्रकार दुर्व्यवहार करते हैं, फिर ऐसी स्थिति में व्यापार, धंधा कैसे उन्नति कर सकता है और घाटा रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

धन प्राप्त करने की कला जाने कलाकार भी नहीं,
पर झूठ में तुमने कला वह समझ है रक्खी सही।
यदि बन्धुओ! सम्पन्नता अंतिम तुम्हारा ध्येय है,
बल बुद्धि सत्तम सत्य से पुरुषार्थ करना श्रेय है॥ ६८॥

यह बहुत सम्भव है कि बड़े बड़े कुशल कलाविज्ञ भी व्यापार करने की पूरी पूरी कला को नहीं जानते होंगे। परन्तु आप लोगों ने उस कला को झूठ में समझ लिया है। अगर आपका अन्तिम लक्ष्य समृद्ध होने का है तो पूरे यत्नों से, पूर्ण सत्य से परिश्रम करना ही उत्तम है।

श्री पूज्य

श्री-पूज्य! यतिपति आप भी आदर्शता धारण करो,
सुख-ऐश वैभव-जाल को पाताल में जाकर धरो।
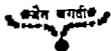
है आ गया शैथिल्य जो, उसको भगा दो पुरुष-जन।
शुचि-शील संयम त्यागमय हो आपका तन-मन-वचन॥२४॥

श्री पूज्य! जितेन्द्रिय पुरुषों के आप स्वामी हैं। आपको अपनी आदर्शता का सदा ध्यान रखना चाहिए। जितेन्द्रिय महापुरुषों ने सूक्ष्म ऐश्वर्य और वैभव का। अतः अवश्य दूर रहना चाहिए। हे पुरुषो! मैं मन के समान सुख-दायी! आप में जो शिथिलाचार घुस गया है, उसको निकालिए और पवित्र शील संयम और त्यागयुक्त तन मन और वचनों को बनाइये।

फिर पूर्ववत् ही आपका सम्मान नित बढ़ने लगे
शासन तुम्हारा जाति पर निर्बाध फिर चलने लगे।
सम्राट मानें आपको अब हम प्रजा बन कर रहें
करती रहें नित धर्म-ध्वज परमार्थ में हम रत रहें॥२ ॥

ऐसा करने पर आपका सम्मान पहिले समान बढ़ जायगा। सम्पूर्ण जैन समाज पर आपका एकछत्र शासन चलने लगेगा और हम अपने को आपकी प्रजा और आपको सम्राट समझेंगे। हम यही चाहते हैं। बस फिर धर्म की जय पताका फहराती रहेगी और हम परोपकार में अनुरक्त रहेंगे।

यति

आस्वाद रस यदि छोड़ दो अब भेद अन्न से छोड़ दो
तन-मन-वचन पर योग का अब अर्थ सम्यक् जोड़ दो।

हो पठन-पाठन शास्त्र का कर्त्तव्य निशि दिन आपका,
धोरी धुरन्धर धर्म का प्रत्येक हो जन आपका ॥१०१॥

हे यतिगण ! आप भी जितेन्द्रीय कहलाते हैं। फिर आपको चाहिए कि मिष्टान्नों, मधुरसों, स्त्रीसगो और ससार के ममत्त्वों से आप दूर रहें। तन, मन, और वचनों पर विजय प्राप्त कीजिये और द्रव्य का इकट्ठा करना छोड़ दीजिये। शास्त्रों का पठन और पाठन ही आपका निशिदिन का कर्त्तव्य होना चाहिए। प्रत्येक यति महाराज धर्मरूपी रथ को खींचने वाला हो।

युवक

युवको ! तुम्हारे स्कन्ध पर सब जाति का गिरि-भार है,
पोषण-भरण, जीवन-मरण युवको ! तुम्हारी लार है।
पौरुष दिखाओ आज तुम, तुम से अड़ा दुर्दैव है,
तुम देख लो माता तुम्हारी रो रही अतएव है ॥१०२॥

युवकजन ! आप लोगों के स्कन्धों पर ही जाति का भारी बोझा है। जाति की वृद्धि, स्वस्थता, और उसका जीवन और मरण सब आपके अच्छे और बुरे होने पर निर्भर हैं। दुर्भाग्य आप लोगों से 'अड़' रहा है और आप उसका सामना नहीं कर रहे हैं। यह देख कर आपकी माता रो रही है।

युवको ! तुम्हारे प्राण में रतिभाव आकर सो गया,
सुकुमार रति सम हो गये तुम, वेष रति का हो गया।

शक्ति और मन का भी पूर्ण विकाश हो गया। परन्तु दुःख है कि इस समय तक आप युवक जन अपने शारीरिक बल, आत्मिक शक्ति और पुष्ट मन का उपयोग कृष्णपक्ष अर्थात् अन्धकार पूर्ण मार्गों में करते रहे और उज्वल मार्गों में सदा उनको निर्बल पाते रहे।

उस ओर से इस ओर को बल, शक्ति युवको। मोड़ दो
आस्वाद इसका भी चखो, कुछ काल को वह छोड़ दो।
ये दिवस दुखिया जाति के पल मारते फिर जायँगे,
बस सजल होते पंक के, पंकज अचिर खिल जायँगे॥१०६॥

शारीरिक बल और आत्मिक शक्ति को इधर भी लगाइये। इधर का भी आनंद तो चखिये। दीन हुई इस जाति के ये दुःख के दिवस क्षण भर में विनष्ट हो जावेंगे। कीचड ज्योंही जल पूर्ण हुआ कि कमल तुरत खिल उठेंगे।

संसार-भर की दृष्टि है युवको तुम्हारे पर लगी,
तुम हो जगे जिस भाग में, उस भाग में जागृति जगी।
अब एक्यता, सौहार्द को तुम भी यहाँ वर्धित करो,
इसके लिये तन, मन, वचन, सर्वस्व तुम अर्पित करो॥१०७॥

हे युवकजन! समस्त संसार की निगाह आप लोगों की ओर हैं। जिस देश में आप लोग जाग्रत हुए हैं, उसी देश में जाग्रति आई है। अतः तन, मन, वचन और सर्वस्व लगाकर ऐक्यता और पारस्परिक प्रेम की वृद्धि करो।
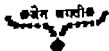
बस आपके उत्थान पर सम्भव सभी उत्थान हैं
होते युवक सर्वत्र ही निज जाति के चिह्न मान हैं।
दायित्व कितना आपका क्या आपने सोचा कभी।
चाहो, अभी तो सोचलो—अवकाश है इतना अभी ॥१०८॥

सभी उत्थान युवकों के उत्थान पर ही निर्भर हैं। सचमुच युवक ही अपनी जाति की चेतनायुक्त आत्मा हैं। आपके ऊपर जाति की कितनी बड़ी जिम्मेदारी है यह भी कभी सोचा है? अभी तो इतना समय है कि आप अगर चाहें तो सोच सकते हैं।

चलते तुम्हारे चरण हैं, हैं काम कर भी कर रहे;
तुम देखते हो आँख से तुम बात मुँह से कर रहे।
फिर भी तुम्हारे में मुझे क्यों प्राण नहीं हैं दीखते ?
विज्ञान-युग में शव कहीं चलना नहीं हैं सीखते ! ॥१०९॥

आपके हाथ पैर आँखें और मुँह अपना अपना काम कर रहे हैं फिर भी आप में मैं प्राण क्यों नहीं देखता हूँ ? यह एक आश्चर्य है। यह विज्ञान का युग है। हो सकता है अब मुर्दे भी चलने लग गये हों।

तुममें न कोई जोश है, उत्साह है, नव-स्फूर्ति है
चलती हुई बस लाश की मानो सजग ही मूर्ति है।
या विश्व में सबसे अधिक जड़ हुआ भारतवर्ष है
जड़त्व में होते किसी के क्या कहीं उत्कर्ष हैं ? ॥११०॥
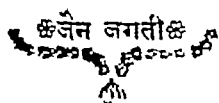
आप में उत्साह, जोश, बल, स्फूर्ति आदि कोई बातें नहीं दिखाई देती। आप चलते हैं, जब ऐसा भाव होता है, मानों कोई उपल पत्थर की मूर्ति चल रही हो। या इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि संसार भर के सर्व देशों में भारतवर्ष अधिक वृद्ध है और बुढापे में किसी की कहीं भी उन्नति सम्भव नहीं होती है।

अपवद, निन्दावाद में खोये रहोगे वक्त तुम ?
कब तक रहोगे यों प्रिया में हाय ! रे अनुरक्त तुम।
पहिचान तुम अब तक सके नहिं हाय ! अपने आपको,
तुममें अतुल बल, शौर्य है,–दुष्कर न कुछ भी आपको ॥१११॥

क्या आप अपना अमूल्य समय अपवाद और एक दूसरे की निन्दा करने में ही नष्ट करते रहेंगे ? और इस प्रकार स्त्री लपटी आप कब तक रहेंगे ? बडे दुःख की बात है आप लोग अब तक अपने आपको पहिचान नहीं सके हो। आप में अतुल बल और पराक्रम हैं। आपके लिये कोई कर्म कठिन नहीं है।

नहिं जाति के, नहिं धर्म के, नहिं देश के तुम काम के,
अपनी प्रिया के काम के, आराम के तुम काम के।
लड़ना अकारण हो कहीं, तुम हो वहाँ पर काम के,
तुम मसखरों के काम के। क्या हो किसी के काम के ? ॥११२॥

जाति, धर्म और देश के लिये आप काम के नही हैं।

अपनी स्त्री, आराम, अव्यवहार्य झगड़े और मसखरों के आप काम के हैं। क्या सचमुच आप किसी के काम के हैं ?

पुरुषत्व तो होता प्रकाशित बस पूर्ण यौवन-काल में
प्रतिभा तथा बल शक्ति होते प्रौढ़तम इस काल में।
तुम सब गुणों में प्रौढ़ हो—नहिं ज्ञात है शायद तुम्हें ?
आगे बढ़ो यदि हो बढ़ाव, देरी लगी क्या कुछ तुम्हें ॥११४॥

पूर्ण यौवनावस्था के प्राप्त होने पर पुरुषत्व प्रकट होता है और प्रतिभा, तथा शारीरिक बल और आत्मिक शक्ति का भी प्रौढ़तम विकास होता है। संभव है यह आपको ज्ञात नहीं है कि आप सब गुणों में भरपूर हैं। तो क्रमशः तो आगे बढ़ो आप को ज्ञात हो जायेगा कि आप में कौन कौन गुण और शक्ति है।

तुमको तुम्हारे काम के अतिरिक्त है अवसर कहाँ।
निज अवर्णनीय झूठ मिथ्यावाद से अवसर कहाँ।
अधिकांश की मन्दाग्नि से बिगड़ी दशा है पेट की।
अवशिष्ट की मैं क्या कहूँ ? बिगड़ी दशा पाकेट की ॥११५॥

आपको अपने निज के कर्मों से तथा निजा प्रत्याख्यान, झूठादि, चर्चाओं से अवकाश भी तो कहाँ है। और कुछ मन्दाग्नि जैसे रोगों से ग्रस्त हैं और शेष निर्धन हैं।

हा पितृ-धन ! हा जाति-धन ! हा धर्म-धन ! हा दरा-धन !
हा ! नाथ ! पी है 'मिट रहा यह राष्ट्र-धन हर एक-धन !

युवको ! तुम्हे आती नहीं होगी कभी भी शर्म हा ।
आती न होगी याद तक—है चीज कोई धर्म हा ! ॥ ११५ ॥

हे परमात्मन् ! ये युवकजन जो पितृ-धन, जाति-धन धर्म-धन, देश-धन और राष्ट्र-धन हैं प्रतिक्षण क्षीण होते जाते रहे हैं। आपको तो लज्जा भी नहीं आती होगी कि हम हैं क्या चीज और बन क्या रहे हैं। धर्म भी कुछ वस्तु है सभव है स्मरण भी नहीं आता होगा।

तुमको न जब यह ध्यान है क्या हो रही निज की दशा ?
आने लगी क्यों ध्यान में तब दीन, निर्धन की दशा ?
युवकों ! तुम्हारे प्राण-बल को शीत कैसा लग गया ?
करते हुए भेषज अल वह गर्म क्यों नहिं बन गया ? ॥११६॥

आप लोगों को अपनी निजकी दशा क्या हो रही है का ही जब ध्यान नहीं तो दीन और निर्धनों की अवदशा का ज्ञान तो होवे भी कैसे ? आपके आत्मबल को नहीं मालूम ऐसी कैसी शर्दी बैठ गई कि अनेक उपचार करने पर भी गर्मी नहीं आ सकी।

युवको ! उठो, आगे बढ़ो, विपदावरण को चीर दो,
सन्तप्त आर्यावर्त को करके दया कुछ नीर दो।
युवको ! तुम्हारा यह बसंती काल शाश्वत है नहीं ?
संसार में क्या एण-तृष्णा के सिवा कुछ है नहीं ?॥११७॥

युवकजन ! जाग्रत बनो ! आगे बढो ! विपत्तियों के छाये

हुये भारतरूप को चीर डाला। दुःखों के असह्य ताप से समस्त भारतवर्ष संतप्त हो रहा है, उसको पानी पहुँचाओ। आपका यह सुन्दर यौवनकाल, वसंतऋतु के सदृश अस्थायी है। दुनिया में मृग-तृष्णा के अतिरिक्त क्या कुछ है ही नहीं?

पंचायतन

पंचो! तुम्हारी शक्ति का अनुमान लग सकता नहीं
तुम दण्ड ऐसे दे सको जो भूप कर सकता नहीं।
सम्राट से, सुर ईश से चाहे मनुज डरता न हो
है कौन जो पशुवत तुम्हारे सामने रहता न हो? ॥११८॥

हे पंचजन! आपकी शक्ति अनंत है। राजा जो दंड नहीं दे सकता वह आप दे सकते हैं। मनुष्य ईश्वर और सम्राट से तो भले डर नहीं खाय लेकिन आप लोगों के आगे किसकी ताकत है जो पशु के समान होकर नहीं रहे।

पंचायतन में ईश का जो भान हम करते रहे
सम्राट से भी अधिक तुमसे आज हम डरते रहे।
पंचायतन में आज पर गुटबन्द आकर भर गया?
अन्याय करने में अभी पंचायतन बस बढ़ गया ॥११९॥

पंचायतन में हमने ईश्वरीय अंशों को देखा था, तब ही तो इससे हम ऐसे डरते हैं जैसे सम्राट से भी नहीं डरते हैं। परन्तु आज उसी पंचायत में गुटबन्द भर गया है और वह अन्याय करने में आगे बढ़ गया है।

जिस जाति की पचायतन में ईश का यदि अश है,
वह जाति जग की जातियों में एक ही अवतंश है।
जिस जाति की पचायतन में न्याय है अरु स्वत्व है,
वह जाति गौरवयुक्त है, उसका अचल-अमरत्व है ॥१२०॥

जिस जाति की पचायतन में ईश्वरीय अश है, न्याय है, सार्वभौम अधिकार है वह ही जाति गौरवशाली है, वही अमर है और ससार की सर्व जातियों में श्रेष्ठ है।

पचायतन में फिर वही ईशत्व यदि भर जाय तो,—
पचायतन में ज्ञान की रे! ज्योति यदि जग जाय तो—
क्या दर फिर हमको लगे जगते हुए, उठते हुए?
कैसे भला स्थिर रह सके तम भोर के फटते हुए?॥१२१॥

हमारी पचायतन में फिर वही पूर्व जैसा ईश्वरीय अश उत्पन्न हो जाय, ज्ञान की ज्योति जग जाय, बस फिर हमको जाग्रत होने में और उत्थान करने में कुछ भी समय नहीं लगेगा। प्रातःकाल के उदय होने पर अधकार कैसे जमा रह सकता है?

पचायतन में ईश का आवास पचो! अब करो,
तुम न्याय,-सयम,- शील सगत वृत का सेवन करो।
अन्याय अत्याचार जो पचायतन में भर गया—
हा! जाति का नैतिक पतन वह मूलतः ही कर गया ॥१२२॥

हे पचजन! पचायतन में ईश्वरीय अश उत्पन्न करो। अधिकारों का उपयोग न्याय, सयम और शीलमयी कीजिये।

अन्याय और अत्याचार ने पंचायतन में प्रवेश करके उसका अधिक सर्वनाश ही कर डाला ।

अपकर्ष पंचो ! रोक दो, विक्रय सुता का रोक दो
अनुचित प्रथायें रोक दो शिशु-पाणि-पीड़न रोक दो,
तुम पाप-मार्ग के पग्र दोनों काट कर तोड़ दो,
अब जातिके अवयव विकल बनकर कमाकर जोड़दो ॥१२३॥

हे पञ्चगण ! अवर्ष व्यय कन्या विक्री अनुचित रीति रिवाज, बाल-विवाहादि जैसी समाज को नष्ट करने वाली बातों को रोक दीजिये । आप काट कर पाप रूपी पक्षी के पंखों को काट डालिये । जाति के विकल हुए अंगों को कलाबान बना कर पुनः जोड़ दीजिये ।

कवि

हमको जगा दो आज कविवर ! तान भैरव छेड़ कर
आलोक करदो भानु का तमसावरण को भेद कर ।
मुर्दे जनों के मृत-पर्वों में काव्य-अमृत डाल दो
सकते उठा नहीं मृत्य को तो काव्य करसे डाल दो ॥१२४॥

हे कविपुंगव ! भैरव राग छेड़ कर हमको आज जागृत बना दीजे । अज्ञान को नष्ट करके ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश प्रकट कीजिये । मृत प्रायः जनों के कानों में काव्य का अमृत डालिये अगर मृत्यजन को आप उठा नहीं सकते हैं, तो काव्य रचना अन्यत्र छोड़ दीजिये ।

इस साम्प्रदायिक जाल को कविता तुम्हारी तोड़ दे,
पारस्परिक रण-द्वेष का सम्पूर्ण ढाँचा तोड़ दे,
बल, ज्ञान, बुद्धि, विवेक दे, तन में अनूठा प्राण दे—
अवसर पड़े पर मर्त्य जिससे प्राण तक का दान दे ॥१२५॥

आपकी कविता साम्प्रदायिक गढ़ों को, पारस्परिक कलह के प्रग्रधों को तोड़ने वाली हो, और बल, ज्ञान, बुद्धि और विवेक-दायिनी तथा तन में नव प्राण फूँकने वाली हो। मर्त्यजनों में जिससे वह जाग्रति आ जावे कि अवसर पर वे प्राण तक देने को तैयार हो जावें।

लेखक

अब उदर-पोषण के लिए लेखक, लिखो नहि लेख तुम,
सब निगाहें आप पर, दो रूप तृष्णा पेख तुम।
तुमको विदित है जाति की जो हो रही हा! दुर्दशा,
कर दे न उसकी ओट में कुत्सा, बुभुक्षा कर्कशा ॥ १२६ ॥

हे लेखकजन। धन कमाने की दृष्टि रखकर किसी ग्रन्थ की रचना मत करिये। संसार की दृष्टि आपके ऊपर लगी हुई है। जिस वस्तु की मांग हो, वह ही दीजिये। जाति की दुर्दशा आप लोगों को अज्ञात नहीं है। अवगुण और कुत्सित प्रकृति वाली चुधा के सामने आप जाति की दुर्दशा को भूल नहीं जावें।

लेखक गणों ने क्या किया, तुम जानते हो रूप में ?
था बोल सेविक कर दिया सब रूप भर की निमिष में।

तुम भी लिखो अब लेख ऐसे—उलट-पलट हो पलक में।
उत्थान लेखों से तुम्हारे अचिरतम ही जगत में ॥१२७॥

रूस में भी व लेखक ही थे जिन्होंने अल्प समय में ही समस्त रूस को साम्यवादी बना डाला आप लोग भी ऐसे ही क्रांतिकारी लेख लिखिये जिससे एक दम कायापलट हो जाय और आप के लेख समस्त संसार में उत्थान को जन्म देने वाले होवें।

तुम साम्प्रदायिक भाव से लिखना न कोई लेख अब
युग की मिटाने के लिए अब चाहिए उल्लेख सब।
है कार्य लेखक का कठिन अवमूल इसको छोड़ दे
लेखक-कला उसको मिले जो भाव मन में जोड़ दें ॥१२८॥

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से अब आप कोई लेख नहीं लिखिये। युगों में नव जीवन का संचार करने वाले ही लेखों की अब आवश्यकता है। लेखक का कार्य महाकठिन है मूर्ख लेखक हमारा करके लेखों की रचना करना छोड़ दें। जो अपने भावों को संयमी बना सकता हो लेखक कला पर एक मात्र उसी का अधिकार स्वीकृत होना चाहिए।

ऐसा लिखो अब लेख तुम जिनका असर तत्काल हो
आकृष्ट जिनसे लोग हित को सत्य कविवर ख्यात हो।
अवसर पड़े जब आप चाहे आपको पे ख्यात भी
यदि अड़ चुके हो अब तुम पीछे हटो नहिं बात भी ॥१२९॥

आलस्य, विषयभोग के लिये सात फन वाले भुजग के सदृश शीघ्रप्रभावक लेख लिखिये। ऐसे लेख लिखते मे अगर आप के प्राणों पर भी महासकट आ जावे, उसको झेलने मे हिचकिचाओ नहीं। आगे जब बढ चुके हो, तो एक बाल भर भी पीछे हटना नहीं चाहिए।

ग्रन्थकर्ता

हे ग्रन्थकर्ता मनिषियो! नवशास्त्र रचना मत करो,
अनुचित प्रथाएँ रस्म पर अब ग्रन्थ निर्मापित करो।
करने लगेंगे यदि भला पर्याप्त ये ही शास्त्र हैं,
शास्त्रानुशीलन फिर सिखा दो, हम दया के पात्र हैं ॥१३०॥

हे ग्रन्थकर्ताओ। नवीन शास्त्रों की रचना मत कीजिये। प्रचलित अनुचित रीति-रिवाजों पर ग्रथ लिखिये। कल्याण ही अगर कर सकेंगे तो पूर्वकाल के लिखे हुये ग्रन्थ ही पर्याप्त हैं। आवश्यकता शास्त्रों का अनुशीलन करना सिखाने की है। हम दया के भिखारी हैं कृपा-करके शास्त्रों का अनुशीलन करना सिखाइये।

अध्ययन पूर्वक तुम लिखो, इस आधुनिक विज्ञान पर,
तुम ग्रथ कितने भी लिखो यूरोप अरु जापान पर।
यह आधुनिक कौशल कला भरा दो सभी तुम ग्रंथ में;
बाधा न होवे फिर हमें बढ़ते हुए को पन्थ में ॥१३१॥
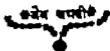
आधुनिक विज्ञान पर और यूरोप और जापानादि देशों पर आप लोग अध्ययन करके खूब ग्रंथ लिखिये और आधुनिक कौशल-कला को ग्रन्थों में अंकित कर दीजिये जिससे हमको आगे के मार्ग में सुविधा प्राप्त हो।

प्रकाशित प्राकृत का सभी साहित्य होना चाहिये
जिसमें न हो अनुवाद भाषा वह न अपनी चाहिये।
सम्पूर्ण होते कामकाज की इस तरह जब रह करो;
आधार सब कुछ आप पर साहित्य को चिरजीव करो ॥११०॥

प्राकृत भाषा में लिखा हुआ समस्त साहित्य प्रकाशित करवाइये। संसार की समस्त भाषाओं में प्राकृत-ग्रंथों का अनुवाद करिये। इस प्रकार विश्व होते हुये इस जैनशासन की पुनः जड़ मजबूत बनाइये। यह सर्व आप लोगों पर आश्रित है। साहित्य को पुनः प्रतिष्ठा में लाइये।

शिक्षक

शिक्षक! तुम्हारे हाथ में सब राष्ट्र की शुभ आश है
निज देश का निज जाति का शिव धन तुम्हारे पास है।
कितना बड़ा दायत्व है, अब आप ही तुम देख लो?
बनते हुए आदर्श तुम आदर्श शिक्षा दे चलो ॥१११॥

हे शिक्षकगण! राष्ट्र का आशारूपी धन आप लोगों के अधिकार में है। देश और जाति का कल्याणकारी धन आप

लोगों के हाथों में है। आप ही विचार कीजिये कि आपकी कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आप स्वयं आदर्श पुरुष बनते हुये आदर्श शिक्षा दीजिये और आगे बढ़िये।

शिक्षित अभी कुछ भी नहीं इनको बढ़ाओ रात दिन,
इसके लिये हो आपका तन, मन, वचन सर्वस्व धन।
हे शिक्षको ! तुम शिशु गणों की अज्ञता अपहृत करो;
शिक्षित इन्हें करते हुए तुम जाति को उपकृत करो ॥१३४॥

तन, मन, वचन और समस्त धन लगा कर शिक्षितों की सख्या बढाने का प्रयत्न रात और दिन कीजिये। छोटे-छोटे बच्चों की अबोधता हरते हुये और इनको शिक्षित बनाते हुये, जाति का कल्याण कीजिये।

पत्रकार

अपवाद,-कुत्सा,-झूठ-लेखन से तुम्हें वैराग्य हो,
बिगड़ी बनाने का तुम्हें उपलब्ध अब सौभाग्य हो।
हमको जगाने के लिये तुम युक्तियों से काम लो,
सोये हुओं को मृत बनादे जो, न उसका नाम लो॥ १३५ ॥

अपवादपूर्ण, निंदनीय तथा झूठे लेख प्रकाशित करने से आपको घृणा होनी चाहिए। हम तो यह प्रार्थना करते हैं कि बिगड़ी हुई बातों को बनाने का सौभाग्य आपको प्राप्त होवे। हमको जाग्रत बनाने के लिये ऐसी युक्तियों से काम

हर पत्र हो नर मात्र का, यह साम्प्रदायिक युग गले।
बस सांम्प्रदायिक गंध से नहिं पत्र पूरित वह मिले ॥१३८॥

अब तक आप लोग रागादि कुत्सित मनोभावों का ही प्रचार बढ़ाते रहे। कृपा करके अब दूसरी दिशा लीजिये। जिससे हर पत्र को प्रत्येक जन अपना समझे और यह साम्प्रदायिक युग जिससे नष्ट हो जाय। हम इतना ही चाहते हैं कि कोई भी पत्र साम्प्रदायिक गंध से पूर्ण नहीं होवे।

शिक्षणसंस्थाओं के संचालक

संचालको! विद्याभवन सब आपके आदर्श हों;
सर्वत्र विद्याभ्यास का अतिशय चढा उत्कर्ष हो।
शिक्षक सभी गुणवान हों, सब छात्र प्रतिभाशील हों;
वातावरण चटशाल का सुन्दर, शिव सुखशील हो ॥१३९॥

संचालकजन! आपके शिक्षणालयों में आदर्शता आनी चाहिए। विद्याभ्यास अतिशय बढा हुआ हो। गुणवान शिक्षकजन हों। प्रतिभा-सम्पन्न छात्रगण हों। शिक्षणालय का वातावरण आकर्षक, कल्याणकारी और सुखदायी हो।

विद्याभवन में नाम को नहिं साम्प्रदायिक भाव हो,
ऐसे न शिक्षण हों वहाँ, जिनसे सबल पर दाँव हो।
सौजन्यता का, एक्यता का प्रेम पूर्वक पाठ हो,
विनयादि सत्तम शुभ गुणों का पाठ गृह वह हाट हो ॥१४०॥

यहाँ साम्प्रदायिक भावनाओं का आभास मात्र भी नहीं होना चाहिए। ऊँच नीच राव-रंक आदि भेदों का नाश करने वाला सार्वभौम संगठन और सदाचार का शिक्षण होना चाहिए। विद्यार्थियों में विनय आदि उत्तम एवं कल्याणकारी गुणों की वृद्धि होनी चाहिए।

गुरुकुल व्यवस्थित हों सभी, चालक सभी गुणधाम हों।
जातीय झगड़े हों नहीं निर्भेद विद्याधाम हो।
संचालको! ये छात्रगण सब जाति की सम्पत्ति हैं
इनको अगर दुःख हो गया सब ओर से आपत्ति है ॥१४१॥

गुरुकुलों की सुव्यवस्था हो। गुणधाम संचालक हों वहाँ जातीय झगड़ों का प्रभाव नहीं हो। लिंग भव जाति भेदादि विद्या के धाम में बाधक नहीं हों। ये छात्रगण ही समस्त जाति की एक मात्र सम्पत्ति हैं। इस सम्पत्ति के बिगड़ने पर चारों ओर से आपत्तियों का प्रकोप होना संभव है।

सबकी लगी है दृष्टि इन सब गुरुकुलों के ओर ही
एकत्र भी तो हो रहा धन जाति का इस ओर ही।
संचालको! हे शिक्षको! कितना बड़ा यह बोझ है
फिर भी तुम्हें सब सौंप कर ये कर रहे संतोष हैं। ॥१४२॥

सर्वजन इन गुरुकुलों की ओर बड़ी आशा भरी दृष्टियों से देख रहे हैं सच भी है क्योंकि समाज का छात्ररूपी धन भी तो यहाँ एकत्रित हो रहा है। हे संचालक तथा शिक्षकगण!

समाज यह महान भंडार आप के संरक्षण में देकर संतोष कर रही है।

नारी

नारी कला अब हाय ! रे ! विग्रह, कलह में रह गई।
मरते हुए हम मर्त्य पर भरकम शिला-सी गिर गई।
जब लड़ रही हों ये नहीं, जाता निमिष ऐसा नहीं।
इस दृष्टि से बहनो ! तुम्हारे नाम हैं अनुचित नहीं ॥१४३॥

अब स्त्रियाँ विग्रह और कलह करने में ही कौशल दिखाती हैं। हम तो पहिले से ही मृतप्रायः हैं, ये स्त्रियाँ भारी शिला के समान हम पर टूट कर गिर पड़ीं। ऐसा कोई क्षण नहीं निकलता, जिसमें ये नहीं लड़ रही हों। यह देखते हुये तो आपके ये सारे नाम अनुचित नहीं हैं।

बहनो ! तुम्हारे पतन में अपराध है सब पुरुष का,—
ऐसा नहीं तुम कह सको, कुछ आपका, कुछ पुरुष का।
तुमको नचाते हैं पुरुष—उनका यही व्यभिचार है,
सफुल्ल हो कर नाचती हो तुम, यही रसचार है ॥१४४॥

एक मात्र पुरुष ही आप की अवनति के कारण है—यह आप नहीं कह सकतीं। पुरुष आपके साथ मनमानी करते हैं और आप उनकी इच्छानुसार भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक चलती हैं। दोनों ही अपराधी हैं।

घर में तुम्हारा राज्य हो प्रति स तुम्हारा प्रेम हो,
बाहर सदा सहयोग हो समान तुमको क्षेम हो।
इस भाँति से पतिदेव को सहयोग यदि देने लगो—
सुख के दिवस आ जायेंगे सुख स्वप्न लेने लगो ॥१४३॥

आप घर की व्यवस्था पूरे उत्तरदायित्व के साथ करें। पति से प्रेम कर। घर के बाहर होने वाले कार्यों में भी हाथ बटाव। संतान को सर्वस्व समझ। इस प्रकार अपने पति को सुख और सुविधा पहुँचायें। सौभाग्य जग जायगा और सुख स्वभावतः घर में रहेगा।

नारि-कला से आज भी यदि प्रेम जो रहता तुम्हें
ऐसा विषिन दारिद्रय तो नहिं दर को मिलता हमें।
तुम जिन दिनों में हाथ से चर्खा चलाती नित्य थीं।
सुख से भरे वे दिवस थे करती सभी तुम कृत्य थीं ॥१४४॥

स्त्री-कलाओं के सीखने में अगर आज भी आप की रुचि होती तो ऐसी भयंकर दीनावस्था तो नहीं होती। जब आप चर्खा चलाती थीं तब सुख के दिन थे। उस समय आप सर्व कार्य हाथों से करती थीं।

जब से बनी तुम कामिनी भूखा पराधी भामिनी
दुर्भाग्य की तब से हमारे पड़ गई कच यामिनी।
वे आपके बिन भर मराधम भी न जो सकते कभी ?
सम हो जहाँ दोनों, वहाँ कोई कमी रहते कभी ? ॥१४५॥

जब से आप चचला, मूर्खा और पर पुरुष की ओर ताकने वाली हुई, तभी से दुर्भाग्य की अधकार पूर्ण रात्रि आ गई। आपके बिना ये अधम मनुष्य भी जीवित नहीं रह सकते। जहाँ दोनों एक से पथभ्रष्ट मिल जायें, वह पतन में फिर क्या कमी रह सकती है।

हे मातृ! भगिनी! आप अपनी इस दशा का हेतु हैं,
अपने पतन के कारणों में आप कारण केतु हैं।
आदर्श, साधवी आप थी जब, देश भी आदर्श था,
सतान थीं सब सद्गुणाकर, शिव सुख, उत्कर्ष था ॥१४८॥

हे माताओ! बहिनो! आपकी इस पतनदशा के कारणों में प्रमुख कारण तो आप स्वय ही हैं। आप आचार स, विचार से जब आदर्श थीं, यह देश भी आदर्श था। सतान भी गुणवान थीं और कल्याणकारी एव सुखदायी उन्नतिकाल था।

इतिहास बहनो! आज तक का यह हमें बतला रहा—
ससार पीछे आपके मरता हुआ है आ रहा।
वह राम-रावण युद्ध भी था आपके कारण हुआ,
विध्वश कौरव-पाडवों का आपके कारण हुआ ॥ १४९ ॥

स्त्रियों के पीछे ससार पागल है—यह इतिहास सिद्धि है। लका और कुरुक्षेत्र के भंयकर सग्राम स्त्रियों के कारण ही हुये थे।

पीछे तुम्हारे भूप कितने रंक निर्धन हो गये?
पाकर तुम्हें योगी, ऋषी पथ भ्रष्ट कितने हो गये?

इस काल के ये मनुज तो फिर क्या बिचारे जीव हैं
यह मोहिनी बहनो ! तुम्हारी काम का ही बीज है ॥१२०॥

काम के कारण अनेक राजा दीन और कंगाल हो चुके। अनेक योगी और मुनि आचरण भ्रष्ट हो चुके। इस कलियुग के पुरुष तो फिर बिचारे वस्तु ही क्या है? पुरुष काम की ओर जो सहज आकृष्ट होते हैं उसका कारण काम की वासनापूर्ण-चंचलता है।

वैसे जगत में काम की जगती सदा ही व्याप्त है
अनुकूल यदि तुम मिल गईं, पूरी भड़कती आग है।
त्रेतादि द्वापर में तुम्हारी जाति में भी शक्ति थी
अतएव कामी मनुज की चलती न कोई युक्ति थी ॥१२१॥

वैसे काम वासनाओं का जगत में प्रकोप सदा रहता है। जिस युग में स्त्रियें अनुकूल हो जाती हैं कामाग्नि आत्यधिक भड़क उठती है। सत्ययुग त्रेतायुग और द्वापर युग में स्त्रियें पराक्रम शालिनी थीं अतः कामी मनुष्य का कोई वश नहीं चलता था।

तुम हाय ! महिलो आज तो इतनी पतित हा ! होगईं।
रस पात्र—शोभा की अहो साकार प्रतिमा हो गईं।
संयम-भरा वह तेज-बल जब तक न तुममें आयगा।
तब तक न कोई धन्य हा ! इस दुर्दशा का आयगा। ॥१२२॥

हे बहिनो! आज आप कामदेव की लीलाओं की साक्षात् मूर्त्तियों के समान हैं। यह आप का भयंकर पतन है। जब आप पुनः शीलवती और सदाचारिणी बनेंगी, तब ही आपकी यह अवदशा शान्त होगी।

बहिनो! तुम्हारे हाथ में कितना अतुल बल-वीर्य्य है।
क्या बादशाही काल में कुछ कम दिखाया शौर्य्य है?
वह बल तुम्हारे में अभी जो क्रान्ति करके जग उठे।
बहिनो! तुम्हारी अवदशा यह निमिषि भर में जल उठे॥१५३॥

जब मुसलमान बादशाहों का शासनकाल हम को स्मरण आता है, ज्ञात होता है कि आप अतुल बलवती और वीर्य्य-शालिनी थीं। वही बल और वीर्य्य अगर आज पुनः जाग्रत हो जाता है, तो आपको इस अवदशा का अन्त भी एक क्षण में हो जाता है।

पर आज तो बहनो! तुम्हें कटुशील है लगने लगा,
बालायु में ही आपका अब काम मन हरने लगा।
यह मनुज कामी श्वान है, कामी शुनी तुम बन गई,
अब नाश की तैयारियों में क्या कमी है रह गई?॥१५४॥

बहिनो! बड़ा दुःख है। शीलव्रत का पालन आज आपके लिए कठिन हो गया है। बाल-अवस्था में ही आप काम के वशीभूत हो जाती हैं। मनुष्य कुत्ते के समान महा कामी है ही और फिर आप भी अगर कामिनी कुत्तियों के समान उनको

२८

सहन हो जाती हैं, तो समभाव होने में कोई कमी नहीं समझनी चाहिए।

> महिलो! बढ़ो तुम चीर कर संकोच लज्जा-चीर को,
> कामी जनों से भिड़ पड़ो तुम खींचकर शमशीर को।
> अन्यायियों ने आज तक तुम पर किया अन्याय है,
> अन्यायियों के तो लिए तलवार अन्तिम न्याय है॥१४॥

महिलो! संकोच और लज्जा के चीर को फाड़कर बाहर निकलो। तलवार ग्रहण करके कामी पुरुषों का सामना करो। इन अन्यायियों ने आज तक आप पर मनमाने अत्याचार किये हैं। अत्याचारियों के लिये तलवार का प्रयोग ही अन्तिम न्याय कहा गया है।

> मूर्खा न अब यों तुम रहो। पराधीना नहिं रहो?
> अपना हिताहित सोच लो दासी नहीं बनकर रहो।
> सम भाग पाने के लिये अब तुम बढ़ो भी जोश कर।
> अर्धांगिनी हैं आप तो, आधा उठाओ बोझ कर॥१५॥

आप अब पर्दे की ओट में तथा अनपढ़ नहीं रहो। अपना कर्त्तव्य सोचो। दासी के समान पददलित होकर मत रहो। पुरुषों के बराबर अपना अधिकार प्राप्त करो। आप अर्धांगिनी कहलाती हैं तब समाज और धर्म में आप का आधा अधिकार स्वयंसिद्ध है।

बहिनो ! तुम्हारे जब उरों में क्रान्ति लहरा जायगी,
इस वृद्ध भारतवर्ष में गत शक्ति फिर आ जायगी।
अनमेल, अनुचित पाणि-पीड़न बन्द सब हो जायँगे,
नर रत्न फिर देने लगोगी, फिर धनी हो जायँगे ॥१५७॥

बहिनो ! जब आपके हृदयों में क्रान्ति जगेगी, तब ही इस वृद्ध भारतवर्ष में पुनः शक्ति जगेगी, अनमेल और अनुचित विवाहों का होना तब ही बद होगा। फिर तो आप अमूल्य पुत्र रत्न उत्पन्न करेंगी, जिससे फिर सुपुत्र प्राप्त कर यह भारतवर्ष धनी कहा जायगा।

विधवाओ

भवितव्यता तो फलवती होये बिना रहती नहीं,
प्रारब्ध के अनुसार ही भवितव्यता बनती सही।
पुरुषार्थ से प्रारब्ध का निर्माण होता है सदा,
जिस भाँति का पुरुषार्थ है, प्रारब्ध वैसा है सदा ॥१५८॥

प्रकृति का नियम है कि जो होने वाला है, वह होगा। परन्तु यह स्मरण रहना चाहिए कि कर्म के अनुसार ही फल होता है। कर्म करने से ही भाग्य बनता है, जैसा कर्म होता है, वैसा ही प्रारब्ध अर्थात् भाग्य बनता है।

पुरुषार्थ तुम करती नहीं, फिर भाग्य को तुम दोष दो,
सब कुछ तुम्हारा दोष है, क्यों दूसरों को दोष दो।

सभा

अब ऐक्यता—सौहार्दशीलन हर सभा का ध्येय हो,
मत्सर-गरल के स्थान पर अब प्रेम-रस ही पेय हो।
अब व्यक्तिगत कल्याण की सब कामनाएँ तोड़ दो,
बढते हुये वैशम्य की ग्रीवा पकड़ कर मोड़ दो॥ १६१॥

प्रत्येक सभा का उद्देश्य ऐक्यता और पारस्परिक मेल स्थापित करने का होना चाहिए और तथा वह पारस्परिक राग-द्वेषों के स्थान पर प्रेम रस का ही पान करे। व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर इस प्रकार बढ़ती हुई विषमता की गर्दन मोड़ देनी चाहिए।

कु प्रपच करना छोड़ दो, गाँठे हृदय की खोल दो,
सबमें परस्पर प्रेम हो, मिश्री मनों में घोल दो।
सब हों सभाएँ एकविध हो सूत्र सब का एक सा,
कोई सभा में हो नहीं वह साम्प्रदायिक कर्कशा॥ १६२॥

सभायें प्रपंचों का जाल बिछाना त्याग दें। मनुष्यों के हृदयों में पड़ी हुई कपट की ग्रन्थियों को खोल दें, सब में परस्पर प्रेम स्थापित करदें, मनों में मिठास उत्पन्न कर दें। समस्त सभाओं के विधान और कार्य एक ही उद्देश्य के हों। किसी भी सभा में साम्प्रदायिकता के कुत्सित भाव नहीं मिलने चाहिए।

मण्डल

अब मण्डलो! नहिं साम्प्रदायिक बंदियाँ करते रहो
हो ध्येय-च्युत निज वर्ग का मण्डन नहीं करते रहो।
उपकार जात्युद्धार ही अब मण्डलों का ध्येय हो
उत्थान के छोटे बड़े सब मार्ग तुमको ज्ञेय हो ॥१५३॥

अब मंडलों का कार्य साम्प्रदायिक हलबन्दी करना तथा अपने वर्ग का ही ढोल पीटना नहीं होना चाहिये। जाति का उद्धार करना ही मंडलों का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। तथा मंडलों को उत्थान के छोटे-बड़े समस्त मार्गों का ज्ञान होना चाहिए।

यदि मण्डलो! तुम पूछते हो सच मुझे तो अब कहूँ—
धन्वी सभा मण्डल इषु, दल धनुष, लक्षित हम कहूँ।
तुम दीन हो दीना तुम्हारी जाति, भारत दीन है,
मण्डल बने हो मण्डलो! अब तो यही कौपीन है ॥१५४॥

सच बात तो यह है कि सभायें तो धनुर्धारी हैं, मण्डल तीर हैं, जातीय दल धनुष हैं और शेष हम सब लक्ष्य हैं जिस पर सभा रूपी धनुर्धर मंडल रूपी तीर को जातीय दल रूपी धनुष पर रख कर मारता है। मण्डल स्वयं, जाति तथा भारतवर्ष सब के सब एक दम दीन हैं, निर्धन हैं। अब तो लंगोट मात्र बच गयी है। हे मंडलो! सतर्क होने का यत्न कीजिये। ॥

जिन मण्डलों का काम खलु भोजन कराना मात्र है,
सर्वत्र वे लेखे गये उपहास के ही पात्र हैं।
आज्ञा दलाधिप की नहीं उनके लिये कुछ चीज है,
विग्रह, वितन्डावाद के लेखे गये वे बीज हैं ॥१६५॥

जो मण्डल विशेष अवसरों पर केवल भोजन संबंधी व्यवस्था ही करते हैं, उनकी हँसी ही होती देखी गई है। ऐसे मंडल अनुशासन किस वस्तु का नाम है जानते तक नहीं। ऐसे मंडल कलह और झगड़ों के ही कारण भूत होते हैं।

ये एक विगलित पेटिका हित तोडते देखे गये—
उन मण्डलों को जो कि जिनवर नाम से लेखे गये।
पदत्राण ये पहिने हुये भोजन परोसेंगे तुम्हें!
परिचय उचित निज इस तरह देते रहेंगे ये तुम्हें ॥ १६६ ॥

भगवान् जिनेश्वर के नाम के पीछे ये मण्डल खोल जाते हैं। और टूटी-फूटी अथवा जीर्ण-शीर्ण पेटी के लिये मण्डल के सदस्यों में भारी कलह उत्पन्न हो जाता है चमड़े के बने हुये जूते पहने हुये ये भोजन परोसते हैं। ये क्या हैं—इस प्रकार रह कर तथा करके ये अपना परिचय आप स्वय देते रहते हैं।

ऐसे विषम वातावरण में सभ्य मण्डल चाहिये,
दम्भी तवण-तस्कर, हटी नहिं सभ्य दल, वल चाहिए।
जो ब्रह्मवर्ती है सदा आदर्श वह ही सभ्य है,
अभिजात मण्डल हैं वही, अभिजात जिसके सभ्य हैं ॥१६७॥
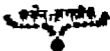
ऐसी विकट स्थिति में तो आदर्श मण्डलों की ही एक मात्र आवश्यकता है जिसके सदस्य द्वेषी, जुआड़ी, चोर, अनीतिप्रिय नहीं होवें। जो सदस्य सदाचारी हैं, वही आदर्श सदस्य हैं। आदर्श-मण्डल भी वही है, जिसके सदस्य आदर्श, उदार और सच्चे हैं।

संख्या अधिक गुण्डे वर्गों की हाय! इसमें -पायगी!
तुम देख लेना मण्डली अपयश होकर खोयगी।
अतएव ऐसे मण्डलों को तुम कुचल दो; एक हम
अभिप्राय तुम आगे बढ़ो आगे बढ़ो तुम दो कदम ॥१६॥

इन मण्डलों का अगर निरीक्षण किया जाय, तो इसमें कार्य करने वाले युवक अधिकतर गुण्डे मिलेंगे। जहाँ भी ये मण्डल जाते हैं, कलह के बीज ही बोते हैं, ऐसे मण्डलों का तो अस्तित्व ही मिटा देना चाहिए। हे आदर्श, *उदार और सच्चे युवको! आगे बढ़ो और इन मण्डलों में भर्ती* होकर इनको आदर्श बनाओ।

उद्योग-धन्धों के लिये तुम शान्ति से झगड़ा करो;
उन्मूल करती हो प्रथा-माया, उसे मिटा करो॥
सौहार्द हो हो प्रेम शुचि सुन्दर परस्पर भाव हो।
हो शिक्षिता नारी यहाँ—मण्डल! तुम्हारे दांव हो ॥१७॥

हे मण्डलो! स्त्रियों को पढ़ाना परस्पर सौहार्द, पवित्र प्रेम सद्भावनाओं की स्थापना करना कुरीतियों तथा अनुचित मोह-माया का नाश करना और उद्योग-धन्धे खोलने के लिये समाज में क्रांति का करना तुम्हारे कार्य होने चाहिए।

तीर्थ
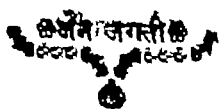
ये पतित-पावन धाम हैं, मात्सर्य्य का क्या काम है,
द्विज, शूद्र दोनों के लिये ये तीर्थ सम सुखदाम हैं।
द्विज! साम्प्रदायिक पंक से पंकिल इन्हें तुम मत करो;
दर्शन निमित आये हुये नहिं शूद्र को वर्जित करो ॥१७०॥

ये तीर्थ तो पतितों को पवित्र करने वाले स्थान हैं। यहाँ पर मत्सरता का क्या काम है? सवर्णों और शूद्रों के लिये ये तो एक-से सुखदायी हैं। हे द्विजगण! साम्प्रदायिकता के कीचड़ से इनको दूषित मत करो। दर्शन करने के लिये आते हुये किसी शूद्र को मत रोको।

एकत्र अगणित कोष का करना यहाँ अब व्यर्थ है,
इनमें करोड़ों हैं जमा, उपयोग क्या? क्या अर्थ है?
हे बन्धुओं! तुम कोर्ट में इनके लिये अब मत लड़ो;
अब लड़ चुके तुम बहुत ही, आगे कृपा कर मत बढ़ो ॥१७१॥

मंदिरों में अब अधिक धन राशि का जमा करना व्यर्थ है, क्यों कि जितना जमा है, उसका भी कोई सदुपयोग नहीं हो रहा है। हे बन्धुगण! मंदिरों के प्रश्न को लेकर हम ऊंचे से ऊंचे न्यायालय तक जा चुके हैं। इससे आगे अब मत बढ़िये अर्थात् अब आगे बढ़कर हम संहारनीति ही ग्रहण कर सकते हैं। यह स्थिति तो कम से कम कृपा करके उत्पन्न नहीं करिये।

मन्दिर

पक्के पुजारी अब विधर्मी वे वणिक रहने न दो
गहना तुम्हारे मंदिरों की अब अधिक बढ़ने न दो।
ये पवित्र होकर भक्त अब हैं भृत्य-वत्, पर आ गये
हा! धन-प्रथा से मूल्यगम्य सर्वत्र देखो आ गये ॥१८२॥

मंदिरों में विधर्मी तथा वेतन पर पुजारी मत रक्खो। अधिक तथा जहाँ अनावश्यक हों नये मंदिर मत बनाओ। वेतन लेकर जो एक दिन भक्त थे वे नौकर हो गये और ऐसे नौकर जातकों की कहानी की भाँति समस्त जैन-समाज में भरे हुये हैं।

विद्या-प्रेम

जो शिक्षणालय खोलने की धुन तुम्हारी योग्य है
शिक्षा-प्रणाली पर तुम्हारी ध्यान देने योग्य है।
शिक्षापरायण शिक्षणालय एक इनमें है नहीं।
सब साम्प्रदायिक मात्र हैं, विद्या-परायण हैं नहीं ॥१८३॥

शिक्षण-संस्थाओं के खोलने की धुन सराहनीय है परन्तु दूषित शिक्षा-प्रणाली आपके समस्त किये पर पानी फेर रही है। आपकी एक भी शिक्षण संस्था ऐसी नहीं मिलेगी, जो यथायुक्त शिक्षा देने का कार्य तत्परता से करती हो। ये सर्व साम्प्रदायिक अखाड़े हैं और विद्या-दान ही एक मात्र जिनका ध्येय है वह एक भी नहीं।

विद्या-भवन में विष भरा शिक्षण न विद्यादान दो,
विद्यार्थियों को अब नहीं ऐसा अपावन ज्ञान दो।
बालक अधूरा ज्ञान में घर का न कोई घाट का,
वह हाट में भी क्या करे, नहिं ज्ञान जिसको बाट का ?॥१७४॥

विद्याशालाओं में अब कृपा करके जहरीली विद्यायें नहीं पढ़ाइये। विद्यार्थियों को ऐसा दूषित ज्ञान मत दीजिये। अर्धज्ञानी बालक कहीं का भी नहीं रहता। जिसको बाँटों की पहचान भी भली विधि नहीं, वह दूकान में क्या सफलता प्राप्त करेगा।

यों दुर्व्यवस्थित शिक्षणालय आज से रक्खो न तुम,
अतिरिक्त विद्याभाव के कुछ दूसरा रक्खो न तुम।
शिक्षक अधूरे हों नहीं, सब ज्ञान गरिमागार हों,
कौशल-कला-विज्ञान का विद्याभवन भण्डार हो॥१७५॥

आज से आगे शिक्षण संस्थाओं को दुर्व्यवस्थित मत रहने दो। उनमें अतिरिक्त विद्यादान देने के और कोई भाव मत रहने दो। शिक्षक भी पूरे ज्ञानवान रक्खो। विद्याशालाओं को कला, कौशल तथा विज्ञान का भंडार बनाओ।

हर ग्राम में चटशाल हो, गुरुकुल तथा पठशाल हो,
ऐसा न कोई ग्राम हो, जिसमें न विद्याशाल हो।
शुचि पुण्य भावों से भरा संचालकों का वर्ग हो,
आदर्श विद्या प्रेम हो तो क्यों न भारत स्वर्ग हो॥१७६॥

मूर्खा स्त्रियाँ सुसतान कैसे उत्पन्न कर सकती हैं? कुण्ठित धार वाली तलवार सहार नहीं कर सकती।

कर दो हमारी देवियों को शिक्षिता, वर-पण्डिता,
फिर जाति आपोआप ही हो जायगी चिर मण्डिता।
ससार-जीवन-शकट के नर, नारि ये दो चक्र हैं,
हो एक दृढ़ दूजा अबल, अवरुद्धा-गति रथ-चक्र हैं ॥१७६॥

हमारी उन देवियों के शिक्षिता और पण्डिता होते ही यह समाज आपों आप गौरवशाली हो उठेगा। स्त्री और पुरुष दोनों सासारिक जीवन रूपी रथ के दो चक्र हैं। एक चक्र अच्छा हो और दूसरा बुरा तो भी अच्छे चक्र की प्रगति पर बुरे चक्र की विकलता का अवश्य प्रभाव पड़ेगा और रथ की गति में रोक आ जावेगी।

सुत पक्ष की जैसी तुम्हें चिन्ता सुता की भी करो,
दोनों शकट के चक्र हैं, सुत तुल सुता को भी करो।
जीवित रहो वह देखने दिन जब सुता-पढने लगे;
तब देखना मृतवर्ग ही अपवर्ग-सा लगने लगे ॥१८०॥

पुत्र और पुत्री दोनों को समान समझो। दोनों ही एक रथ के चक्र हैं। पुत्र के बराबर पुत्री को भी बनाओ। वह दिन, जब आप की कन्यायें पढ़ने लगेंगी, देखने के लिए ईश्वर आपको जीवित रक्खे। उस समय आप देखना कि यह मृत्युलोक भी स्वर्गलोक के समान सुन्दर और कल्याणकारी प्रतीत होने लगेगा।

साहित्य-सेवा

साहित्य-सेवा शब्द तुम को तो अपरिचित-सा लगे
साहित्य के प्रति प्रेम कितना—कुछ पता इससे लगे।
हे मूर्खते जीती रहो, हामी तुम्हारे हैं हमीं
सीखे न लिखना नाम हम, कोई नहीं हम में कमी ॥१८२॥

मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि 'साहित्य-सेवा' शब्द ही हमारी समाज के लिए एक अपरिचित शब्द है। इससे हम समझ सकते हैं कि हमारी समाज का साहित्य से कितना प्रेम है? मूर्खते! तुम जीवित रहो। हम तुम्हारा पोषण मनोविच करते ही हैं। हम अपना नाम भी शुद्ध नहीं लिख सकते। हमारी मूर्खता में कोई कमी नहीं है।

साहित्य के प्रति प्रेम उर में बन्धुओ! जाग्रत करो
साहित्य जीवन-मंत्र है, तुम जाप इसका नित करो।
साहित्य-सष्टा मनिषियों को हर तरह सहयोग दो
स्वाध्याय-शाला खोल दो सविधा तथा मनयोग दो॥१८३॥

हे बन्धुओ! साहित्य के प्रति अपने हृदयों में प्रेम को जाग्रत कीजिये। साहित्य ही जीवन है—यह अच्छी प्रकार समझ लीजिये। साहित्य-सेवकों को स्वाध्याय-शालायें खोल कर तथा अनेक सुविधायें देकर मनपूर्वक सहयोग दीजिये।

चाहे 'जिनेन्द्र' 'गुलाब' का तुम मान-वर्धन मत करो,
करके दया श्रीमंत ! पर तुम मान-मर्दन मत करो।
सतोष तुम इतना करो, उत्साहयुत बढ़ जायँगे,
भण्डार पहिले ही भरे, भण्डार फिर भर जायँगे ॥१८३॥

श्री जिनेन्द्रकुमार तथा श्री गुलाबराय एम. ए का भले आप उचित मान नहीं भी करें, परन्तु श्रीमंत ! उनका अपमान तो नहीं करो। अपने पर आप इतनी संयम रख लीजिये। इससे भी हमारा उत्साह बढ़ जावेगा और उन्नति कर सकेंगे। प्राकृत भाषा में तो हमारा साहित्य बेजोड़ है ही, हिन्दी भाषा में भी हम फिर तो बेजोड बना सकेंगे।

योजना

श्री 'निखिल-जिनमत-बृहद्-परिष्द्' आज हम कायम करें,
छोटे बड़े अधिकार सब उसको समर्पित हम करें।
वह जैन-जगती में हमारी सार्वभौमिक शक्ति हो,
हम पर उसे अनुराग हो, उसमें हमारी भक्ति हो ॥१८४॥

'निखिल-जिनमत-बृहद्परिषद' नाम की हम एक साहित्य सभा आज स्थापित करें और साहित्य-सृजन, प्रकाशन संबंधी समस्त अधिकार देकर उसको सशक्त बनावें। हमारे ऊपर उसको सदा कल्याण दृष्टि हो और हम उसकी प्रत्येक आज्ञा का तथा उसके द्वारा किये प्रत्येक साहित्यिक कार्य का मान करें।

सब हो समान वैतनिक शिक्षा वसित सेवते रहें
समर्थ कार्यों में प्रेरक हो समके कार्यों में बल दें।
प्रत्येक तीजे वर्ष पर दे प्रब समासद हों नये,
जो हो सकें सब भव्य जिसके अधिक अभिमत हो गये॥२४॥

इस साहित्य-परिषद् के सर्व सदस्यों को प्रतिवर्ष वेतन दिया जाना चाहिए। इन सदस्यों के हाथों में समस्त समाज की संचालन शक्ति होनी चाहिए और उनके हाथों में अधिकार इस पद होना चाहिए। प्रत्येक तीसरे वर्ष उनका फिर चुनाव हो और जिनके अधिकतम मत आवें वे ही सदस्य बनने चाहिए।

इसकी अनेकों शाख हों सर्वत्र फिर फैली हुई
सबकी व्यवस्था एक से ही ढंग पर हो की हुई।
सबकी प्रणाली एक हो कर्तव्य सब का एक हो;
हो भिन्न साधक कार्य-गुण पर केन्द्र सबका एक हो॥२५॥

साहित्य-परिषद् की सर्वत्र भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर शाखायें हों। सब शाखाओं की व्यवस्था, कार्यप्रणाली, और उद्देश्य एक हो। प्रत्येक सभा का कार्य भले भिन्न भिन्न हो। परन्तु सब शाखाओं का केन्द्रीय साहित्य परिषद से पूरा पूरा संबंध हो।

विद्वत्-सभा, विद्या-सभा, कौशल-सभा, शिल्पी-सभा
छात्र-परिषद् युवक-परिषद् युवती-सभा नारी-सभा।
शिक्षक-सभा, साहित्य-परिषद्, बाल-विवाहावरक-सभा
विज्ञान-परिषद् धर्म-परिषद् राजनैतिक-सब-सभा॥२६॥

श्री साधु-परिषद, कुंवर-दल, कन्या-कुमारी परिषदा,
दीक्षा-सभा, मन्दिर-सभा, श्री तीर्थ रक्षण-परिषदा।
इन्द्रा सभाश्रम, समिति, दल, मण्डल, अहो! स्थापित करें—
बीते हमारे दिवस वे पीछे नहीं क्यों फिर फिरे॥ १८८॥

इन छंदों का शब्दार्थ करना शब्दों का पिष्टिपेषण ही होगा।

निज राज्य के भी राज्य की हम नींव ऐसे गड़ सकें,
उत्थान की सोपान पर हम दौड़ ऊँचे चढ़ सकें।
हो ऐक्यता जिस ठौर क्या होती नहीं साफल्यता,
बढ़ने लगे धन, धर्म यश घटने लगे वैफल्यता॥ १८९॥

किसी राज्यप्रान्त के अभाव में भी हम इस प्रकार की व्यवस्था करके एक सामाजिक राज्य की दृढ़ नींव लगा सकते हैं। ऐसा करके हम अत्यधिक उन्नति कर सकते हैं। जहां ऐक्यता हो वहां सफलता अवश्य है धन, धर्म, और कीर्ति वहां बढ़ते हैं और हर प्रकार की विफलता घटती है।

कुछ भी न चिन्ता साम्प्रतिक हम अवदशा की यदि करें,
रोगी हुए जन के लिये उपचार यदि हम नहि करें—
परिणाम होगा क्या वहाँ—क्या हो नहीं तुम जानते?
फिर क्यों न मेरे बन्धुओ! हो बात मेरी मानते॥ १९०॥

बिगड़े हुये वर्तमान की यदि हम चिंता नहीं करेंगे, बिमार पड़े हुये प्राणी का यदि हम उपचार नहीं करावेंगे तो जो परिणाम निकलेंगे, वे हमसे छिपे नहीं है। तब हे मेरे भाइयो! मेरे कथन को आप क्यों नहीं कान दे रहे हैं?
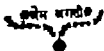
जब तक नहीं ये जाति के सब रोग खोये जायँगे,
तब तक न जीवन के दिवस फिर स्वस्थ होने पायँगे।
ये रोग हैं, या व्याल हैं साकार तन में काल हैं,
फिर भी नहीं उपचार है—ऐसा भयावह हाल है ॥ १८१॥

हमारा सामाजिक जीवन तब तक स्वस्थ और सुखी नहीं बन सकता जब तक कि सामाजिक रोगों का नाश नहीं हो जाता है। समझ भी नहीं पड़ती कि ये रोग हैं? काले भुजंग हैं या समाज की देह में स्वयं यमराज प्रवेश पा चुके हैं? ऐसी दयनीय स्थिति है। फिर भी हम कोई उपाय नहीं कर रहे हैं।

उपसंहार

लेखनी

तू भूत भारत गा चुकी तू रो चुकी इस काल को
हे लेखनी! अथवा चुकी भावी अनागत काल को।
अब वेग अपना थाम ले विश्राम ले, संतोष कर,
इतना अलं होगा प्रिये। यदि हो गया कुछ भी असर ॥१८२॥

मेरा भाव

गाना प्रथम था ध्येय मेरा भूत भारत की मही
फिर साम्प्रतिक भावी दशा भी वर्ण्य थी प्रभु की यही।
अतएव कोई शब्द मुख से हो निकला कटुतर गया
क्षन्तव्य हूँ मैं—जाति का निर्दोष बच्चा रह गया ॥१८३॥

गुरु-देव-भारती

कहना मुझे जो था, उसे मैं सभ्यता से कह चुका,
हे भारती ! तेरी कृपा से ग्रन्थ पूरा कर चुका ।
अपशब्द, मिथ्या, झूठ कोई लेखिनी हो लिख गई,
गुरुदेव हे ! जिनराज हे ! अबला विचारी रह गई ॥ १९४ ॥
रुकती हुई है लेखिनी ! आशा मना ले आज तू,
जाती हुई जिनराज से कुछ विनय कर ले आज तू ।
तू छोड़ कर कर जा रही, कर कप मेरा कर रहा,
जाने न दूंगा मैं प्रिये ! प्रस्ताव दूजा रख रहा ॥ १९५ ॥
महावीर-गीति काव्य की प्रारम्भ रचना कर चुकी,
त्रयषठ-शलाका-नृप-चरित की नीव गहरी कर चुकी ।
अतिरिक्त इनके भी मुझे तू भक्त अपना कह चुकी,
मैं भक्त तेरा हूँ वर ! मुझसे अभिन्ना बन चुकी ॥ १९६ ॥

आशे !

आशे ! अहो ! तुम धन्य हो, आराध्य देवी हो सदा,
आशे ! तुम्हारा विश्व में अस्तित्व नहीं यदि हो कदा—
दुखभूत इस ससार में होवे शरणतल फिर कहाँ ?
असहाय, निर्बल, दीन को आशे ! शरण हो तुम यहाँ ॥ १९७ ॥
कितने न जाने प्राणियों का कर चुकी हो तुम भला,
जब जब विपद जन पर पड़ी, आशे ! तुम्हारा बल मिला,
आशे ! तुम्हारी भक्ति कर पदजात भी स्वामी बने,
निर्जन विपिन, गिरिदेश भी आशे ! सजन नामी बने ॥ १९८ ॥

दुष्कर्म में हों दुर्मनस, लोभी कुचर हम हों नहीं।
सचान्न भोजन भी न हो, अरु हो न परपिण्डाद भी,
कोई न हम में हो बुभुक्षित, हों न हम सोन्माद भी ॥२०४॥
श्रीमन्त हो दक्षिण, सुफल, हो भक्त भारतवर्ष के,
सब शील हो, सब हो धनी, सब हो निमिष उत्कर्ष के।
सब हो आप्तव्रत, आलस्य-तियक-दीघसूत्री हो नहीं,
हो ऊर्ध्वरेता, नान्त हम अति, सकसुक हम हों नहीं ॥२०५॥
हम में न कोई हो मलीमस, शीघ्र हम होवें सभी।
शठ, दम्भ, पिशुन हम हों नहीं, आदर्श नर होवें सभी,
वंचक, अगुक हम हों नहीं, निर्णिक हों, हम पृत हों,
हम दान्त हों हम शान्त हों, गुणभूत हों, अवधूत हों ॥२०६॥
सुकुमार कोई हो नहीं, पृथु, पीन भी हों हम नहीं,
हम स्वस्थ, पुष्कल हों वली, हों कर्म में अमनस नहीं।
कोई न मागण, निःस्व हो, सब स्वावलम्बी धीर हों,
स्वप्नज पराँमुख हों नहीं, हम पुरुष पुङ्गव, वीर हों ॥२०७॥
सर्वत्र हो विद्या कला प्रसरित हुई इस देश में,
हिन्दी यहाँ हो राष्ट्र-भाषा हिन्दू हों हम वेष में।
द्विज शूद्र में अति प्रेम हो, पति-पत्नि में जाम्पत्य हो,
गृहस्थ सभी का हो सुखद, गुणवान सब आपत्य हो ॥२०८॥
वह भूत भारतवर्ष अब यह वृद्ध भारतवर्ष हो,
समृद्धि हो वह भूत सी, वह भूत सा उत्कर्ष हो।
भारत हमारा इष्ट हो, राष्ट्रीयता में राग हो,
हम धर्म-वर्ती हों अचल, नव जन्म हो, नव जाग हो ॥२०९॥

हम भूत गौरव खो चुके, अपना चुके खल-पूपना।
गण्डकपते। दुर्दैव से रक्षा हमारी कीजिये।
सब भाँति भारत दीन है, इससा न दूजा हीन है।
हे महिप-ध्वज! इस दैन्यता का अपहरण कर लीजिये॥

करते न कर अब काम हैं, तन में न अब कुछ राम हैं।
हे घृष्टि-ध्वज! कुछ भूल कर चितवन इधर भी कीजिये।
संतप्त हैं, हम क्षुद्र हैं, अचरीण हैं, हम रुग्ण हैं,
हे श्येन-ध्वज! इस दुख-विहग को ग्रस्त अब कर लीजिये॥

सर्वत्र हिंसावाद है, रसवाद है, रतिवाद है।
इस प्रेत पामर से हमें हे वज्र-ध्वज छुड़वाइये,
हम थे दिवौकस एक दिन, हम प्रेत अब हैं हो गये।
करके दया मृग-ध्वज! हमें अब तन पलट करवाइये॥

न्यग्रोध-सी दुर्भेद की शाखा प्रसारित हो रही।
हे मेष-ध्वज! दुर्भेद वट उन्मूल कर बतलाइये।
हम लुब्ध हैं, सोन्माद हैं अरु हैं समुद्धत भी तथा।
भगवान नदावर्त-केतो! धर्म-पथ दिखलाइये॥

भ्रातृत्व हम में है नहीं, हम द्वेष-मत्सर-प्राण हैं।
सम्यक्त्व भारतवर्ष में फिर कुम्भ-ध्वज! प्रगटाइये।
वह त्याग हम में है नहीं, वह ब्रह्म-व्रत हममें नहीं।
कच्छप-पते! वह ब्रह्मव्रत फिर से हमें सिखलाइये॥

सौहार्द हम में है नहीं, सब स्वार्थ का ही राग है।
हे नील सरसिज-ध्वज! हमें मानवपना दिखलाइये।